नायाधम्मकहाओ

प्राक्कथन

भारतीय साहित्य के इतिहास में पालि भाषा एवं साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय अध्यात्म-चेतना, आचार-विचार और सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन के लिए ही नहीं, साहित्य के इतिहास के अध्ययन के लिए भी पालि साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है।

पालिभाषा और साहित्य मध्य युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमें भारतीय मनीषा का चिन्तन, जन-जीवन, दार्शनिक सिद्धान्त एवं आदर्श सुरक्षित हैं।

इस महत्वपूर्ण साहित्य के सरल अध्ययन के लिए लेखिका ने इस रचना को प्रस्तुत किया है। इसमें दो खण्ड—पालि साहित्य का इतिहास तथा पालि व्याकरण नामक हैं। इन दोनों खण्डों में इतिहास एवं व्याकरण सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री का संचय किया है। अतः पुस्तक पूर्णतः छात्रोपयोगी है फिर भी इतिहास के अध्ययन करने वालों के लिए भी इसमें प्रभूत सामग्री उपलब्ध है।

मेरा विश्वास है कि यह कृति अपनी सरल सुबोध शैली और विषय प्रतिपादन की स्पष्टता के कारण छात्र-पाठकों में विशेष लोकप्रिय होगी। मैं आशापूर्ण हृदय से पुस्तक की सफलता एवं लोकप्रियता की कामना करता हूँ।

(डॉ०) राजकिशोर सिंह

'मेरी अपनी बात.........'

भारतीय भाषाओं के विकास में पालि-भाषा और साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अपने स्नातकोत्तर हिन्दी अध्ययन के समय इसकी महत्ता का स्पष्ट अनुभव मैंने किया था। केवल भाषा के विकास में ही नहीं, कहानियों के विकास में भी पालि-जातकों का गौरवशाली स्थान है। इस पुस्तक में सभी आवश्यक व महत्वपूर्ण प्रश्नों को समाहित कर विद्यार्थी वर्ग के लिए अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयास मैंने यथासामर्थ्य किया है। इस पुस्तक में निहित सामग्री को मैंने 'पालि साहित्य का इतिहास' (श्री भरतसिंह उपाध्याय), 'पालि साहित्य और समीक्षा' (श्री सरनामसिंह), 'पालि कथा-प्रकाश' (श्री नरेन्द्रदेव-सिंह), पालि जातकावलि—(श्री बटुकनाथ शर्मा), 'पालि प्रबोध' (आद्यादत्त ठाकुर), 'पालि व्याकरण (भिक्षु धर्मरक्षित), 'पालि साहित्य का इतिहास' (डॉ० राजकिशोर सिंह) आदि पुस्तकों से जुटाया और संनियोजित किया है, इन सबके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ। आदरणीय गुरुवर डॉ० राजकिशोर सिंह जी ने भूमिका रूप में जो आशीर्वाद मुझे दिया है, चाहती हूँ मैं सदैव उसकी अधिकारिणी बनी रह सकूँ।

....इस पुस्तक को लिखने के दौरान अतीत के कुछ कटु-मधुर क्षण....प्रिय अनुजों सन्नी-पप्पू की शैतानियों भरे व्यवधान....बार-बार मन की उदासी के बोझ से थककर रुकती हुई कलम को आवाज देने वाले 'आनंद' का मुखर पर अपने-पन से भरा चुपचाप सा आग्रह....ये क्षण कितने स्मृति के हैं, कितने विस्मृति के, कौन जान सकेगा मेरे मन के सिवाय।....आदरणीय, श्रद्धेय और परम स्नेही बाबा को यह पुस्तक समर्पित करने के विचार से ही मन जाने कैसा-कैसा हो आया है....सोचती हूँ काश आज अगर वो होते इस प्रसन्नता को सहेजने के लिए तो....।

....बस रुकती हूँ। विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक कितनी लाभप्रद सिद्ध होगी, यह तो वही जानें, पर यदि वे अपने सुझावों और इस पुस्तक की कमियों से अवगत कराएँगे तो मैं आभारी हूँगी।

—प्रभा अग्रवाल

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

पालि साहित्य का इतिहास

पृष्ठ संख्या

द्वितीय खण्ड

पालि-व्याकरण

प्रथम खण्ड

पालि साहित्य का इतिहास

पालि साहित्य का इतिहास

प्रश्न—पालि शब्द की व्याख्या करते हुए इस सम्बन्ध में प्राप्त विभिन्न मतों का सर्वांगीण विवेचन कीजिए तथा यह भी बताइये कि सर्वाधिक समीचीन मत कौन-सा है ?

उत्तर—प्राचीन काल में संस्कृत भाषा की गौरव गरिमा निर्विवाद रूप से मानी जाती रही है किन्तु जब यह भाषा व्याकरण के जटिल नियमों में बँध कर वर्ग विशेष के लिए ही सीमित हो गई तो सामान्य जनता में एक अन्य जन-भाषा का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। व्याकरण की दृष्टि से दोनों भाषाएँ नितांत भिन्न सी हो गई थीं। ५०० ई० पू० में यह अंतर हमें स्पष्ट रूप में दीख पड़ता है। तदनन्तर बुद्ध एवं महावीर स्वामी जैसे महापुरुष विश्व के प्रांगण में प्रादुर्भूत हुए और उन्होंने देखा कि संस्कृत को विशेष रूप से महत्व प्राप्त है। साथ ही वह एक सीमित वर्ग की भाषा भी थी। किन्तु ये महापुरुष अपने उपदेश जनता तक पहुँचाने को उत्सुक थे अतः तत्कालीन समाज में व्याप्त ब्राह्मणों के मिथ्याडम्बरों को खंडित करने के लिए उन्होंने अपने उपदेश जन-सामान्य की भाषा में दिए। इस कारण तत्कालीन सामान्य जन-भाषा का प्रचुर प्रचार भी हुआ और महत्व भी बढ़ा। संस्कृत के समानान्तर प्रचलित इस भाषा अर्थात् पालि भाषा का प्रयोग अत्यन्त पुराना नहीं कहा जा सकता। इसके लिए संस्कृत-साहित्य का पर्यालोचन महत्वपूर्ण है।

१३०० अथवा १४०० ईसा पूर्व 'पालि' शब्द का प्रयोग भाषा-विशेष के अर्थ में नहीं मिलता है।

पालि शब्द का क्या अर्थ है ? यह किस प्रदेश की भाषा थी ? यह प्रश्न आज भी विवाद का विषय है। इस सम्बन्ध में प्राच्य व पाश्चात्य सभी मतों में विभिन्नता है, फिर भी विभिन्न कोषों में पालि शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्त होती है।

'अभिधानप्पदीपिका' में पालि शब्द का अर्थ है—पंक्ति।

'पंति वीथ्यावलिस्सेनि पालिरेखा च राजि च।'

संस्कृत में 'पंक्ति' का अर्थ 'मूल ग्रन्थ' के वाचक के रूप में ग्रहण किया जाता है। महाभाष्य की पंक्ति, साहित्य-दर्पण की पंक्ति आदि ऐसे प्रयोग इसकी ओर संकेत करते हैं। पालि शब्द की निष्पत्ति 'पाल' या 'पा' धातु से मानी गई।

'पा पालेति रक्खनीति पालि'—रक्षा करने वाली, पालन करने वाली पालि है।

संस्कृत की ही भांति बौद्ध ग्रन्थों में पालि शब्द 'मूल ग्रन्थ' के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'महावंश' में बुद्धघोष की अट्ठकथाओं को लक्ष्य करके कहा गया है कि—'थेरियाचरिये सब्बे पालिविय तमग्गहु' । और 'जम्बूदीपे पन पालि-मत्त'येव अत्थि अट्ठकथा पन नात्थि।

अर्थात् जम्बूदीप में पालिमात्र ही थी अर्थकथा नहीं थी।' इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि 'पालि' शब्द मूलग्रंथ के अर्थ में प्रयोग किया जाता था। इसके पश्चात् मूलग्रंथ से सम्बन्धित अन्य ग्रंथ भी पालि शब्द से ही बोधित होने लगे। बौद्धों के मूलग्रंथ हैं—'त्रिपिटक' और उनसे सम्बन्धित रचनाएँ हैं—'अट्ठकथा' (अर्थकथा)। इसीलिए इनसे सम्बन्धित ग्रंथों का बोध भी पालि से ही होने लगा।

किन्तु मूलग्रंथ वाचक शब्द-विशेष, भाषा-विशेष के लिए कैसे प्रयुक्त होने लगा? यह प्रश्न उठ खड़ा होता है। पालि शब्द से मूलग्रंथ का बोध होता ही था, शनैः शनैः 'पालि' ने इसके साथ-साथ पालि भाषा का अर्थ देना भी प्रारम्भ कर दिया। इस भाषा में मूल ग्रन्थ लिखे गए थे। इस प्रकार 'पालि' शब्द से मूलग्रन्थ और भाषा का बोध होने लगा।

'पालि' शब्द को भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होने का अवसर कब मिला, यह निश्चित करना सरल नहीं है। 'पालि' शब्द को सर्वप्रथम प्रयुक्त करने वाले थे, आचार्य बुद्धघोष। 'अट्ठकथाओं' और उनके 'विसुद्धिमग्ग' में इसके पर्याप्त

उदाहरण मिलते हैं। आचार्य बुद्धघोष ने दो अर्थों में पालि शब्द का प्रयोग किया है—बुद्ध वचन के अर्थ में, और 'पाठ' के अर्थ में।

अनेक अवसर ऐसे आए हैं जब आचार्य बुद्धघोष ने 'पोराण अट्ठकथा' से विभिन्नता दिखाने के लिए मूल त्रिपिटक के अंशों को उद्धृत किया है, ऐसे स्थलों पर पालि शब्द बुद्ध वचन या मूल त्रिपिटक को ही अभिव्यक्त करता है। 'विसुद्धिमग्ग' में इसका उदाहरण देखा जा सकता है—

'ईमानि ताव पालियं अट्ठकथायं पन.........'

अर्थात् 'ये तो पालि में हैं किन्तु अट्ठकथा में तो....।' इसके अतिरिक्त—'नेव पालियं न अट्ठकथायं दिस्सति।' अर्थात् 'न पालि में है और न अर्थ कथा में ही।'

इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं त्रिपिटक की व्याख्या में पाठान्तरों का निर्देश मिलता है, ऐसे स्थलों पर पालि शब्द से मूल त्रिपिटक के 'पाठ' को द्योतित किया है।

४थी शताब्दी में 'दीपवंश' नाम का एक ग्रंथ मिलता है, इसमें भी 'पालि' शब्द बुद्ध वचन को ही द्योतित करता है। सिंहल देश में दोनों ही अर्थों में पालि शब्द का प्रयोग मिलता है।

'महावंश' नामक ग्रंथ में भी इस का अर्थ 'बुद्ध वचन' ही लिया गया। १३०० ई० में इस ग्रंथ का परिवर्द्धित संस्करण 'चूलवंश' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें आचार्य बुद्धघोष के ही समान दोनों अर्थों में पालि शब्द प्रयुक्त है।

आचार्य धम्मपाल (५००-६०० ई०) ने 'परमत्थदीपिनी' में 'पालि' शब्द मूल त्रिपिटक के 'पाठ' के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है।

उदाहरणार्थ—'अयाचितो ततागच्छीति—आगतो ति पिपालि।'

इसके साथ-साथ बुद्ध-वचन के अर्थ में भी 'पालि' शब्द प्रयुक्त हुआ है।'

'सद्दनीति' में पालि शब्द का प्रयोग मूलपाठ या पंक्ति अर्थ में अनेकशः हुआ है, उसमें उदाहरणार्थ अनेक वाक्य हैं—अत्रायं पालि। अत्र इमा पालियो।' आदि का पालियो दिस्सन्ति। आदि-आदि। उपर्युक्त विवेचन से

स्पष्ट हो जाता है कि पालि शब्द बौद्धों के मूल ग्रन्थ त्रिपिटकों के अर्थ में प्रयोग किया जाता था। धीरे-धीरे इसने पारम्परिक रूप ग्रहण कर लिया—

'एते पालिमुक्तकवसेन वुडत्ता गन्धातरानि वुच्चति।' (सासनवंश)

उपर्युक्त उपलब्धियों के आधार पर अनेक मान्यताएँ स्थापित हो गईं। इनमें से तीन मान्यताएँ ही प्रधान रूप से हैं—पहले मत वाले 'परियाय' शब्द से व्युत्पन्न मानकर इसका अर्थ लेते हैं। दूसरे मतावलम्बी 'पाठ' शब्द से व्युत्पत्ति स्वीकार करते हैं, और तीसरे मतानुयायी संस्कृत शब्द मानकर 'पंक्ति' अर्थ को ग्रहण करके विवेचना करते हैं—

(१) 'पालि' को 'परियाय' शब्द से निष्पन्न मानने वाले हैं भिक्षु जगदीश काश्यप। त्रिपिटकों में 'धम्म परियाय' या मात्र 'परियाय' शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिसका अर्थ है 'बुद्ध के उपदेश'। सामञ्जफल सुत्त में इसका उदाहरण प्राप्त है—'भगवता अनेन परियायेन धम्मो पकासितो।'

अर्थात् 'भगवान ने अनेक परियायों से (उपदेशों) से धर्म को प्रकाश दिया। ब्रह्मजाल सुत्त में भी—'को नामो अयं भन्ते धम्मपरियायोति।' इसी अर्थ को प्रकट करता है।

कालांतर में यही परियाय शब्द 'पलियाय' रूप में परिवर्तित हो गया, इसका उदाहरण अशोक के भाब्रू शिलालेख में मिलता है—

"इमानि भन्ते! धम्मपलियायानि विनय एतानि भन्ते..............सुनमुच उपधालेयेथुच।

यह पलियाय, भी 'पालियाय' बन गया और इसका संक्षिप्त रूप 'पालि'। स्पष्टतः यह बुद्धवचनों के लिये ही प्रयुक्त होता था। 'दीघनिकाय-पालि', 'उदान-पालि' 'पाचित्तिय पालि' आदि से 'बुद्धवचनयुक्त ग्रन्थ' तात्पर्य ही अभीष्ट है। भिक्षु जगदीश काश्यप के इस मत की स्थापना हमें उनके 'पालिमहाव्याकरण' नामक ग्रन्थ में उपलब्ध होती है। यह मत सर्वाधिक प्रामाणिक मत माना जाता है।

(२) एक अन्य सिद्धान्त है संस्कृत के 'पाठ' शब्द से 'पालि' की व्युत्पत्ति स्वीकार करना। इस मत के प्रतिष्ठापक हैं—भिक्षु सिद्धार्थ। भगवानबुद्ध से

पूर्व ब्राह्मणों द्वारा जो वेद-पाठ किया जाता था, वह बुद्ध के काल में भी प्रचलित था। बौद्ध-काल में अनेक वेदपाठी ब्राह्मण बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए। साथ ही वे अपने कुछ पूर्व पारम्परिक संस्कारों को भी ग्रहण करके लाए जो कि स्वाभाविक था। बुद्ध-वचनों को उन्होंने 'पाठ' शब्द की संज्ञा प्रदान कर उसे इस अर्थ में प्रयुक्त किया। किन्तु पाठ शब्द को उसी रूप में न लेकर उसका 'पाल' रूप कर दिया गया, जो कि कालांतर में 'पालि' रूप में परिवर्तित हो गया। यह 'पालि' शब्द अपने साथ उस अर्थ को भी लेकर चला। भिक्षु सिद्धार्थ ने पालि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है कि—पाठ से पालल<पालि। किन्तु ऐसा प्रयोग कहीं भी न मिलने के कारण यह ऐतिहासिक रूप से अमान्य ही है।

(३) तीसरा मत पं० विधुशेखर भट्टाचार्य का है—इन्होंने पंक्ति अर्थ को लिया है। 'पालि भाषा और साहित्य' ने भी इस मत को स्वीकार किया है।

'तन्ति बुद्धवचनं पन्ति पालि'—यह उदाहरण प्रसिद्ध पालिकोश 'अभिधान प्पदीपिका' से लिया जा सकता है, 'पालि' शब्द का अर्थ बुद्धवचन और पंक्ति दोनों ही है। अम्बपालि, दंतपालि, में प्रयुक्त पालि शब्द भी पंक्ति अर्थ को ही उद्भासित करता है। 'पंक्ति' से तात्पर्य है, ग्रन्थ की पंक्ति। बुद्धघोष ने भी इसी अर्थ को लिया है।

किन्तु भिक्षु जगदीश काश्यप ने इस मत का खंडन किया है तथा इसे अपूर्ण माना है।

(४) कुछ विद्वान् 'पल्लि' (गाँव) शब्द से पालि की निष्पत्ति मानते हैं। वैदिक और लौकिक संस्कृत के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भाषा गाँव की भाषा थी।

डा० भोलानाथ तिवारी तथा श्री देवेन्द्रनाथ आचार्य ने इसकी आलोचना करते हुए इसे मान्य नहीं माना। तिवारी जी के अनुसार 'पल्लि' से 'पालि' की निष्पत्ति कुछ ठीक नहीं बैठती क्योंकि यह प्रवृत्ति बहुत बाद में आई थी। आचार्य जी ने भी इसी प्रकार की कठिनाइयों को स्वीकार किया है कि पूर्व स्वर दीर्घ होना और का लोप होना प्रथम प्राकृत काल की प्रवृति के प्रतिकूल है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने एक और आपत्ति स्वीकार की कि पालि गाँव की भाषा थी तो उसका प्रचार व प्रसार बौद्ध उपदेशों के माध्यम से देश-विदेशों में कैसे हुआ ?

अतः यह मत स्वीकार नहीं किया गया।

(५) 'पालि' को सर्वाधिक प्राचीन प्राकृत मानने वाले विद्वान हैं—भण्डारकर तथा वाकरनागल। इसी प्राकृत शब्द से ही पालि रूप सामने आया। इसके लिए अत्यन्त ही दूरारूढ़ कल्पना की गई है—प्राकृत<पाकर<पाअड़<पाअल<पालि। यह तर्कसंगत भी नहीं है और मात्र कल्पनाश्रित होने के कारण मान्य भी नहीं है।

(६) पाल् रक्षणे धातु से पालि शब्द की निष्पत्ति मानी है कौसाम्बी नामक विद्वान ने पालि भाषा द्वारा वुद्ध वचनों को सुरक्षित रखा गया, इस आधार पर यह मत तर्कसंगत प्रतीत होता है।

(७) संस्कृत शब्द—'प्रालेय' या 'प्रालेयक' (पड़ोसी) से भी पालि शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयास श्री जहाँगीरदार जी ने किया।

(८) कुछ विद्वानों ने 'पलाश' शब्द से 'पालि' को निष्पन्न माना है। 'पलाश' मगध का ही दूसरा नाम था। यद्यपि प्राचीन काल में देश विशेष के आधार पर भाषा का नामकरण मिलता है—बंगाली, गुजराती आदि ऐसे ही उदाहरण हैं किन्तु 'पालि' के साथ कोई स्थान विशेष सम्बन्ध नहीं है। पाटलीपुत्र की भाषा 'पाटलि' से 'पालि' की निष्पत्ति कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

(९) कुछ विद्वानों ने 'पैलेस्टान' अथवा 'पलेटिन' प्रदेश की भाषा को ही 'पालि' नाम से स्वीकार किया है। किन्तु यह कल्पनाएँ कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं करतीं।

(१०) डा० मैक्सवेलेसर ने 'पाटलीपुत्र' के 'पालि' शब्द को निष्पन्न माना है। 'पाटली' का ही संक्षिप्त रूप है 'पालि'। इसके इस मत का आधार है 'ग्रीक में पाटलिपुत्र को 'पालिब्रोथ' लिखा जाना। किन्तु यह नियम-विपरीत होने के कारण सम्भव नहीं माना जा सकता।

(११) श्रीमती रायस डेविड्स के अनुसार जब त्रिपिटक लिखे नहीं गए थे तो पालि या पंक्ति शब्द से अर्थ था—पठित पंक्ति। लिखित रूप में आने पर लिखित पंक्ति से अर्थ लिया जाने लगा होगा।

(१२) ए० बेरिमेडल कीथ महोदय के अनुसार—

"The speech of Buddha, which is assumed to be reproduced in the canon, was doubtless the educated lingua franca which have been devised for the needs of intercourse of learned men in India."

अर्थात्—बुद्ध-भाषा जो कि त्रिपिटक में आती है, निस्सन्देह शिक्षित समाज की बोलचाल की भाषा थी, जिसका गठन भारत के शिक्षित समुदाय के व्यवहार की आवश्यकता की दृष्टि से ही हुआ था।

(१३) एच० पी० बुद्धदत्त बारा के अनुसार—

"Pali is the language in which the oldest Buddhist texts were composed. It originated in the ancient country of Magadha, which was the kingdom of Emperor Ashok and centre of Buddhist learning during many centuries."

पं० बटुक नाथ शर्मा ने भी 'पालि जातकावलि' की भूमिका में लिखा है कि पालि भाषा है जिसमें बौद्ध ग्रंथ लिखित हैं। पहले मूल ग्रंथ तथा बाद में मूलग्रंथ की भाषा के अर्थ को द्योतित करने लगा।'

निश्चित रूप से सभी मत-मतान्तरों का विवेचन करने के पश्चात् पं० बटुक नाथ जी के मत से ही सहमत होना पड़ता है कि, पालि भाषा है। बौद्धों के धर्म ग्रंथ इसी भाषा में लिखे गए। पहले यह केवल मूल ग्रंथों की परिचायिका थी किन्तु कालान्तर में मूल ग्रंथों की भाषा भी इससे द्योतित होने लगी।

प्रश्न—'पालि केवल बौद्ध धर्म की भाषा थी।' इस उक्ति की मीमांसा करते हुए उसके समय और विस्तार पर प्रकाश डालिए।

अथवा

पालि भाषा की उत्पत्ति एवं प्रदेश के सम्बन्ध में समस्त मतों का सर्वांगीण विवेचन कीजिए।

उत्तर—विश्व के विस्तृत भूखंड की विभिन्न भाषाओं की गणना सहज व सरल नहीं है। गणना ही नहीं भाषाओं का विकास-क्रम निश्चित करना भी अत्यन्त कठिन है। किन्तु फिर भी विद्वानों ने विभिन्न भाषाओं का गहन अध्ययन कर तद्तद् भाषा का इतिहास व विकास-क्रम प्रस्तुत कर इतिहास व साहित्य को समृद्ध किया है। किन्तु अनेक प्राचीन भाषाओं का विकास अभी अन्धकार में ही है। ऐसी भाषाओं का मूल प्रदेश क्या है? उसकी व्युत्पत्ति का क्या इतिहास है? आदि अनेक प्रश्न विवादास्पद हैं। ऐसी ही एक भाषा है 'पालि', इसकी व्युत्पत्ति व मूल प्रदेश के सम्बन्ध में विद्वानों में मतवैभिन्य हैं।

साधारणत: भाषाओं के नामकरण का आधार प्रदेश या प्रान्त होता है। इसके उदाहरण सुलभ हैं, जैसे—मराठी, बङ्गाली, गुजराती, मागधी, शौरसेनी आदि। किन्तु कुछ ऐसे अपवाद भी हैं, जिनमें भाषा का नाम किसी प्रान्त या प्रदेश विशेष में सम्बन्धित नहीं है। उदाहरण स्वरूप हम संस्कृत भाषा को ले सकते हैं। ऐसी ही भाषा है 'पालि'। अत: इसकी व्युत्पत्ति व मूलप्रदेश के सम्बन्ध में विवाद होना संगत ही है।

इतिहास के आधार पर यदि प्रमाण खोजना चाहें तो हम देखते हैं—'पालि' नामक भाषा में बुद्ध के उपदेश वचन संग्रहीत हैं, किन्तु इससे यह निश्चित मालूम नहीं होता कि पालि भाषा का मूल उद्गम स्थल क्या है? निश्चित रूप से भगवान बुद्ध ने 'बुद्धत्व' प्राप्त कर लेने के पश्चात् स्वानुभूत परम तत्व उपदेश जन सामान्य की भाषा में दिए होंगे, जिससे कि उस तत्व को हृदयंगम करने में जनता को कठिनाइयाँ न आवें। किन्तु इससे भी प्रश्न ज्यों का त्यों खड़ा ही रहता है। भगवान बुद्ध के उपदेशों को समाहित यह अत्यन्त विवादस्पद है। पौर्वात्य व पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक मत-मतान्तरों की स्थापना की। इन सभी मतों को हम सुविधा की दृष्टि से ६ भागों में बाँट सकते हैं ये ६ वर्ग निम्नलिखित हैं—

(१) पालि को उज्जयिनी प्रदेश की बोली स्वीकार करने वाला वर्ग—इस

वर्ग में आते हैं—विद्वान् वैंस्टरगार्ड और ई० कुह्न। इन्होंने पालि को उज्जयिनी प्रदेश की भाषा स्वीकार किया है और इसके दो कारण भी बताए हैं—(i) गिरनार स्थित अशोक के शिलालेखों से पालि का साम्य प्राप्त होना, (ii) लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने वाले कुमार महेन्द्र की मातृभाषा 'पालि' का होना।

किन्तु यह मान्य नहीं है क्योंकि प्रमाण प्राप्त नहीं होते। शिलालेखों की भाषा से साम्य होना ही पालि को उज्जयिनी की भाषा सिद्ध नहीं करता। राजकुमार महेन्द्र ही पालि को लंका तक ले गए इसके भी ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए हैं। अतः तथ्यों के अभाव में इसे मान्यता न मिल सकी।

(२) दूसरा वर्ग 'पालि' को कोसल देश की बोली से सम्बन्धित मानता है। प्रो० रायस डेविड्स इसी वर्ग में आते हैं। इनके अनुसार कोसल देश में ईसा से ६००-७०० वर्ष पूर्व बोली जाने वाली 'बोली' पर आधारित भाषा है 'पालि'। बुद्ध कोसल देशवासी थे, अतः उन्होंने मातृभाषा में उपदेश दिए।

डेविड्स साहब का यह मत अनुमान पर अधिक आधारित है। क्योंकि बुद्ध से केवल कोसल देश में रहकर ही उपदेश नहीं दिए, वे मगध और बनारस में भी रहे हैं। बनारस में कोसल देश की भाषा में उपदेश देना कुछ संगत प्रतीत नहीं होता। अतः यह मत भी मान्य न हो सका।

(३) पालि को विन्ध्याचल क्षेत्र की भाषा मानने वाला वर्ग भी है। इसमें डॉ० स्टेन कोनो और आर० ओ० फ्रैंक के मत आते हैं। इन्होंने पालि को विन्ध्याचल प्रदेश की भाषा स्वीकार किया है। पालि और पैशाची भाषा में जो समता प्रतीत होती है उसका कारण दोनों का पड़ोसी होना है। इनके अनुसार विन्ध्याचल के उत्तरवर्ती प्रदेश में उज्जयिनी के निकट पैशाची प्रचलित थी।

किन्तु डॉ० ग्रियर्सन ने इस मत का खंडन किया है। इन्होंने कहा कि पैशाची उत्तर में न बोली जाकर कैकेय और पूर्व गान्धार देश में बोली जाती

थी। कैकेय देश विद्या के लिए प्रसिद्ध था। तक्षशिला में विद्या का माध्यम था मागधी। इसी कारण दोनों में साम्य है। पालि और पैशाची में साम्य मानना संगत नहीं।

(४) चौथा वर्ग है 'पालि को कलिंग देश की भाषा मानने वाला वर्ग'। डॉ० ओल्डन वर्ग तथा ई० मुलर नामक विद्वानों ने इस मत का समर्थन किया है। दोनों ही विद्वानों ने कलिंग देश को पालि का उद्गम स्थल माना है। तथा कलिंग से ही लंका में धर्म का प्रचार व प्रसार हुआ ऐसा मानते हैं। इन्होंने कुँवर महेन्द्र द्वारा लंका में बौद्ध धर्म के प्रचार व प्रसार का खंडन किया है। इसके अतिरिक्त खण्डगिरी के शिलालेखों से भी पालि का साम्य मिलता है, जो कि उसके 'कलिंगदेशीय' होने की पुष्टि करता है।

किन्तु यह मत कल्पना पर ही आधारित अधिक प्रतीत होता है। खण्ड-गिरि के शिलालेख साक्ष्य के आधार पर पालि को कलिंग देश की भाषा बताना तर्कसंगत नहीं है। अतः विद्वानों के ऐसे आक्षेपों के कारण यह मत भी समर्थन प्राप्त न कर सका।

(५) पालि को पूर्वी बोली के अनुवाद की साहित्यिक भाषा स्वीकार करने वाला वर्ग भी है इसके प्रमुख विद्वान् हैं— लूडर्स, सिलवाँ लेवी, डॉ० कीथ, प्रो० टर्नर तथा सुनीति कुमार चटर्जी।

लूडर्स का मत है कि पालि 'प्राचीन अर्द्ध मागधी' भाषा पर आधारित है। त्रिपिटक प्राचीन-अर्द्ध-मागधी भाषा में ही लिखे गए थे—कालांतर में पालि भाषा में अनूदित हुए। त्रिपिटक में प्राप्त मागधी रूप अर्द्धमागधी का ही अवशिष्ट है। किन्तु अनुमान पर आश्रित होने के कारण इसका महत्व नहीं। डॉ० कीथ के अनुसार अर्द्धमागधी का विकास बाद में अर्द्धमागधी प्राकृत के रूप में ही हुआ है। अतः लूडर्स का मत मान्य न हो सका।

सिलवाँ लेवी के अनुसार 'पालि त्रिपिटक में बुद्ध वचनों की मौलिकता नहीं है। वरन् किसी पूर्ववर्ती मागधी बोली का अनूदित रूप है।' प्रो० टर्नर ने पालि को अनेक बोलियों का मिश्रित रूप माना है, इसमें उत्तरी, पश्चिमी व पूर्वी बोलियाँ निहित हैं।

डा० कीथ ने अशोक की भाषा को अर्द्धमागधी माना है। 'यह मगध की बोली न होकर पश्चिमी बोली थी; जिसे धर्मग्रन्थों में साहित्यिक रूप मिला। किन्तु यह संस्कृत से प्रभावित होकर बोलचाल से पृथक हो गई थी और कृत्रिम मिश्रित भाषा के रूप में सामने आई।'

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार 'बुद्ध के प्रवचन पहले पहल किसी पूर्वी बोली में लिखे गए थे और बाद में पालि में अनूदित कर दिए गए, यह पालि मध्य प्रदेश की प्राचीन भाषा पर आधारित थी। धर्मग्रन्थों में इस भाषा को अर्द्धमागधी नाम दिया गया है।'

उपर्युक्त सभी विद्वानों के मत पालि के मिश्रित रूप को ही व्यक्त करते हैं। अतः इनको ठोस समर्थन न मिला।

(६) पालि को मागधी से जोड़ने वाले विद्वानों का भी एक वर्ग है, इसमें गणनीय है—मैक्सवेलेजर, चाइल्डर्स, जेम्स आलविस, विंडिस, सर जार्ज ग्रियर्सन, रायस डेविड्स, डा० विन्टरनिट्ज। यह मत सर्वाधिक पुष्ठ है और पालि को मागधी रूप ही स्वीकार करता है।

मैक्सवेलेजर ने 'पाटलिपुत्र' का विकृत रूप 'पालि' में सम्भावित मानते हुए इसे पाटलिपुत्र की भाषा माना है।

चाइल्डर्स ने 'पालि' को लोक भाषा माना और अन्तः साक्ष्य प्रस्तुत किए। संस्कृत के साथ भी इसकी तुलना की तथा दोनों भाषाओं में निहित परिवर्तनों को शब्दकोश सम्बन्धी बताया।

जेम्स आलविस के अनुसार 'पालि' तत्कालीन प्रचलित भाषा थी, जो कि मगध में बोली जाती थी। पालि व संस्कृत में अनेक शब्द मिलते हैं जो कि धर्म की ओर संकेत करते हैं। पालि अशोक के समय तक लगभग दो शताब्दियों से भी ऊपर देश में प्रचलित रही।' शिलालेखों व पालि ग्रन्थों की भाषा के अन्तर का कारण भी उन्होंने बताया कि 'शिलालेखों की भाषा बोलचाल में रहने से परिवर्तित हो गई थी। पालि ग्रंथों की भाषा धर्मशास्त्र की पवित्र भाषा के रूप में स्थिर हो गई। अतः पालि का मौलिक नाम मागधी है।'

विंडिश और जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार मागधी का साहित्यिक रूप पालि है। इनके मतानुसार—'बौद्ध-काल में कैकेय देश विशेषतः तक्षशिला-विद्याध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। मागधी का भारत में सम्मान था और तक्षशिला में शिक्षा का माध्यम भी मागधी ही था।' इस आधार पर पालि को मागधी का साहित्यिक रूप माना।

डा० विन्टरनिट्ज ने भी पालि को साहित्यिक भाषा माना। बौद्धों ने इस साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया। यह बोली से ही विकास को प्राप्त हुई है। इतना ही नहीं ऐतिहासिक दृष्टि से भी पालि मागधी से सम्बन्ध रखती है।

पालि को मागधी स्वीकार करने वाले जर्मन विद्वान् गायगर का मत भी महत्वपूर्ण है। इनका मत है कि जिस भाषा में भगवान बुद्ध ने उपदेश दिए थे, वह पालि भाषा मागधी का ही एक रूप है। यह भाषा बुद्ध से पूर्व ही प्रचलित हो रही थी अतः बौद्ध-काल तक आते-आते यह एक सभ्य और शिष्ट भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी और सभ्य समाज की भाषा थी। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि भगवान् बुद्ध मगध में ही अधिकतर रहे हैं। अतः मगध की भाषा का उस पर प्रभाव होना सहज ही है। यद्यपि पूर्णरूप से वह मागधी नहीं होगी किन्तु मागधी की अधिकांश भाषा-विशेषताएँ उसमें निहित होंगी, यह निर्विवाद है। संक्षेप में गायगर के अनुसार पालि मागधी भाषा न होकर तदाश्रित लोकभाषा थी। इसी लोकभाषा में भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश दिए। यद्यपि पालि मूलतः मागधी से भिन्न है तथापि इसमें भिक्खवे, सुवे, पुरिसकारे, बीसे, इन्द्रियसते, आदि मागधी के अनेक रूप पाए जाते हैं। इसका कारण यह बताया गया है कि पहले मूलतः मागधी में ही त्रिपिटक था और बाद में संस्कृत व पालि में इसके अनुवाद हुए। अनुवादकों की असावधानी से ये मागधी-रूप इसमें शेष रह गए हैं।

आधुनिक युग के विद्वान् मानते हैं कि—बुद्ध की मागधी सर्वसाधारण की मागधी नहीं थी''''तस्मा सम्मासम्बुद्धकाले पि मागधानं मनुस्सानं या साधारणगामिकादीनं भासा नेन सा बुद्धमागधी भासा ति वुच्चति।' इन्होंने पालि की बोलचाल की मागधी से भिन्न साहित्यिक अथवा बुद्ध मागधी माना।

पंडित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार 'लंका में मागधी भाषा में ही त्रिपिटक लिखा गया था। किन्तु २५० वर्षों तक कंठस्थ रहने के कारण मागधी की सभी विशेषताएँ समाप्त हो गईं। सिंहल के स्थविरवादी कहते हैं—हमारे धर्म ग्रंथ मागधी भाषा में हैं।'

भारत में मध्य देश की बोली का सदैव महत्व व प्रभाव रहा है। अतः पालि का आधार भी मध्य देश की बोली है। यही संगत है।

इसके अतिरिक्त बुद्ध-युगीन परिस्थितियों व त्रिपिटक साहित्य के आधार पर भी पालि का आधार मागधी ही सिद्ध होता है। 'विनय पिटक' में चुल्लवग्ग में एक कथा आती है जो कि मागधी बोली में अन्य बोलियों के मिश्रण से युक्त भाषा को ही पालि भाषा स्वीकार करती है। यही मत संगत व मान्य है।

प्रश्न—भारतीय भाषाओं के विकास में पालि का स्थान निर्धारित करते हुए पालि भाषा के विकास की अवस्थाओं का परिचय दीजिए।

उत्तर—भारतीय-भाषाओं का सम्यक् रूपेण अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि पालि-भाषा अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान अधिकृत किए है। बुद्ध के काल में जो जनभाषा प्रचलित थी वह 'पालि' ही थी। तत्कालीन समस्त साहित्य इसी भाषा में लिखा गया क्योंकि जन-जन की वाणी होने के कारण विचारों का संवहन करने की पालि-भाषा में अद्भुत शक्ति थी। इस कारण पालि-भाषा का अत्यंत महत्व है। पालि भाषा ने कालांतर में भारतीय भाषाओं के विकास में महनीय योगदान दिया।

भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ होने के कारण उनका वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक था कि उसका वर्गीकरण किया जाए। भाषा-वैज्ञानिकों ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया। धातु, उपसर्ग, प्रत्ययों गठन-रीति आदि के साम्य-वैषम्य को आधार बनाकर किए भाषा का वर्गीकरण 'पारिवारिक-वर्गीकरण' कहलाता है। इस सम्पूर्ण विवेचन में 'पालि' की गणना भारोपीय कुल में की जाती है। पालि के साथ-साथ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी आदि भाषाएँ भी इसी काल में आती हैं। यह भारोपीय कुल

साहित्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका विकसित रूप भी सर्वाधिक है। इसी परिवार की भारत-ईरानी शाखा भी महत्वशाली है।

भारतीय परिवार की भाषा को **'आर्य-भाषा'** की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। आर्य-भाषा का इतिहास ४००० वर्षों में फैला हुआ है। इस समय में भाषाओं ने विकास की अनेक सीढ़ियों को पार किया है। विद्वानों ने सुविधा के लिए इसे तीन भागों में बाँट दिया है—

(१) प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा काल (वैदिक-युग से ५०० ई० पू० तक)

(२) मध्यकालीन आर्य-भाषा काल (५०० ई० पू० से १००० ई० तक)

(३) आधुनिक आर्य-भाषा काल (१००० ई० से अब तक)

प्रथम आर्य-भाषा युग की भाषा के दर्शन हमें ऋग्वेद में होते हैं। ऋग्वेद में तत्कालीन बोलियों का मिश्रित रूप भी मिलता है। ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद, सामवेद, ब्राह्मण-ग्रंथ और सूत्र ग्रंथों के द्वारा इसका विकास हम सहज ही देख सकते हैं। उस काल की भाषा 'वैदिक-संस्कृत' के नाम से अभिहित की जाती है।

मध्यकालीन युग तक भाषाओं की विविधता अत्यंत विस्तृत हो गई थी अतः उसे संयमित किया गया और इस प्रकार एक साहित्यिक-भाषा के रूप में इन विविध भाषाओं का विकास हुआ। अनेक भाषाओं का संस्कार होने पर यह भाषा विकसित हुई थी अतः इसे संस्कृत नाम से अभिहित किया गया। उसी काल में एक साहित्यिक भाषा के साथ-साथ अनेक प्रांतीय बोलियाँ भी विकास की ओर अग्रसर हुईं, क्योंकि जनसाधारण के लिए इसकी अत्यंत आवश्यकता थी। 'पालि' जो तत्कालीन एक जनभाषा थी—बुद्ध द्वारा उसी बोली में उपदेश दिए गए और इस कारण धर्म संयुक्त होने के कारण इस भाषा का महत्व बढ़ता गया। इसमें आस-पास की अनेक बोलियाँ भी समाहित होती गईं। इस विवेचन से ज्ञात होता है कि पालि और संस्कृत लगभग साथ-साथ ही विकास की ओर गतिमान हुईं। मध्य युग में पालि भाषा के विकास को तीन स्तरों पर देख सकते हैं।

(१) पालि और अशोक के अभिलेखों की भाषा, (५०० ई० पू० से प्रथम ई० पूर्व तक)

(२) प्राकृत भाषाएँ (प्रथम ई० से ५०० ई० तक)

(३) अपभ्रंश भाषाएँ (५०० ई० से १००० ई० तक)

मध्ययुग की भाषाओं को प्राकृत नाम से भी अभिहित किया जाता है। इन्हें क्रमशः प्रथम प्राकृत, द्वितीय प्राकृत व तृतीय प्राकृत कहते हैं।

इन्हीं भाषाओं से हिन्दी, मराठी व गुजराती आदि अनेक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है। इस दृष्टि से पालि-भाषा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है भारतीय भाषाओं के विकास में।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'पालि' एक मिश्रित साहित्यिक भाषा है। इस कारण इसमें अनेक बोलियों के तत्व समा गए हैं। व्याकरण के अनेक उदाहरणों से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। पालि भाषा के क्रमिक विकास को विद्वानों ने वर्गीकृत किया है। जर्मन विद्वान् गायगर ने भाषागत विशेषताओं को आधार बना कर पालि-भाषा को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया है :—

(१) गाथा की भाषा।

(२) पिटक साहित्य के गद्य भाग की भाषा।

(३) अनुपिटक साहित्य के गद्य भाग की भाषा।

(४) बाद के कृत्रिम पद्य की भाषा।

अनेक विद्वानों ने इसका विकास क्रम इस प्रकार दिखाया है—

(१) त्रिपिटक गाथाओं की भाषा।

(२) त्रिपिटक-गद्य की भाषा।

(३) उत्तर-कालीन पालि-गद्य की भाषा।

(४) उत्तर-कालीन पालि काव्य की भाषा।

(१) त्रिपिटक में आने वाली गाथाओं की भाषा—त्रिपिटक के गाथा भाग की भाषा अत्यंत प्राचीन है। इसमें वैदिक भाषा की भाँति विविधता है, किन्तु पालि भाषा की कुछ व्यक्तिगत विशेषताओं के आधार पर उसे वैदिक-भाषा से पृथक् करके देखा जा सकता है। कहीं-कहीं यह विभिन्नता नहीं भी है जिसके

कारण दोनों भाषाएँ अत्यंत नजदीकी प्रतीत होती हैं। जहाँ विभिन्नता नहीं है उसका कारण ध्वनि परिवर्तन ही है। उदाहरणार्थ 'रज्जा' और 'पिता' शब्द ले सकते हैं। आर्य भाषा के इन शब्दों का रूप पालि में 'राजिनो' और 'पितुस्स' हो गया है। यह निर्विवाद है कि पालि भाषा बौद्ध-काल में जन-भाषा थी। वैदिक कालीन स्मृतियों के उदाहरण भी इसमें सुलभ हैं। 'सुत्तनिपात' में इसके पर्याप्त उदाहरण देखे जा सकते हैं।

(२) त्रिपिटिक-गद्य की भाषा—इसमें गाथाओं की अपेक्षा अनेकरूपता कम है। इस गद्य की भाषा में प्राचीन रूप भी कम होते गए हैं और नए रूपों के प्रयोग अधिक देखने को मिलते हैं, जिन्हें हम 'जातक' में भली-भाँति देख सकते हैं।

(३) उत्तरकालीन पालि-गद्य की भाषा—उत्तरकालीन पालि-गद्य साहित्य की भाषा के उदाहरण 'आर्य कथा' व मिलिन्द्र-प्रश्न-साहित्य में सरलतया देखे जा सकते हैं। साहित्यिकता की अभिवृद्धि, कला का सजा सँवरा रूप और अलंकारों की भरमार भी हमें देखने को मिलती है। संक्षेप में गद्य-शैली का अत्यंत विकसित रूप देखने को मिलता है।

(४) उत्तरकलीन पालि-काव्य की भाषा—इस भाषा का स्वरूप हम 'महावंस,' 'दीपवंस,' 'दाणवंस,' 'तेलक टाह गाथा' आदि ग्रन्थों में पाते हैं। इसमें पूर्वकालीन साहित्य का अनुकरण भी प्राप्त है। रचयिताओं की इच्छानुकूल भाषा ने कहीं प्राचीन रूप ही धारण किए हैं, कही नवीन रूपों से सजी सँवरी है। धार्मिक क्षेत्र में अवरुद्ध हो जाने के कारण पालि भाषा की गतिशीलता समाप्त हो गयी। संस्कृत साहित्य का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में पालि का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न—संसार की विभिन्न भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए उसमें पालि का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—इस विशाल विश्व में बोली जाने वाली लगभग २००० भाषाएँ हैं। अनेक भूखंडों में विभिन्न बोलियाँ तथा उपभाषाएँ भी प्रचलित हैं। इस

प्रकार असंख्य भाषाओं के भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उनको वर्गीकृत करना नितांत आवश्यक समझा गया। यद्यपि यह कार्य अत्यन्त दुस्तर था, फिर भी इन विभिन्न भाषाओं की विभिन्नताओं में एकता खोजते हुए उनको 'पारिवारिक वर्गीकरण' के रूप में विभक्त किया गया। समान विशेषताओं व सम्बन्धित भाषाओं को एक कुल में गिना गया। अनेक भाषाएँ ऐसी हैं जिनका वर्गीकरण सम्भव नहीं, जैसे मेसोपोटामिया की भाषा सुमेरीय, एलामीय (ईरानी भाषा), एत्रस्कन (इटली की भाषा), बुशमन एवं हाटनटाट (अफ्रीकन भाषाएँ) आदि।

पारिवारिक-वर्गीकरण का आधार विभिन्न भाषाओं में साम्य व वैषम्य बनाया गया। यह साम्य तथा वैषम्य है—विभिन्न भाषाओं की धातुओं, उपसर्ग-प्रत्ययों एवं शब्दों की गठन रीति का।

कुछ प्रधान भाषा-परिवार हैं—

(१) भारोपीय अथवा भारत-योरोपीय
(२) सामी हामी अथवा सेमेटिक हेमेटिक
(३) बाण्टू भाषा परिवार
(४) फिन्नोउग्रीय भाषा परिवार
(५) तुर्क-मंगोल-मंचू
(६) काकेशीय
(७) द्रविड़
(८) आस्ट्रिक
(९) मोट चीनी
(१०) एशिया के उत्तर पूर्वी सीमांत की भाषाएँ
(११) एस्किमो एवं अमेरिका के आदिवासियों की भाषाएँ।

इन सभी भाषा परिवारों में भारोपीय कुल ही विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही इस परिवार की भाषाएँ अन्य भाषाओं की अपेक्षा विकसनशील रही हैं। इसीलिए अन्य परिवारों पर भी इस भाषा परि-

वार का प्रभाव हमें दिखता है। अतः इस कुल का विस्तृत विवेचन अत्यन्त आवश्यक है।

भारोपीय[1] अथवा भारत यूरोपीय परिवार—भाषा के महान् वेत्ताओं ने सर्वप्रथम जिस भाषा-परिवार की कल्पना की वह यही भारोपीय कुल था। इसके अनन्तर ही अन्य भाषा-परिवारों की स्थापना की प्रवृत्ति बढ़ी।

सर विलियम जोन्स ने १८वीं शताब्दी में 'संस्कृत' का अध्ययन किया। उस समय उन्हें यह अनुभूति हुई कि संस्कृत, ग्रीक, लैटिन में पर्याप्त समानताएँ हैं, तथा साथ ही जर्मन, गॉथिक तथा केल्टिक एवं प्राचीन फारसी भी समानताएँ रखती हैं। इसका कारण जोन्स ने यह बताया कि ये सभी भाषाएँ किसी भाषा से विकसित हुई होंगी। तथा अब ये भाषाएँ लुप्त हो गई हैं। सर जोन्स की इस अवधारणा पर अत्यन्त ही विचार-विमर्श हुआ तथा इससे भाषा-परिवारों का निर्धारण करने में पर्याप्त सहायता मिली। सर जोन्स की यह धारणा काल्पनिक ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी शत-प्रतिशत सही निकली। इसी सिद्धान्त के कारण तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का भी उदय हुआ। या कहें कि आधुनिक भाषा-विज्ञान इस कल्पना का ही परिणाम है तो अनुचित न होगा। भारतीय आर्य परिवार की प्राचीन तथा नवीन भाषाएँ इसी कुल के अन्तर्गत आती हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं नवीन भारतीय भाषाएँ इसी परिवार में सन्निहित हैं।

भारतीय परिवार की समस्त भाषाओं के मूल में विद्वानों ने मूल भाषा को खोजने का प्रयास किया। मूल भारोपीय भाषा के वक्ता कहाँ के वासी थे? ये प्रश्न अत्यन्त विवादस्पद हैं। इस परिवार में १० भाषाएँ प्रधानतया गिनी जाती हैं। ये भाषाएँ हैं—

केल्टिक, इतालिक, जर्मनिक (ट्यूटनिक), ग्रीक, बाल्तोस्लाविक, आल्बनीय, आर्मनीय, हत्ती अथवा खत्ती, तुखारीय, भारत-ईरानी अथवा आर्य।

इन भाषाओं के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय भाषाएँ भी हैं किन्तु आज इनका स्वरूप लुप्त प्राय है।

(१) केल्टिक वर्ग—इस भाषा के उदाहरण ५वीं शताब्दी से ही देखे जा

सकते हैं। इस वर्ग में आयरिश, फिशरिक अथवा वेल्श भाषाएँ परिगणित की जाती हैं। प्राचीन काल में यह भाषा सम्पूर्ण पश्चिमी तथा मध्य यूरोप में बोली जाती थी, लेकिन इटालिक और जर्मन भाषाओं के प्रसार होने के कारण ये गतिशील न हो सकीं।

(२) इतालिक वर्ग—इस वर्ग की महत्वपूर्ण भाषा लैटिन है। यह पहले केवल लैटियम प्रदेश में बोली जाती थी किन्तु रोम-साम्राज्य की भाषा होने के कारण १९वीं शताब्दी में यह साहित्यिक व धार्मिक भाषा हो गई। लैटिन भाषा के बोलचाल के रूप से ही इटालीय, फ्रेंच, पोर्तुगीज, स्पेनीय, रोमानी आदि भाषाएँ उद्भूत हुईं।

यह वर्ग केल्टिक वर्ग से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। इतालिक और केल्टिक वर्ग की भाषाएँ एक ही थीं, कालांतर में ये दो भिन्न-भिन्न रूपों में विकसित हुईं। इसी कारण कुछ विद्वान इन्हें 'केल्टिक-इटालिक' नाम से भी अभिहित करते हैं।

जर्मनिक अथवा ट्यूटनिक वर्ग—यह वर्ग भारोपीय परिवार में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अँग्रेजी भी इसी में सम्मिलित है। इसकी तीन उपशाखाएँ हैं—

(१) पूर्वी जर्मनिक—इसकी प्राचीन भाषा गॉथिक है। बाइबिल के अनूदित अंश इसी में मिलते हैं।

(२) उत्तरी जर्मनिक—इसमें नार्वेजियन, स्वीडिश, डैनिश, आइसलैण्डिक आदि भाषाएँ हैं।

(३) पश्चिमी जर्मनिक—इसमें उच्च जर्मन के अन्तर्गत आधुनिक जर्मन भाषा और निम्न जर्मन में अँग्रेजी, डच, फ्लेमिस आदि भाषाएँ आती हैं।

(४) ग्रीक वर्ग—इसमें ऐटिक, आयोनिक तथा डोरिक मुख्य भाषाएँ थीं। प्रसिद्ध कवि होमर ने अपनी रचनाएँ 'इलियड' तथा 'ओडेसी' आयोनिक भाषा में लिखीं। तत्पश्चात् गद्य-ग्रन्थ ऐटिक भाषा में रचे गए। ग्रीक साहित्य का प्रभाव यूरोपीय संस्कृति और साहित्य दोनों पर ही मिलता है। यह भाषा ग्रीस, एशियामाइनर के प्रदेश, साइप्रस द्वीप तथा एजियन उपसागर के द्वीप समूहों में बोली जाती थी।

(५) बाल्तो-स्लाविक वर्ग—बाल्तिक व स्लाविक नामक दो वर्गों को विद्वानों ने बाल्तो-स्लाविक नाम से अभिहित किया है। बाल्तिक के अन्तर्गत प्राचीन प्रशन, लिथुआनीय तथा लेटी आदि भाषाएँ हैं। 'स्लाविक' अधिक विस्तृत है। इसमें सर्वीय, बुल्गेरिय, चेक, स्लावेकीय तथा पोलिश एवं रूस और वहाँ की उपभाषाएँ आदि आती हैं।

(६) आलबनीय—यह अत्यंत विकृत भाषा है। एड्रियाटिक सागर के पूर्वी तट में इसका प्रचलन है।

(७) आर्मेनीय—प्रधानतया यह आर्मेनिया की भाषा होने पर भी आर्मेनिया के बाह्य क्षेत्रों में भी बोली जाती है। पहले यह ईरानी शाखा में थी, किन्तु कालांतर में स्वतंत्र हो गई।

(८) हत्ती अथवा खत्ती—एशिया माइनर का कप्परोकिया प्रदेश का बोगाइ-क्योइ नामक स्थान ई० पू० १५-१३ शताब्दी तक हत्ती साम्राज्य की राजधानी रहा। यहीं पर विद्वान् ह्यूगो विकलर ने अनेक पुरालेखों की खोज की। इन लेखों से भारोपीय को प्रगति तथा विकास के सम्बन्ध में नवीन प्रकाश पड़ता है।

(९) तुखारीय—यूरोपीय विद्वानों ने १९०४ में चीनी तुर्किस्तान नामक स्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों तथा कागज आदि की खोज की। कूचा नामक प्रदेश की भाषा कूची इसी की विभाषा है। प्रो० सीग ने इसके लिए विशेष अध्ययन कर कार्य किया।

(१०) भारत-ईरानी अथवा आर्य वर्ग—पालि इसी वर्ग से सम्बन्धित है। आधुनिक भाषा-विज्ञानवेत्ताओं के अनुसार मेसोपोटामिया से आर्य ईरान की ओर आए थे। ईरान से वे भारत में आए। आर्यों के द्वारा ही भारत-ईरानी संस्कृति के बीच पल्लवित हुए और भारतीय-ईरानी, आर्य धर्म की स्थापना हुई।

भारत-ईरानी लोगों की भाषा भारत-ईरानी अथवा आर्य वर्ग की भाषा कहलाती है। भारोपीय परिवार में यही वर्ग ऐसा है, जिसमें सर्वाधिक प्राचीन साहित्यिक सामग्री प्राप्त की जा सकती है। इसकी दो उपशाखाएँ हैं।

(१) ईरानी और (२) भारतीय । ईरानी उपशाखा के दो भाग है—अवेस्ता और प्राचीन फारसी ।

(१-अ) ईरानी-अवेस्ता की भाषा—ईरान में भली-भाँति स्थित होने पर आर्यों के दो दलों में मतवैभिन्य होने से 'देवपूजक' और 'असुर-मेध' नामक दो वर्ग हो गए । जरथुश्त्र नामक ऋषि (ईरानी) ने अवेस्ता की रचनाओं का संकलन किया । इसके उपासक पारसी लोग अवेस्ता का अत्यन्त आदर एवं सम्मान करते हैं । विद्वानों के अनुसार ईरान के उत्तर एवं उत्तर-पूर्व प्रदेश की भाषा ही अवेस्ता की आधारभूत भाषा थी । गाथाएँ प्राचीनतम अंश हैं और ऋग्वेदीय भाषा से सम्बन्धित हैं और दोनों में साम्य भी है । इसके अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं ।

(१-ब) ईरानी प्राचीन फारसी—ईरान के दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश में फारसी बोली जाती थी । इसी भाषा में अनेक सम्राटों के शिलालेख तथा ताम्रलेख प्राप्त होते हैं । प्राचीन फारसी की ध्वनियां और व्याकरण अवेस्ता की भाषा के समान ही हैं । किन्तु कुछ विभिन्नताएँ भी मिलती हैं । मध्य ईरानी (पहलवी) तथा अर्वाचीन फारसी इसी से विकसित हुई हैं ।

(२) भारतीय आर्य भाषा—ईरान से आर्य भारत में आए या वे मूलतः भारत के ही निवासी थे ? ये प्रश्न विवादास्पद हैं । किन्तु भाषा का विकास यह सिद्ध करता है कि आर्य २००० ई० पू० भारत में आए । यद्यपि यह काल-निर्धारण निश्चित नहीं है ।

आर्य पहले पंजाब में और फिर ये पूर्व की ओर अग्रसर होते गए । भारत में यज्ञपरायण संस्कृति की स्थापना आर्यों ने ही की यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है । भारत की अपनी प्राचीन संस्कृतियां भी थीं, जो कि आर्य संस्कृति से मिल-जुल गईं और इस भांति आर्य भाषा विकास के पथ पर अग्रसर हुई । आर्य भाषा को विकसित होने में अनेक शताब्दियां लगीं, इसके लिए प्रमाण स्वरूप अनेक साहित्यिक ग्रंथ उपलब्ध होते हैं । इन्हीं को आधार मान कर विद्वानों ने आर्य भाषा के विकास-क्रम के तीन सोपान बताए हैं—

(१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा ।

(२) मध्य भारतीय आर्य भाषा ।

(३) नव्य भारतीय आर्य भाषा ।

(ii अ) **प्राचीन भारतीय आर्य भाषा**—इसमें वैदिक व लौकिक संस्कृत को ले सकते हैं। ईरानी भाषायुग में गाथाओं के द्वारा देवताओं की उपासना का प्रचलन था। भारत में भी इसी प्रकार का प्रचलन विकसित हुआ और ये सूक्त 'वैदिक-संहिताओं' के रूप में संकलित किए गए। भाषा भी विकास करती गई। तद्पश्चात् कर्मकाण्डीय-ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद, प्रातिशाख्य आदि की रचना हुई। इनमें भाषा के परिवर्तित व विकसित रूप के दर्शन सहज रूप से हो जाते हैं। इनकी रचना-काल से लेकर संकलन होने तक एक भाषा विकसित हो चुकी थी, जिसे 'वैदिक-संस्कृत' की संज्ञा दी गई।

वैदिक-भाषा में भारोपीय की स्वर तथा व्यंजन ध्वनियाँ सुरक्षित मिलती हैं। संगीतात्मक-स्वराघात वैदिक-भाषा की प्रधान विशेषता है।

कालक्रमानुसार वैदिक-भाषा पुस्तकों में बँध गई। आर्य भाषा का निरन्तर विकास होता रहा। ६०० ई० पू० के लगभग उत्तर भारत में 'छान्दस्' (प्राचीन वैदिक कविता की भाषा) का नवीन रूप मिलता है। ब्राह्मणों द्वारा परस्पर व्यवहार तथा शिक्षण के लिए इस भाषा का प्रयोग किया जाता था। ब्रह्मणों ने वेदों के भाष्य की टीकाएँ एवं दार्शनिय विवेचन भी इसी भाषा में किया। 'छान्दस्' भाषा के प्रयोग के कारण प्रादेशिक तथा जन साधारण की बोलियाँ उपेक्षित हो गई। किन्तु यह भाषा लौकिक भाषाओं से प्रभावित होती रही। महान् वैयाकरण पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रंथ में विस्तृत विवेचन किया। तत्कालीन लौकिक भाषा को परिष्कृत तथा शिष्ट बनाने में पाणिनि ने महान् योगदान दिया। 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ के द्वारा संस्कृत भाषा को स्थिर होने में सहायता मिली और इसके द्वारा एक महान् भाषा प्रतिष्ठित हुई, भारत की संस्कृति जिसके माध्यम से प्रकाशित होती रही है। लौकिक और वैदिक संस्कृत में अत्यन्त भिन्नताएँ भी मिलती हैं। वैदिक भाषा के स्वराघात लुप्त हो गए। वैदिक भाषा के धातुरूपों से भी इसके धातुरूप भिन्न हैं। वैदिक-भाषा में प्रयोगों की जो स्वतन्त्रता थी वह भी समाप्त हो गई। वैदिकी-भाषा छन्द-

रूप और धातुरूपों की विविधता भी कम होती गई, लौकिक-संस्कृत में कुछ परिनिष्ठित एवं आदर्श रूप ही दिखाई देते हैं।

(ii ब) मध्य भारतीय आर्य भाषा—छठी शताब्दी ई० पू० में ही भार-तीय आर्य भाषा विकास के मध्यकाल में पदार्पण कर चुकी थी। आर्य भाषा जब प्राच्य की ओर गई तो इसके स्वरूप में विकृति आ गई क्योंकि यह प्राच्य वासियों के लिए एक कठिन भाषा थी। उदीच्य-भाषा उस समय विशुद्ध समझी जाती थी, अतः इस कारण आर्य भाषा का एक नवीन रूप उदित हुआ जो विकास का मध्यकाल कहा जाता है।

इस भाँति ६०० ई० पू० से लगभग १००० ई० पू० तक का काल, मध्य भारतीय आर्य भाषा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस काल में आर्य-भाषा अनेक प्राकृतों तथा अपभ्रंशों के रूप में विकसित हुई। डा० सुकुमारसेन ने इसका विकास क्रम इस भाँति बताया है—प्रारम्भिक अवस्था, द्वितीय अवस्था। प्रारम्भिक अवस्था में अशोक के शिलालेखों की भाषा तथा पालि आती है और द्वितीय अवस्था में प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाएँ आती हैं।

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत पालि का इसमें क्या स्थान है, यह निर्धारण अत्यन्त आवश्यक है। पालि भाषा आर्य भाषा (मध्य-कालीन) के प्रथम पर्व की प्रतिनिधि भाषा है।

भगवान् बुद्ध संसार के प्राणियों को श्रेष्ठ मार्ग का उपदेश देते रहे। ये उपदेश मौखिक रूप से ही जनसाधारण ग्रहण करते थे। कालांतर में उनको संगृहीत करने की आवश्यकता अनुभूत हुई। 'त्रिपिटक' में इन्हें संकलित किया गया। बुद्ध वचनों का संग्रह विभिन्न भाषाओं में हुआ। बुद्ध द्वारा इसकी स्वतंत्रता भी प्रदत्त थी। मूलसर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के ग्रंथ संस्कृत में, महा-सांघिकों के प्राकृत में, महासम्मितियों के अपभ्रंश में और स्थविरवादियों के पैशाची में मिलते हैं।

स्थविरवाद का त्रिपिटक ही पालि भाषा में प्राप्त है। थेरवादी परम्परा के अनुसार इस त्रिपिटक के संग्रह के लिए समय-समय पर संगीतियों का आयो-जन हुआ। जिनमें से पहली चार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। तृतीय संगीति काल

में ही पालि-त्रिपिटक का वह रूप निर्धारित हो गया था, जो आज उपलब्ध है। अशोक पुत्र राजकुमार महेन्द्र ने लंका में इसका प्रचार किया। वहाँ भी मौखिक परम्परा चलती रही। किन्तु इस भय से कि कहीं ये विस्मृत न हो जाएँ, सम्पूर्ण त्रिपिटक को लिपिबद्ध किया गया। आज पालि का जो रूप प्राप्त है उसका निर्धारण 'वट्टगामिनी अभय' के समय में ही हो गया था। कालांतर में पालि का विकास हुआ और इसने एशिया की अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक भाषा के गौरव को प्राप्त किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार की विभिन्न भाषाएँ किस प्रकार विकसित होती गईं। इस विकास-परम्परा में पालि का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय आर्य मध्य-काल की भाषाओं में इसका अत्यन्त ही महत्व है। तत्कालीन धार्मिक भाषा होने का गौरव भी इसे प्राप्त है। बुद्ध ने अपने उपदेश इस भाषा में देकर इस भाषा का महत्व अक्षुण्ण सिद्ध कर दिया है।

प्रश्न—पालि की भाषागत विशेषताएँ बताते हुए संस्कृत से उसका सम्बन्ध बताइये।

अथवा

पालि भाषा का स्वरूप विवेचन करते हुए संस्कृत के साथ उसके सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

अथवा

पालि भाषा और संस्कृत भाषा की रूप विज्ञान एवं ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से तुलना कीजिए।

अथवा

'वैदिक भाषा और संस्कृत भाषा के सम्बन्ध को भली-भाँति समझने में 'पालि' से बड़ी सहायता ली जा सकती है।' इस उक्ति पर सम्यक् विचार कीजिए।

उत्तर—अशोक कालीन धर्म लिपि की भाषाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस काल में अनेक बोलियाँ प्रचलित थीं। साहित्यिक भाषाओं में इन बोलियों की विशेषताएँ स्थल-स्थल पर व्यक्त होती हैं, अतः पालि और संस्कृत में

भी यह समान रूप से उपलब्ध है। पालि में भी तत्कालीन बोलियों के दर्शन हो जाते हैं और संस्कृत में भी।

ऋग्वेद किसी एक ऋषि द्वारा किसी एक काल की रचना नहीं है। इसमें अनेक युग लगे होंगे यह निर्विवाद है। अतः अनेक बोलियों का सम्मिश्रण भी हमें ऋग्वेद में मिलता है। धीरे-धीरे ऋग्वेद कालीन भाषा विकसित होती गई। ब्राह्मण ग्रंथों में भाषा के विकसित रूप स्पष्ट हैं। पाणिनि ने ऋग्वेद की भाषा को व्याकरण के नियमों में आबद्ध करके साहित्यिक रूप प्रदान किया। संस्कारों से युक्त होने के कारण ही इसे संस्कृत कहा गया। ब्राह्मण ग्रंथों या यास्काचार्य, पाणिनि आदि के समय तक संस्कृत व्यवस्थित हो गई थी। वेदों की भाषा को 'छान्दस्' नाम से अभिहित किया जाता है और परवर्ती भाषा को 'संस्कृत' नाम से। वुद्ध द्वारा भी वेद-भाषा को 'छन्दस्' नाम से पुकारा गया है।

एक ओर तो वेदविहित भाषा अचार्यों द्वारा परिष्कृत व सुसम्वद्ध रूप ग्रहण कर रही थी, दूसरी ओर आर्यों की बोलचाल की भाषा भी विकसित हो रही थी। वेद की भाषा 'संस्कृत' कहलाई और बोलचाल की भाषा 'पालि।' पालि चूंकि बोली थी अतः यह विकसित होती रही। मध्यकाल में बौद्धों के द्वारा इसे साहित्यिक व धार्मिक गौरव प्राप्त हुआ। पालि में प्राचीन और अर्वाचीन दोनों मिले-जुले हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकालीन आर्य भाषा युग में ही 'संस्कृत' और 'पालि' भिन्न-भिन्न रूपों में विकसित हुई।

ऋग्वेदों का अध्ययन करने से स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि वैदिक-कालीन भाषा में अनेकरूपता है। अथवा कहें कि यही/इस भाषा की विशेषता है तो अनुचित न होगा। वैदिक भाषा की यह विशेषता संस्कृत में न आकर पालि में अधिक है। संस्कृत व्याकरण के नियमों में बँध गई है किन्तु पालि इस कठिन बन्धन से इतनी अधिक कसी हुई नहीं है। उदाहरणार्थ—वैदिक भाषा में—अकारान्त शब्द के तृतीया बहुवचन रूप हैं—कर्णेभिः, देवेभिः। संस्कृत भाषा में ये 'देवैः' 'कर्णैः' हो गए हैं। किन्तु पालि 'देवेभि' या 'देवेहि', 'कण्णेभि या कण्णेहि' रूप ही मिलते हैं।

इसी भाँति वैदिक संस्कृत के 'विश्वन्', 'च्यवन्' नपुंसकलिंग शब्द के प्रथमा बहुवचन रूप 'विश्वा' और 'च्यवना' मिलते हैं, पालि में भी ऐसी ही प्रवृत्ति है। किन्तु लौकिक संस्कृत में नहीं। इसी भाँति उत्तम पुरुष बहुवचन का 'मसि' वैदिक प्रत्यय का पालि के रूप में हैं 'मसे'। वैदिक भाषा में प्रथम पुरुष बहुवचन में 'रे' प्रत्यय लगता है, लौकिक संस्कृत में यह लुप्त है किन्तु पालि में 'पच्चरे' 'भासरे' आदि रूप मिलते हैं।' ये उदाहरण भरतसिंह उपाध्याय ने 'पालि साहित्य के इतिहास' में निर्देशित किए हैं। इस आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक संस्कृत और पालि एक दूसरे के अधिक निकट है।

पालि और लौकिक संस्कृत के तुलनात्मक अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। दोनों ही मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ हैं। दोनों एक ही काल में एक ही मूल वैदिक भाषा से विकसित हुईं किन्तु फिर भी दोनों में पर्याप्त विषमताएँ भी हैं।

कबीरदास जी ने अपनी एक साखी द्वारा पालि और संस्कृत के सम्बन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

'संस्कृत जैसे कूप जल, भाषा बहता नीर'

इससे संस्कृत व पालि के स्वरूप का स्पष्ट भान हो जाता है। संस्कृत को कबीर दास जी ने ऐसा सरोवर बताया है जिसकी अपनी सीमा रेखाएँ हैं, जिसमें वह हिल्लोलित होता रहता है किन्तु पालि को उस बहते हुए जल के समान बताया है जो सदैव गतिशील है। उपमाएँ अत्यन्त सार्थक व सटीक ही हैं। संस्कृत की गति नियमों में बँधकर अवरुद्ध हो गई थी जबकि पालि निरन्तर गतिशील और विकसनशील भाषा के रूप में आई। भरतसिंह उपाध्याय ने संस्कृत की उपमा 'पुराण युवती' से दी है। अर्थात् सदैव ही प्राचीन होते हुए भी नयनाभिराम व रूपलावण्य से युक्त नारी के समान-संस्कृत भाषा की भी यही विशेषता है, क्योंकि वह अत्यन्त प्राचीन काल की होते हुए भी अभिराम रूपवती है। किन्तु पालि में यह गुण नहीं है वह विकास करते-करते अपना रूप भी खो बैठी है। पालि त्रिपिटकों में ही पली, बढ़ी और विकसित होती गई, किन्तु परवर्ती काल में यह अपने अंतिम काल में प्रविष्ट होकर समाप्त हो गई।

उद्गम स्थल दोनों का एक ही है अतः पालि व संस्कृत में साम्य है और वैषम्य भी। कुछ ध्वनियाँ भिन्न भी हैं और कुछ समान भी। दोनों भाषाओं में रूप, अर्थ और ध्वनि-समूहों में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। इनको हम निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट देख सकते हैं—

(१) वैदिक संस्कृत की ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ, श, ष आदि ध्वनियाँ पालि में बिल्कुल ही नहीं मिलती हैं। यथा = ऋणम् > इणं। ऋषि—इसिः। गृहम्—गहं। आदि।

(२) ऐ और औ के स्थान पर पालि में ए और ओ ही उपलब्ध हैं।

यथा—गौतम (संस्कृत)—गोतम (पालि)। औषध-ओषध।

(३) संस्कृत के अघोष वर्ण पालि में सघोष हो गए हैं।

(४) पालि और संस्कृत दोनों में ही तीन लिंग हैं।

(५) पालि में वचन दो ही हैं—एक वचन और बहुवचन। जबकि संस्कृत में तीन वचन हैं।

(६) पालि में 'ह' प्राणध्वनि अक्षर है किन्तु संयुक्ताक्षर रूप में प्रयुक्त होने पर विशेष प्रकार से उच्चारणीय होता है। यह उच्चारण 'ओरस' कहा जाता है।

(७) वैदिक संस्कृत में कारकों की अनेकरूपता मिलती है। किन्तु पालि में सादृश्य के आधार पर अकारांत पुल्लिग प्रातिपदिक के रूपों को स्वीकार किया गया है। जैसे—अस्मात् के आधार पर बुद्धस्मा और बुद्धम्हा।

(८) कारकों के प्रयोग में भी पालि व संस्कृत में पर्याप्त साम्य है। दोनों में चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी, तृतीया के स्थान पर पंचमी का प्रयोग मिलता है।

(९) पालि में नपुंसकलिंग के रूपों के स्थान पर पुल्लिग का प्रयोग मिलता है।

(१०) पालि में समस्त प्रातिपादिक सस्वर हैं। व्यंजनान्त स्वर लुप्त हो गए हैं। यथा—सुमधस् का सुमेघ।

(११) धातु विभाजन भी संस्कृत के अनुसार ही मिलता है किन्तु पालि में केवल ७ ही गण हैं।

(१२) संस्कृत के समान पालि में परस्मैपदी और आत्मनेपदी दोनों प्रकार हैं किन्तु आत्मनेपद के प्रयोग अत्यल्प हैं।

(१३) संस्कृत में १० लकार हैं जब कि पालि में ७ ही हैं।

(१४) पालि में संस्कृत के ही समान सन्नत, यङ्न्त, यङ्लुगन्त, णिजन्त तथा नाम धातु रूपों के प्रयोग मिलते हैं।

(१५) धातुओं के रूप पालि में तीन पुरुष व दो वचनों में मिलते हैं। अतः धातु रूपों की संख्या ६ ही है।

(१६) संस्कृत में जैसे उपसर्ग व निपात प्रयुक्त होते हैं वैसे ही पालि में भी उपसर्ग व निपातों का प्रयोग देखा जा सकता है।

इस प्रकार पालि की भाषागत विशेषताओं के विवेचन से हम सहज ही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पालि तथा संस्कृत में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों की भाषागत विशेषताओं में इतना साम्य है कि परस्पर दोनों एक दूसरे को समझने में बहुत सहायता देती हैं।

प्रश्न—साहित्यिक प्राकृतों में पालि का क्या महत्व है ?

अथवा

पालि एवं प्राकृत भाषाओं के पारस्परिक सम्वन्ध का विवेचन कीजिए।

उत्तर—यदि अत्यन्त प्राचीन काल से ही भाषा के विकास का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि पालि भाषा का विकास होने के बाद ही प्राकृत भाषाएँ विकसित हुईं। कुछ विद्वानों के अनुसार प्राकृत की पूर्वावस्था ही पालि है। इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अशोक के काल में जो सामान्य लोक-भाषा थी, प्रदेशों के आधार पर उसके अनेक रूप बन गए थे। अध्ययन की सुविधा के लिए इन रूपों को तीन भागों में विभक्त कर दिया गया है—

(१) पूर्वी बोली—कालान्तर में इन बोलियों के द्वारा ही प्राकृत भाषाओं का विकास माना गया है। पूर्वी बोली से मागधी भाषा का विकास हुआ।

(२) मध्यदेशीय बोली से शौरसेनी नामक प्राकृत विकसित हुई।

(२) पश्चिमोत्तरी बोली से पैशाची का विकास हुआ।

अर्द्ध मागधी का विकास पूर्वी व मध्यदेशीय बोलियों से हुआ है।

इतिहास के अनुसार पहले इन प्राकृतों का रूप बोली थी। किन्तु ये ही बोलियाँ साहित्य के आश्रय में आकर विकसित हुईं और प्राकृत रूप में सामने आईं। किन्तु साहित्यिकता लिए हुए होने पर भी इन बोलियों का स्वरूप स्पष्ट रूप से उभर आता है।

भरतमुनि ने अपने 'नाट्य-शास्त्र' नामक ग्रंथ में सात प्राकृतों का वर्णन किया है—

'मागध्यवन्तिजा, प्राच्या शूरसेन्यर्द्धमागधी।
वाल्हीका दाक्षिणात्याश्च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः।"

अर्थात्—मागधी, अवन्ती, प्राच्या; शूरसेनी, अर्द्धमागधी, वाल्हीक, दाक्षिणात्य, ये ७ प्राकृत भाषाएँ हैं।

वैयाकरण हेमचन्द्रजी ने इन ७ प्राकृतों को तो माना ही है साथ में लाटी और पैशाची नामक दो प्राकृतों को और जोड़ दिया है। इस प्रकार हेमचन्द्रजी के अनुसार प्राकृतों की संख्या ९ है।

किन्तु साहित्य के महत्व की दृष्टि से ४ प्राकृतों को ही विशेष स्थान दिया जाता है, ये हैं—शौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी, और महाराष्ट्री।

पालि और मागधी—यद्यपि विद्वानों ने मागधी को ही पालि स्वीकार किया है, किन्तु फिर भी दोनों भाषाओं में पर्याप्त अन्तर मिलता है।

श्, ष्, स् तीन ऊष्म हैं। पालि के केवल 'स्' का प्रयोग मिलता है और मागधी में 'श्' का।

मागधी में 'ल' ध्वनि है, 'र' नहीं है। जब कि पालि में दोनों ध्वनियाँ 'र' 'ल' मिलती हैं।

मागधी में पुल्लिग और नपुंसकलिंग शब्दों के कर्त्ताकारक एक वचन में 'ए' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है, जैसे—धम्मे। पालि में इसके स्थान पर ओकारांत और अनुस्वरांत रूप बनते हैं। जैसे—धम्मो।

पालि एवं अर्द्धमागधी—पालि बौद्धों की साहित्यिक भाषा थी, यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है। पालि का विकास मध्यदेशीय भाषा के आधार पर

हुआ था, किन्तु फिर भी भाषाओं व बोलियों से भी इसका सम्बन्ध मिलता है। बौद्ध भिक्षु बुद्ध के उपदेशों का प्रचार व प्रसार करते थे, अतः इस कारण वे भी अनेक बोलियों व भाषाओं से सम्बद्ध हो गए थे। अतः पालि पर इन सब भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट दीखता है। विद्वानों के एक वर्ग ने पालि व अर्द्धमागधी की सीमाओं के आधार पर पालि का उद्‌गम स्थल अर्द्धमागधी स्वीकार किया है। 'जैनागमों' में अर्द्धमागधी का जो स्वरूप मिलता है, उस दृष्टि से साम्य तो हैं किन्तु पालि का मूल अर्द्धमागधी को स्वीकार करना युक्तिसंगत नहीं है। अनेक तथ्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि पालि के बाद में अर्द्धमागधी का विकास हुआ।

दोनों में निम्नलिखित समानताएँ देखी जा सकती हैं—

(१) संस्कृत 'अस्' और 'अर्' के स्थान पर पालि व अर्द्धमागधी दोनों भाषाओं में ही 'स्' का प्रयोग होता है, पालि में—पुरे, सुवे, भिक्खवे आदि उदाहरणों में अर्द्धमागधी का प्रभाव स्पष्ट ही दीखता है।

(२) संस्कृत के 'तद्' के स्थान पर दोनों भाषाओं में 'सेय्' हो जाता है। जैसे—सेय्यथा (पालि), संस्कृत में तद्‌यथा रूप है।

(३) इसी भाँति 'यद्' के स्थान पर 'ये' हो जाता है।

(४) अर्द्धमागधी में 'र' का 'ल' हो जाता है। पालि में भी इस भाँति के प्रयोग मिलते हैं।

(५) अर्द्धमागधी में 'एव' यदि स्वर और अनुनासिक स्वरों के बाद आता है तो उसके स्थान पर 'येव' हो जाता है। पालि में भी इस भाँति के प्रयोग उपलब्ध हैं।

(६) दोनों भाषाओं में वर्ण परिवर्तन समान ही हैं। यथा—

संस्कृत	पालि	अर्द्धमागधी
वेणु	वेळु	वेळु
त्सरु	थरु	थरु

पालि और शौरसेनी—शौरसेनी मध्य प्रदेश की भाषा थी। शूरसेन प्रदेश से सम्बन्धित होने के कारण यह शौरसेनी कहलाती है। संस्कृत व शौरसेनी

अधिक निकट है। अध्ययन व विवेचन से ज्ञात होता है कि संस्कृत व शौरसेनी को जोड़ने वाली कड़ी पालि ही है। शौरसेनी और उत्तरकालीन पालि में साम्य मिलता है। दोनों ही मध्यप्रदेश की भाषाएँ हैं। अतः पालि का प्रभाव शौरसेनी पर होना स्वाभाविक ही है।

दोनों में कुछ समानतायें हैं—

(१) शौरसेनी के प्राचीन रूप में शब्द के मध्य में स्थित व्यंजन का लोप नहीं होता है।

(२) अघोष स्पर्शों का घोष स्पर्शों में परिवर्तन भी बहुत कम होता है।

(३) 'न्' यदि शब्द के मध्य में आ जाए तब भी परिवर्तन नहीं होता।

(४) उत्तरकालीन प्राकृतों में शब्द के आदि में प्रयुक्त 'य्' के स्थान पर ज हो जाता है किन्तु पालि व अर्द्धमागधी में नहीं होता।

(१) 'दानि' और 'इदानि' शब्द दोनों में ही प्रयुक्त होते हैं।

(२) 'पेक्खं' 'गमिस्सति,' 'सविकति' जैसे शब्दों में भी पर्याप्त समानता है।

पालि और पैशाची—पालि और पैशाची में भी पर्याप्त समानताएँ मिलती हैं—

(१) दोनों भाषाओं में घोष स्पर्शों (ग् द् ब्) के स्थान पर अघोष स्पर्श (क् त् प्) हो जाते हैं।

(२) शब्द के मध्य में आया हुआ व्यंजन वैसे का वैसा अपरिवर्तनशील रहता है।

(३) ज्ञ, ण्य्, और 'न्य्' का परिवर्तन 'ञ्' में हो जाता है।

(४) 'य्' का 'य् ही रहता है; 'ज्' नहीं होता।

(५) अकारान्त पुल्लिग शब्द प्रथमा एक वचन में ओकारांत रूप हो जाते हैं।

(६) 'र्' का 'ल्' नहीं होता।

(७) धातु रूप भी दोनों में समान है।

अतः इस आधार पर हम कह सकते हैं कि पालि व प्राकृत भाषाओं में पर्याप्त समानताएँ हैं। दोनों भाषाओं का ध्वनि समूह लगभग समान ही है। ऋ ॠ, लृ, ॡ, ऐ का पालि और प्राकृत दोनों में लोप मिलता है। विसर्ग का प्रयोग भी न पालि में है और न प्राकृतों में।

कुछ सामान्य विशेषताओं के आधार पर हम पालि व प्राकृतों को एक नहीं कह सकते। वस्तुतः पालि के बहुत बाद में प्राकृतों का विकास हुआ है। पालि अनेक बोलियों का मिश्रण है अतः इसमें अनेक भाषाओं की विशेषताएँ समाहित हो गई हैं।

प्रश्न—पालि-साहित्य के महत्व का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—संसार को गतिशील रखने में मनुष्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। मानव के समुचित विकास में सहायता देने वाले साहित्य का महत्व भी उतना ही अक्षुण्ण है। किसी भी देश व काल का साहित्य तत्कालीन जन-जीवन को पूर्ण रूप से चित्रित करता है। कहा भी गया है कि 'साहित्य समाज का दर्पण' होता है। अतः तत्कालीन साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो उठता है। सामाजिक मानव के लिए भाषा और साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। जाति ही नहीं सम्पूर्ण देश का भविष्य साहित्य पर निर्भर करता है। साहित्य दिशा निर्देश करने वाला दीपक होता है। मध्यकालीन भाषाएँ व साहित्य अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उसमें भी पालि भाषा व साहित्य का स्थान सर्वोपरि है।

अनेक विद्वानों के अनुसार गौतम बुद्ध ने स्वानुभूत तत्व को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य पालि भाषा के माध्यम से ही किया था। इस प्रकार इस दृष्टि से भी पालि साहित्य का अत्यन्त महत्व है।

दिन प्रतिदिन प्रचुर परिमाण में साहित्य सर्जन होता है किन्तु कोई-कोई साहित्य विश्व गौरव को प्राप्त करता है। पालि भी ऐसी ही गौरवशाली भाषा व साहित्य रहा है। इसका कारण यह है कि पालि में अनेक चारित्रिक, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक आदि विशेषताएँ समाहित हैं जो उसे महनीय बनाने में कारण हैं। पालि-साहित्य को आधार बनाकर देखने से ये सभी विशेषताएँ स्पष्ट रूप से सामने आ जाती हैं।

भगवान बुद्ध के धर्मोपदेश पालि भाषा में ही हैं। अतः बुद्ध के धर्मोपदेशों को भली भाँति हृदयंगम करने के लिए पालि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक व महत्वपूर्ण है। चूंकि सम्पूर्ण बौद्ध धर्म पालि में ही निहित है अतः पालि के बिना बौद्ध धर्म का अवगाहन सम्भव नहीं। पालि साहित्य के ही तत्कालीन संस्कृति

का भी पूर्ण ज्ञान सम्भव हो जाता है। बौद्ध धर्म को स्वीकार करने वाले चीन, जापान, लंका आदि देशों की संस्कृति का पूर्ण परिज्ञान पालि साहित्य द्वारा सरल हो जाता है। महात्मा बुद्ध ने अहिंसा के माध्यम से साम्य की प्रतिष्ठा करने का सफल प्रयास किया था। आज भी इसी प्रयास की अत्यन्त महत्ता है। अतएव पालि साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पालि-साहित्य के अध्ययन से विभिन्न राष्ट्रों की तुलानात्मक स्थितियों का ज्ञान भी सम्भव है अतः इस दृष्टि से पालि साहित्य अन्तर्राष्ट्रीय एकता के विकास में भी सहयोग देने वाला है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से पालि भाषा व साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राष्ट्रभाषा हिन्दी ही नहीं, अन्य प्रांतीय बोलियों के ध्वनि समूहों का पूर्ण परिज्ञान भी पालि के अध्ययन से ही सम्भव है। क्योंकि जब तक भारतीय मध्यकालीन आर्य भाषाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण व विवेचन नहीं होगा, उससे विकसित अन्य भाषाओं को स्पष्ट रूप नहीं मिल सकेगा। पालि भाषा के अनेक शब्दों व रूपों का प्रभाव आधुनिक भाषा व साहित्य पर स्पष्ट ही दिखायी पड़ता है।

सामाजिक और राजनैतिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त वस्तु और शैली की दृष्टि से भी पालि साहित्य अनुपम है। पालि साहित्य की उदात्तता, गम्भीरता, सरलता, सरसता आदि अनेक विशेषताएँ हैं जो इसे समृद्ध व सम्पन्न साहित्य की कोटि में ला बिठाती हैं। पालि-त्रिपिटकों में जो भी वस्तु सामग्री है वह मानवीय तत्वों से पूर्ण है। उसमें धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक तत्वों का सफल समावेश प्राप्त होता है जो कि आज भी जन मानस को प्रभावित करने में पूर्ण रूप से सफल है। इतना ही नहीं, वर्तमान कथा-कहानी का अत्यन्त विकसित रूप भी पालि-साहित्य की ही देन है।

पालि-साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत अधिक महत्व है। भारतीय संस्कृति के गौरव पर इससे प्रकाश पड़ता है। त्रिपिटकों में सन्निहित सामग्री से भारतीय इतिहास का निर्धारण करने में भी पर्याप्त सहायता मिलती है। पालि-साहित्य का पूर्ण विश्लेषणात्मक अध्ययन इतिहास को अनेक नई दिशाएँ देने में पूर्ण रूपेण सक्षम है।

पालि-साहित्य ऐतिहासिक ही नहीं भौगोलिक महत्व की दृष्टि से भी विश्लेषणीय है। इसमें अनेक प्रदेशों का वर्णन मिलता है जो कि अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल रहे हैं। ऐसे स्थल हैं, मगध, कोसल, श्रावस्ती आदि जनपद। इनके उदाहरण 'पालि' में प्राप्त हैं।

पालि-साहित्य में जीवन को गतिशील बनाने वाले प्रेरक तत्वों की कमी नहीं है। बुद्ध की शिक्षाओं में जीवन के महानतम् आदर्श अत्यन्त सरल व स्पष्ट रूपेण समाविष्ट हैं।

धर्म और दर्शन की दृष्टि से भी पालि-साहित्य अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। बौद्ध दर्शन व बौद्ध धर्म के प्रसार के कारण ही भारतीय संस्कृति व भारतीय धर्म को विश्व में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। बौद्ध-दर्शन में उच्चता के दर्शन होते हैं। बौद्ध-दर्शन में वे सभी तत्व हैं, जिनको जीवन में उतारने पर मानव-जीवन से सहज ही मुक्ति सम्भव है। इसके साथ ही साथ बुद्ध की शिक्षाएँ व उपदेश जन-सामान्य की भाषा 'पालि' में रहे हैं, जिससे कि वह अधिक दुरूह व अनधिगम्य नहीं हैं। इसके अतिरिक्त बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं व उपदेशों को किसी भाषा विशेष के बन्धन में न बाँधकर, जिज्ञासुओं की सुविधानुसार किसी भी भाषा में अनूदित करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी। ये विशेषताएँ पालि साहित्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती हैं।

'पालि-साहित्य' की कथाओं व कहानियों के आधार पर ही परवर्तीकाल में प्रचुर साहित्य सर्जना हुई है। अनेक महाकाव्यों, प्रसिद्ध नाटकों का आधार पालि-साहित्य में सुलभ है। अतः हम निःसंकोच कह सकते हैं कि परवर्ती साहित्य को 'पालि-साहित्य' की अत्यन्त महत्वपूर्ण, अभूतपूर्व देन है। जिसको कि किसी भी भाँति नकारा नहीं जा सकता।

'पालि-साहित्य एक सामाजिक और धार्मिक क्रांति का इतिहास तो प्रस्तुत करता ही है, साथ ही एक ऐसी दार्शनिक धारा को भी प्रवाहित करता है जो वैदिक चिन्ता-धारा में एक बाढ़ के समान प्रकट होकर अनेक मनोर्मियों को नई दिशाएँ देकर भारतीय जीवन में प्रच्छन्न रूप से सरसित है। इसके मार्ग से

भारत को विश्व में जो गौरव मिला विश्व-संस्कृति का इतिहास उसे भुला नहीं सकता। जिस धर्म ने भारतीय संस्कृति की महनीयता को विश्व में प्रतिष्ठित करके उसे विश्व संस्कृति के पद पर आसीन किया पालि-साहित्य उसी का कलेवर है। इसलिए मध्ययुग का भारतीय समाज, धर्म, दर्शन और सबसे अधिक विश्व-संस्कृति को इसका मौलिक दान, सभी कुछ पालि-साहित्य में अंकित है।

उपर्युक्त विचारों द्वारा विद्वानों ने पालि-साहित्य के महत्त्व का स्पष्ट उद्घोष करते हुए उसके अनिर्वचनीय महत्व का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः पालि-साहित्य हिन्दी-साहित्य के लिए अमूल्य देन है।

प्रश्न—पालि-साहित्य के उद्भव एवं विकास का विवेचन करते हुए उसका वर्गीकरण कीजिए ?

उत्तर—'पालि-साहित्य' दो भागों में विभक्त किया गया है। पहले भाग में धर्म-ग्रन्थ आते हैं और दूसरे में व्याकरण से सम्बन्धित ग्रन्थ। धर्म-ग्रन्थों को त्रिपिटकों की संज्ञा दी जाती है। 'त्रिपिटक' में बुद्ध के उपदेशों का तथा शिक्षाओं का संकलन किया गया है।

ये त्रिपिटक हैं—

(१) विनय पिटक।

(२) सुत्त पिटक।

(३) अभिधम्म पिटक।

गौतम-बुद्ध के समस्त उपदेश पालि में संग्रहीत हैं। त्रिपिटक संस्कृत में भी उपलब्ध होते हैं और पालि में भी, किन्तु पालि में प्राप्त त्रिपिटक ही प्राचीनतम व प्रामाणिक माने जाते हैं। भगवान बुद्ध ने जो भी उपदेश दिया, वह सभी उनके शिष्यों व अनुयायियों ने संग्रहीत किया। अतः इस कार्य में अनेक शताब्दियां लग गईं। सम्पूर्ण बौद्ध-साहित्य ६ संगीतियों का परिणाम है। बुद्ध के निर्वाण के बाद ये संगीतियां (सभाएँ) विभिन्न विद्वानों के सभापतित्व में अनेक स्थानों पर हुईं। ये ६ संगीतियां इस भाँति हैं—

(१) प्रथम संगीति बुद्ध निर्वाण के चौथे माह में सप्तपर्णी गुफा में हुई

इसका सभापतित्व महाकाश्यप ने किया। इसे 'पंच शतिका' नाम से भी अभिहित किया जाता है क्योंकि इसमें ५०० बौद्ध भिक्षुओं ने भाग लिया था। अनुमान है कि यह संगीति लगातार ६ महीने तक चलती रही। ओल्डनवर्ग, विन्टरनिट्ज जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने इससे असहमति प्रकट की है।

(२) यह द्वितीय संगीति 'सप्तशतिका' कही जाती है इसमें ७०० भिक्षुओं ने भाग लिया था। यह बुद्ध के परिनिर्वाण के १०० वर्ष बाद वैशाली में हुई थी। इसमें कुछ विनय सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय होना था। वैशाली की इस संगीति द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि वैशाली में भिक्षुओं ने बुद्ध वचनों की प्रामाणिकता के आधार पर वैशाली के साधुओं के अनाचार की निंदा की; उसी सब का वर्णन ही किया गया। इस भाँति वैशाली की सभा में विनय से सम्बन्धित नियम बताए गए। इसके अनन्तर ७०० भिक्षुओं ने धर्म का संकलन किया। त्रिपिटकों में पालि-साहित्य का वर्गीकरण इसी काल में किया गया; ऐसा वर्णन बुद्धघोष ने किया है।

(३) तृतीय संगीति बुद्ध के निर्वाण के २३६ वर्ष बाद हुई। यह सम्राट अशोक के काल में पाटलिपुत्र में सम्पन्न हुई। अब तक बौद्ध संघ का अनेक सम्प्रदायों में विभाजन हो चुका था। यह संगीति भी किसी सम्प्रदाय विशेष द्वारा आयोजित की गई होगी, इसी कारण इसका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में नहीं है। इस सभा की महत्ता इस दृष्टि से अत्यधिक है, कि इसी संगीति में गौतम बुद्ध के वचनों को एक रूप प्रदान किया गया। इस संगीति के सभापति थे 'तिस्समोग्गलि पुत्र'। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'कतावत्थु' में बौद्धों के १८ सम्प्रदायों का निराकरण किया यह ग्रंथ विभाजन की दृष्टि से अभिधम्म पिटक में आता है।

इसके अनन्तर तीन अन्य संगीतियाँ देवानपियतिस्स' दुट्ठगामणि, वट्ठगामणि नामक लंका-सम्राटों के काल में आयोजित हुई। ये तीनों ही संगीतियाँ प्रथम तीन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु पालि-साहित्य के विकास में इनका भी अपना योगदान है जो कि उपेक्षणीय नहीं स्वीकार किया जा सकता।

इस विवेचन के आधार पर ज्ञात होता है कि पालि-साहित्य का विकास बुद्ध के बाद प्रथम शताब्दी ई० पू० तक हुआ। इसके अनन्तर यही साहित्य

विकसित होता रहा, परिवर्द्धित होता रहा। इसे सुविधा के अनुसार 'पालि-साहित्य' को दो भागों में बाँटा गया—पालि (त्रिपिटक साहित्य) और अनुपालि (अनुपिटक साहित्य)।

पालि-साहित्य का विकास ई०-पू० पहली शताब्दी तक हो चुका था 'त्रिपिटक' के रूप में इसे विभाजित किया गया।

(१) विनय-पिटक—इसमें विनम्र नियमों का संकलन है। इसमें बौद्ध संघ के प्रबंध एवं भिक्षु-भिक्षुणियों की दैनिक चर्चा का भी वर्णन मिलता है। बौद्धों का मत है कि बुद्ध ने इनका निर्माण स्वयं किया था। यह पिटक स्वयं में पूर्ण है। विनय-पिटक में २२७ नियमों को विभक्त कर दिया है। इनको तीन ग्रन्थों में समाहित कर दिया गया है—

(i) सुत्त विभंग,
(ii) खन्धक,
(iii) परिवार,

(i) सुत्त-विभंग—अर्थात् सुत्तों का सरल अर्थ। इसमें पातिमोक्ख नियम वर्णित हैं। इसके अनुसार यह प्रत्येक अमावस्या तथा पूर्णिमा को भिक्षु समूह के मध्य इसका पाठ होता था। इसके २ भाग हैं—पहला है पाराजिक—इसमें ४ धर्मों का उपदेश दिया गया है। दूसरा है पाचित्तिय—इसमें ९२ धर्म व नियम वर्णित हैं। पाराजिक में धर्म का बहिष्कार और पाचित्तिय में प्रायश्चित इत्यादि बताए गए हैं।

(ii) खन्धक—इसके दो भाग हैं—महावग्ग—जिसमें धर्म प्रवेश के नियम और धर्माचार सन्निहित हैं। चुल्लवग्ग में बुद्ध से सम्बन्धित कहानियाँ बौद्ध संघ का इतिहास और विधान वर्णित है।

(iii) परिवार—इसमें विनय पिटक के नियमों की प्रश्नोत्तर रूप में आवृत्ति मिलती है।

(२) सुत्त पिटक—यह तर्क व संवाद शैली में लिखा गया है। इसके द्वारा बुद्ध के सिद्धान्तों का परिचय सरलता से हो जाता है। संवाद गद्य में है और

मुक्तक छंदों का प्रयोग देखने को मिलता है। पुरातनकालीन छोटी-छोटी कहानियाँ भी इसमें उपलब्ध हैं। इसे ५ निकायों में विभक्त किया गया है—

(i) दीघ-निकाय या दीघागम या दीघ-संग्रह ।

(ii) मज्झिम निकाय ।

(iii) संयुक्त निकाय ।

(iv) अङगुत्तर निकाय ।

(v) खुद्दक निकाय ।

(i) दीघ निकाय—इसमें २४ सुत्त हैं। प्रत्येक में किसी एक या अनेक बुद्ध के सिद्धांतों का विवेचन इसमें मिलता है। सीलक्खंध, महावग्ग, तथा पाथेय (पातिक वग्ग)—नामक इसके तीन भाग हैं।

(ii) मज्झिम निकाय—इसके १५२ सुत्त १५ वर्गों में विभाजित हैं। यह निकाय अत्यंत विशाल है। इसमें बौद्ध धर्म का अत्यंत व्यापक रूप से विवेचन किया गया है। इसमें बौद्ध-भिक्षुओं के जीवन पर प्रकाश डाला गया है, इसके अतिरिक्त ब्राह्मण यज्ञ, योग के अनेक रूप, बौद्ध व जैनों का सम्बन्ध तात्कालिक राजनीतिक और सामाजिक स्थिति, बौद्ध धर्म के चार सत्य, कर्म-सिद्धान्त, आत्मवाद का खंडन, ध्यान की अनेक रीतियाँ आदि भी इसमें वर्णित व विवेचित हैं।

(iii) संयुक्त निकाय—इसमें ७७६२ सुत्त हैं। इसमें मानसिक और चारित्रिक तथा दार्शनिक समस्याएँ भी निरूपित हैं। इसके ५ वर्ग हैं—सगाथवग्ग, निदानवग्ग, संघवग्ग, सलायतनवग्ग तथा महावग्ग,

(iv) अंगुत्तर निकाय—इसमें अनेक धर्मों का सार वर्णित है। इसमें २३०० सुत्त और ११ भाग हैं। इसके भागों को निपात कहते हैं। ये हैं—एक निपात, दुक निपात, तिक निपात, चतुक्क निपात, पंचक निपात, छक्क, सत्तक, अट्ठक, नवक, दसक और एक दसक ।

(v) खुद्दक निकाय—इसमें १६ भाग हैं। बुद्धघोष ने १५ ही माने हैं। इसके विषयों में विभिन्नता है। यह अधिकांशतः पद्य में है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण निकाय है। इसके १६ भाग हैं—

खुद्दक पाथ—इसके पद्य दीक्षा के समय पढ़े जाते हैं

धम्म पद—इसमें आचार सम्बन्धी शिक्षा और नैतिक नियम वर्णित हैं।

उदान—में भावुकता एवं उल्लास से परिपूर्ण बुद्ध की शिक्षाएँ हैं।

इतिवुत्तक—में बुद्ध के उपदेश गद्य पद्य मिश्रित शैली में हैं।

सुत्तनिपात—में बुद्ध द्वारा समाधान किए शिष्यों के प्रश्न व उत्तर हैं। इसकी भाषा अत्यन्त प्राचीन है।

विमानवत्थु—में दिव्य प्रासादों का वर्णन है।

पेतवत्थु—में मानवकृत पाप-पुण्य तथा स्वर्ग नरक का उल्लेख है।

थेरगाथा—में भिक्षुओं के दार्शनिक गीत हैं।

थेरीगाथा—में भिक्षुणियों के उपदेश हैं।

जातक—में बुद्ध की पूर्वजन्म की कथाएँ हैं।

महा निदेश
चुल्ल निदेश } में सुत्तनिपात पर रची हुई सारिपुत्त की टीका है।

परिसम्भिदामग्ग—में अर्हत की ज्ञान प्राप्ति का वर्णन है।

अपादान—में अर्हतों के महान कार्य वर्णित हैं।

बुद्ध वंस—में चौबीस बुद्धों की १२ कल्पों की कहानियाँ हैं।

चरियापिटक—में बुद्ध की पूर्वजन्म कालीन पारमिताएँ वर्णित हैं। इसमें ३५ जातक पद्यबद्ध हैं।

(३) अभिधम्म-पिटक—इसमें बुद्ध का दार्शनिक चिन्तन संकलित है। सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक में विषय वस्तु की दृष्टि से बहुत अधिक समानता है। अभिधम्म-पिटक में ७ ग्रन्थ हैं—

'धम्मसगाठी'—इसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, मानसिक चित्तवृत्तियों तथा भौतिक जगत् की व्याख्या है।

'विभंग'—में चित्तचेतसिक का सम्पादन है तथा मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ है।

'धातुकथा'—में स्कंध आयतन तत्वों का विवेचन है।

'पुग्गलपञ्जत्ति'—में महान् विद्वानों का प्रश्नोत्तर शैली में वर्णन है।

'कथावत्थु'—में स्थविरवाद की स्थापना, बौद्ध धर्म का इतिहास है।

'यमक'—में विधि निषेध वाले तत्वों का वर्णन है।

'पठ्णन'—में प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त का वर्णन है। यह अत्यन्त महत्व-पूर्ण सिद्धान्त है।

बुद्ध के वचनों का ही विवेचन इन ग्रन्थों में मिलता है। यह वर्गीकरण विषय व स्वरूप के आधार पर ही है। इसे अत्यन्त प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

रचना-काल की दृष्टि से यह सम्पूर्ण पिटक साहित्य ईसा से पूर्व तैयार हो चुका था। श्री गोखले ने कहा भी है कि—"विनयपिटक का अधिकांश भाग ३५० ई० पू० के पहले अवश्य बन चुका था। यही बात सम्भवतः सुत्तपिटक के प्रथम चार निकायों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।....खुद्दक निकाय का अधिकांश भाग ३री शताब्दी ई० पू० अस्तित्व में आ चुका था। अभिधम्म पिटक की अंतिम पुस्तक 'कथावत्थु' की रचना अशोक के राज्यकाल, ई० पू० तीसरी शताब्दी में हुई थी।"

पिटक-साहिय के अतिरिक्त अनुपिटक-साहित्य का सर्जन आज तक हो रहा है। इसे तीन भागों में बांटा गया है—

(१) पूर्वबुद्धघोष युग। (प्रथम शताब्दी से चतुर्थ शताब्दी तक)

(२) बुद्धघोष युग। (५वीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी तक)

(३) परवर्ती बुद्धघोष युग अथवा टीका युग। १२वीं शताब्दी से अब तक)

आज तक अनुपटिक साहित्य में वृद्धि हो रही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुपिटक साहित्य भी पिटक साहित्य के समान महत्वपूर्ण है।

पूर्वबुद्धघोष युग—में नेत्तिपकरण, पेटकोपदेश, सुत्त-संग्रह और मिलिन्द-पञ्ज की रचना हुई। प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ 'दीपवंश' भी इसी में रचा गया।

बुद्धघोष युग—बुद्धघोष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विशुद्धि मग्ग' 'अर्थ कथा' तथा लंका का प्रसिद्ध ग्रन्य 'महावंश', अनिरुद्ध का 'अभिधम्मत्थ संग्रह' भी इसी युग की रचनाएं हैं।

परवर्ती बुद्धघोष युग या टीका युग—व्याकरण सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ, इस काल में लिखे गए। इसके अतिरिक्त 'विसुद्धिमग्ग दीपिका' नामक 'विसुद्धिमग्ग' की टीका, और 'अभिधम्मत्थ संग्रह' पर 'नवनीत टीका' नामक दो ग्रन्थ आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी ने लिखे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पालि-साहित्य अत्यन्त विशाल व समृद्ध साहित्य है तथा इसका महत्त्व अनुपेक्षणीय है।

प्रश्न—'जातक' का अभिप्राय व्यक्त करते हुए उसके साहित्य के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालिए।

उत्तर—बौद्ध-साहित्य के त्रिपिटकों में 'सुत्त पिटक' का एक भाग है 'खुद्दक निकाय' और खुद्दक-निकाय का १०वाँ भाग 'जातक' के नाम से जाना जाता है। व्युत्पत्ति के अनुसार जन् धातु में 'क्त' व 'क' प्रत्यय लगाकर जातक शब्द बनता है। अर्थात् जो जन्म से सम्बन्धित हो वह जातक।

भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की अनेक कथाएँ इसमें संकलित हैं। गौतम बुद्ध के अनेक जन्मों का उल्लेख मिलता है। इन समस्त जन्मों का ब्यौरा इन जातक कथाओं में सन्निहित है।

बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व बुद्ध 'बोधिसत्व' कहलाते हैं। बोधिसत्व रूप में रहकर वे दान, शील, सत्य आदि पारमिताओं का पालन करते हैं और तदनंतर उन्हें 'बुद्धत्व' प्राप्त होता है। जातकों में बुद्ध के ५४७ जन्मों की कथाएँ संग्रहीत हैं।

'जातक' एक ग्रन्थ नहीं, वस्तुतः यह ग्रन्थ समूह ही है। 'कोई-कोई कथानक सम्पूर्ण ग्रन्थ के रूप में है और कहीं-कहीं उसकी कहानियों का रूप स्वल्पाकार महाकाव्य-सा है।'

प्रत्येक जातक कथा के ५ अंश हैं—पच्चुपन्नवत्थु, अतीतवत्थु, गाथा, वैयाकरण, समोधान।

पच्चुपन्नवत्थु—में वह वर्तमान कथा होती है जो कि बुद्ध के काल में घटित होती है।

अतीतवत्थु—में प्राचीन जन्म की कथा होती है।

गाथाएँ—यह पद्य में होती हैं। एक जातक में एक या अधिक होती हैं सम्पूर्ण जातक का आशय प्रकट करती हैं।

वैय्याकरण—यह गाथा की व्याख्या होती है।

समोधान—अंत में सार रूप अंश ही समोधान ही कहलाता है।

'जातक' एक विशेष शीर्षक वाली कथा है। इसमें बोधिसत्व के जीवन की घटना होती है। किसी-किसी जातक में अवान्तर कथाएँ भी आती हैं। जातक के लगभग ३०० कथाएँ हैं ऐसा माना जाता है। किसी-किसी कथा में बुद्ध स्वयं नायक हैं, किसी में साधारण पात्र के रूप में और कहीं मात्र दर्शक रूप में सामने आते हैं।

साधारणतः सभी कहानियों का आरम्भ एक-सा ही होता है—'अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते....।'

यह भाग अतीतवत्थु कहलाता है।

जातकों की संख्या भी एक विवादास्पद प्रश्न है। इस पर एकमत से निर्णय न हो सका। किन्तु विद्वानों ने ये संख्या निश्चित करने का प्रयास किया और लगभग ५५० जातकों की संख्या निर्धारित की है। बौद्ध परम्परा जातकों की संख्या ५०० ही मानती है। किन्तु जातकट्ठ कथा में जातकों की संख्या ५४७ है। बौद्ध-परम्परा के अनुसार संख्या स्मरण सुविधात्मक होने से ही ५०० है। 'पञ्च जातक शतानि।' लेकिन वर्तमान विवेचन के आधार पर ५४७ या ५४८ संख्या ही मानी जाती है।

कुछ भी हो इसे प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि पुष्ट प्रमाणों का अभाव ही है। इसके भी कई कारण हैं, क्योंकि कई-कई कहानियाँ एक ही विषय पर आधारित हैं, कुछ स्वल्प भेद वाली हैं। कहीं-कहीं एक ही नाम के एक से अधिक जातक हैं जैसे मत्स्य जातक। अतः संख्या की दृष्टि से जातकों का निश्चित करना असम्भव व कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त 'चुल्ल निद्देस' में ५०० जातक कहानियाँ उल्लिखित हैं। सिंहल देश में फाह्यान द्वारा भी ५०० जातक कहानियों के चित्र देखे गए थे। बाद में यह संख्या ५४७ हो गई। 'सुत्तपिटक' में अनेक ऐसी कहानियाँ हैं, जिनका उपयोग

उपदेश के लिए हुआ है किन्तु बोधिसत्व के नामोल्लेख का अभाव है। कालांतर में इन्हें भी जातक का रूप दे दिया गया। अतः सुत्तपिटक व विनय-पिटक के आधार पर यह संख्या और बढ़ गई।

जातक कितने प्राचीन हैं, यह प्रश्न आज भी विवादास्पद हैं। भरहुत एवं साँची के स्तूपों में लगभग २७-२८ जातकों के चित्र अंकित हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि जातक अशोक के पूर्वकाल में लिखे गए थे। रायस डेविड्स और विन्टरनिट्ज के अनुसार 'जातक-कथाओं का आधार प्राचीन मध्य देशीय जन-कथाएँ हैं।' इन्हीं के आधार पर बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया।

तत्कालीन समाज में प्रचलित कथाओं को भी ले लिया गया है। उन्हें उसी रूप में प्रस्तुत न करके एक नया नैतिक रूप दे दिया है। जातक कथाओं का जो रूप आज सम्मुख आता है वह अनेक शताब्दियों का प्रतिफलन है।

जातकों का नामकरण अनेक आधारों पर मिलता है। किसी जातक का नाम मुख्य विषय वस्तु के आधार पर है जैसे—'विष्णुपथ जातक'। कहीं प्रधान पात्र के आधार पर (बक जातक) कहीं गाथा के प्रथम शब्द के आधार पर जैसे—(अपण्णक जातक), कहीं बुद्ध के अनेक जन्मों के आधार पर जैसे—मत्स्य-जातक, वानरिन्द जातक आदि।

आनन्द कौशल्यायन ने अपनी 'जातक-भूमिका' में लिखा है कि—जातक-साहित्य का अपना विशिष्ट महत्व है। बुद्ध युगीन भारत के सामाजिक, राज-नीतिक जीवन, धार्मिक आस्थाएँ, लौकिक-अलौकिक विश्वास, आर्थिक, व्यापा-रिक स्थिति और अनेकमुखी जीवन की स्पष्ट द्वारा इस साहित्य में मिलती है।' इस प्रकार जातक वाङ्मय चाहे उसे प्राचीनता की दृष्टि से देखे, चाहे विस्तार की और चाहे उपदेशपरक तथा मनोरंजक होने की दृष्टि से, वह संसार में अपना सानी नहीं रखता।....मानव-जीवन का कोई भी पहलू इन कथाओं से अछूता बचा प्रतीत नहीं होता है। यही वजह है कि पिछले दो सहस्र वर्षों के इतिहास में यह जातक कथाएँ मनुष्य समाज पर अनेक रूप से अपनी छाप छोड़ने में समर्थ हुई हैं।....जातक साहित्य जन-साहित्य के सच्चे अर्थों में जनता का साहित्य है। इसमें हमारे उठने-बैठने, खाने-पीने, ओढ़ने-बिछाने की साधा-

रण बातों से लेकर हमारी शिल्पकला, हमारी कारीगरी, हमारे व्यापार की चर्चा के साथ हमारी अर्थ नीति, राजनीति तथा हमारे समाज के संगठन का विस्तृत इतिहास भरा पड़ा है। उस युग के भू-वृत्त की भी पर्याप्त सामग्री है, विशेष रूप से जल मार्गों तथा स्थल मार्गों की।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि जातक-साहित्य तत्कालीन जन-जीवन को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करता है। उस युग के भारतीय जीवन का ऐसा पक्ष बचा नहीं है जो जातक-साहित्य में मूर्तिमान न हुआ हो।

वस्तुतः जातक-साहित्य बौद्ध-युग की प्रतिच्छाया है। यह ऐसा दर्पण है जिसमें तत्कालीन धर्म, दर्शन की जीती जागती प्रतिच्छवियाँ सहज ही देखी जा सकती हैं।

प्रश्न—जातक के प्रमुख अङ्गों की विवेचना करते हुए उसमें गाथाओं का स्थान निर्धारित कीजिए ?

उत्तर—जातक साहित्य निःसंदेह तत्कालीन जन-जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करने में पूर्ण रूप से सक्षम व समर्थ है। इस कारण जातक-साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान भारतीय-साहित्य में है।

जातक-साहित्य में भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ वर्णित हैं। ये कथाएँ पूर्व वर्तमान काल को जोड़ती है। भगवान बुद्ध किसी वर्तमान कथा को लेकर उसके आधार पर पूर्व जन्म की कोई कथा सुनाते हैं और अन्त में उसका सम्बन्ध वर्तमान घटना से जोड़ देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जातक-कथाओं के ५ भाग होते हैं—पच्चुपन्नवत्थु, अतीतवत्थु, गाथा, वैय्याकरण, समोधान।

(१) पच्चुपन्नवत्थु—वर्तमान काल की घटना या कथा 'पच्चुपन्नवत्थु' कहलाती है।

(२) अतीतवत्थु—पच्चुपन्नवत्थु अंश को आधार बनाकर बुद्ध किसी पूर्व-जन्म के वृत्त को कहने का अवसर पाते हैं। यह पूर्वजन्म का वृत्त ही 'अतीत-वत्थु' अंश कहलाता है। यह जातक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश होता है।

(३) गाथा—अतीतवत्थु अंश के बाद गाथाएँ आती हैं। ये पद्य में होती हैं

और सम्पूर्ण अतीतवत्थु को प्रस्तुत करती हैं। इन गाथाओं को जातक भी कह सकते हैं। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

(४) **वैय्याकरण**—इसे **'अत्थवण्णना'** भी कहते हैं। इसमें गाथाओं की व्याख्या तथा शब्दार्थ होता है।

(५) **समोधान**—'अतीतवत्थु' की कथा को पच्चुपन्नवत्थु से जोड़ा जाता है। इसमें जातक का सार होता है।

इसको भली-भाँति समझने के लिए एक जातक को उदाहरण स्वरूप लेना अत्यन्त आवश्यक है। नहीं तो यह दुर्गम्य सा हो जाता है। उदाहरणार्थ हम 'सुंसुमार जातक' को ले सकते हैं। यह 'पालि जातकावलि' की पहली ही जातक-कथा है।

इसमें 'इदं सत्था जीतवने विहरन्तो देवदत्तस्स वधाय परिसक्कवं आरब्ध कथेसि । तदा हि सत्था देवदत्तो वधाय परिसक्कतो, ति सुत्वा 'न भिक्खवे इदानेव देवदत्तो मह्यं वधाय परिसक्कति, पुब्बेपि परिसक्कति येव। संतासमम्पि पन कातुं न सक्खी' ति वत्वा अतीतं आहरि।) ये अंश 'अतीतवत्थु' कहलाता है। अर्थात् इसे शास्ता ने जेजवन में बिहार करते समय देवदत्त द्वारा वध करने के प्रत्यत्न के सम्बन्ध में कहा। उस समय शास्ता ने 'देवदत्त वध करने के लिए प्रयत्न कर रहा है' सुनकर 'भिक्षुओ! देवदत्त मेरे वध के लिए इस समय ही प्रयत्न नहीं कर रहा है पहले भी प्रयत्न किया ही था किन्तु भय मात्र भी उत्पन्न न कर सका कहकर अतीत कथा कही।"

इसके आगे 'अतीतवत्थु' अंश प्रारम्भ होता है। अतीते वाराणसियं ब्राह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते""।' यह सम्पूर्ण अंश अतीतवत्थु है। अधिकतर अतीत-वत्थु अंश कर प्रारम्भ सभी जातक कथाओं में इसी प्रकार होता है। इसमें भगवान बुद्ध अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त बताते हैं कि किस प्रकार बोधिसत्व ने कपियोनि में जन्म लेकर सुंसुमार को पराजित किया था और उसके कपि को मरने का प्रयत्न व्यर्थ कर दिया था।

इसके बीच में ही गाथा अंश आता है। कभी-कभी यह 'अतीतवत्थु अंश के बाद भी आता है। सुंसुमार-जातक में दो ही गाथाएँ हैं—

अलं एतेहि अम्बेहि जम्बूहि पनसेति च
यानि पारं समुद्दस्स वरं मय्हं उदुम्बरो।
महती वत ते बोन्दि न चपञ्जा तदूपिका
सुंसुमार, वञ्चितोऽसि गच्छ दानि यथासुखन्ति।'

यह गाथा अंश जातक का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश है क्योंकि इसमें ही अतीतवत्थु का सार होता है। यह अत्यन्त प्राचीन अंश होता है तथा पद्य में होता है, इससे जातक में काव्यात्मकता का समावेश होता है।

इसके आगे का अंश 'वैय्याकरण' या 'अत्थवण्णना' होता है। यह गाथा की व्याख्या होती है। 'सुंसुमार जातक' में वैय्याकरण अंश गाथा से पूर्व ही आ गया है—"सम्म बालसुंसुमार, इमेसं सत्तानं हृदयं नाम रुक्खग्गे होतीति सञ्जी अहोसि, बालोसि, अहं तं वञ्चेसि, तव फलाफलं तवेव होतु। सरीरमेव पन ते महान्तं पञ्जा पन नत्थी' ति....।" अधिकांशतः यह 'वैय्याकरण' गाथा के बाद ही आता है—

वैय्याकरण के बाद 'समोधान' आता है। इसमें बुद्ध पूर्व जन्म की घटना का सम्बन्ध वर्तमान कला से जोड़ते हैं। 'सुंसुमार-जातक' में जैसे—'सत्था इमं देसनं आहरित्वा समोधानेसि—तदा सुंसुमारो देवदत्तो अहोसि, सुंसुमारी चिञ्चामाणविका, कपिराजो पन अहंएवा' ति।' (तब सुंसुमार ही देवदत्त था, सुंसुमारी थी चिञ्चा माणिविका और कपिराज तो मैं ही था।)

इस भांति जातक में ये ५ अंश अत्यन्त स्पष्ट रूप गुँथे रहते हैं।

इसके अतिरिक्त जातक कथाओं को स्थूल रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है—१. गाथाएँ, २. जातकट्ठ कथाएँ।

गाथाओं में जातकों का पद्य-गद्य भाग निहित है। यह जातक का प्राचीनतम भाग होता है। इसी भाग की गणना त्रिपिटक के अन्तर्गत की जाती है। अन्य सब इसकी व्याख्या मानी जाती है। जिसे कि 'अट्ठकथा' के नाम से जाना जाता है।

किन्तु सम्पूर्ण कथा को 'जातक' कह दिया जाता है। इतिहास की दृष्टि

से देखें तो यह अनुचित व अप्रामाणिक है। मूलतः जातक अपने वास्तविक रूप में गाथा मात्र ही है अन्य भाग तो गाथा की व्याख्या ही है।

सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि जातक कथाएँ गाथाओं के आधार पर ही लिखी गई हैं। इसके अतिरिक्त निपातों में भी गाथाओं का वर्गीकरण दिया हुआ है जो कि स्पष्ट करता है कि जातक में गाथाओं का स्थान महत्वपूर्ण है। भाषा के आधार पर भी यह ज्ञात होता है कि गाथा भाग की भाषा कथा भाग की भाषा से प्राचीन है।

'अट्ठकथा' में गाथा भाग को 'अभिसंबुद्ध गाथा' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। गाथा-भाग को भगवान बुद्ध द्वारा भाषित माना जाता रहा है। इन्हीं बुद्ध-वचनों को त्रिपटकों से संकलित करके जातकों का रूप प्रदान किया गया। जातक की विषयवस्तु और उसके वर्गीकरण से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि कथाओं का मूल रूप गाथा भाग में विद्यमान है।

कुछ गाथाएँ अधिक प्राचीन हैं, कुछ बाद की हैं। कुछ जातकों में गाथा व गद्य भाग में साम्य नहीं मिलता है। उसमें शैली की भिन्नता स्पष्ट दिखायी पड़ती है।

इस आधार पर हम कह सकते हैं जातक-कथाओं में गाथाओं का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। जातक-कथा के ५ अंशों में गाथा-भाग ही त्रिपिटक से संकलित करने और उसके आधार पर जातक-कथा की रचना के कारण अत्यन्त महत्वशाली है। इससे कथाओं का साहित्यिकता, काव्यात्मकता, और एक नवीन भावाभिव्यक्ति प्राप्त होती है।

निर्विवाद रूप से गाथा-भाग जातकों का महत्वपूर्ण अंश है।

प्रश्न—'पालि जातकावलि' के आधार पर तत्कालीन सामाजिक जीवन का सविस्तार चित्रण कीजिए।

अथवा

जातक-कालीन समाज का परिचय दीजिए; जातक-साहित्य के आधार पर।

उत्तर—कहा जाता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण होता है,' यह उक्ति

उतनी ही शाश्वत है जितनी दिन-रात, सूर्य-चन्द्र, पृथ्वी की गोलाई आदि। वस्तुतः किसी भी काल के समाज का रूप देखना हो तो वह तत्कालीन समाज के दर्पण में ही प्रतिच्छवित होता है। साहित्य के इतिहास में भी यही बात सत्य है। प्रत्येक काल का साहित्य उस काल की अवस्थाओं व दशाओं का पूर्ण व समग्र चित्र प्रस्तुत करने में पूर्ण रूप से सक्षम होता है।

जातक-साहित्य भी तत्कालीन जन-जीवन को सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत करता है। समाज का चित्र उसमें अत्यन्त स्पष्ट है। उस समाज को तत्कालीन बुद्ध-उपदेश पूर्ण कथाओं के आवरण में हम छिपा हुआ देखते हैं। जातक की गाथाओं में जो वीज निहित हैं उसका विकसित रूप हमें सांची, भारहुत व अमरावती वाले चित्रों में मिलता है। जातक-साहित्य से तत्कालीन समाज की दशा ही नहीं, आर्थिक व राजनैतिक पहलुओं पर भी प्रकाश पड़ता है।

जातक-कालीन समाज में विवाह आदि के वर्णन मिलते हैं जिसके आधार पर स्पष्टतया ज्ञात होता है कि विवाह सम्वन्ध सजातियों में ही श्रेष्ठ समझे जाते रहे हैं। पिता का आदेश यही रहता था कि 'सम जातिक कुल कुमारिक गण्ह अर्थात् 'समान कुल की कन्या का ग्रहण करो।' क्योंकि इस समय ऐसा माना जाता था कि असमान जाति या कुल में विवाह करने से अयोग्य संतान उत्पन्न होती है। इसका उदाहरण 'बिनीलक जातक' में मिलता है। हंसराज व कौवी के सहवास से अयोग्य, कुदर्शन, व अयोग्य संतान उत्पन्न होती है। कन्या की अवस्था २० या ३० वर्ष होने पर विवाह-सम्पन्न करना अच्छा समझा जाता था तथा योग्य वर वरण में स्वतन्त्रता भी थी। 'पालि-जातकावलि' में 'न-च-जातकं' में भी इसका उदाहरण मिलता है। 'अम्ब जातक' में भी इस भाँति का वर्णन उपलब्ध है। 'उदय जातक 'संकिच्च जातक' से कन्या को विक्रय कर देने की प्रथा का भी वर्णन मिलता है। भार्या के लिए 'धनक्कीता' शब्द का प्रयोग इसकी पुष्टि करता है। कन्या व वर दोनों प्रेम-विवाह भी कर लेते थे।

उस समय राजा को विवाह की स्वतन्त्रता रहती थी। किसी भी जाति की लड़की से वह विवाह कर सकता था। राजा को एक नहीं अनेक विवाह

की स्वतन्त्रता थी। 'कट्ठहारि जातक' के ब्रह्मदत्त राजा ने पुष्पावचायिका कन्या से उत्पन्न पुत्र को युवराज बनाया। 'सुजाता-जातक' के अनुसार राजा माली की लड़की से परिणय कर लेता है। राजा किसी की पत्नी का परित्याग करने में भी स्वतंत्र थे जब कि सामान्य जनता सदोष स्त्री का परित्याग कर सकती थी। 'रुहक-जातक' में इसका उदाहरण मिलता है। इस काल के पुरुषों में अत्यन्त सहन-शक्ति भी मिलती है। यदि पत्नी को संतान नहीं होती थी तो उसे सामान्य रूप से सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाकर जीवन-यापन करने और पुत्र रत्न प्राप्त करने का अधिकार था—वह पुत्र राजा बनने का अधिकारी भी होता था। यह प्रथा नियोग-प्रथा कहलाती थी।

तत्कालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था को भी महत्व दिया जाता था। वर्ण चार प्रकार के थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। सभी वर्ण अपना-अपना महत्व रखते थे। जातकावलि की कथाओं में सभी वर्णों का उल्लेख मिलता है। 'मृतकभक्त जातकं', 'चम्मसारक-जातकं', 'वेदब्भजातकम्', राध जातकं' में ब्राह्मण वर्ग के जीवन का वर्णन मिलता है। ब्राह्मणों के कार्य क्षेत्र विभिन्न थे। अध्ययन के अतिरिक्त भी वे अन्य कर्म करते थे। 'मृतकभक्त जातक' में आचार्य मन्तज्झायक ब्राह्मण के रूप में दिखते हैं, शिष्यों को दीक्षा देकर जीविकोपार्जन का वर्णन भी सुलभ है। कुछ ब्राह्मण-वर्ग समाज में विशिष्ट स्थान रखते थे और केवल अध्यापन कर्म करते थे जैसे वेदर्भ आचार्य। कुछ ब्राह्मण वैश्यवृत्ति से ही जीविका यापन करते थे, जैसे 'राध जातक' में। कुछ ब्राह्मण भिक्षु रूप में भी मिलते हैं, 'चम्मसारक जातक' में एक ऐसे ही भिक्षु साधु का चित्र है। किन्तु अहंकारी व विद्यागर्भित ब्राह्मणों का आदर नहीं होता था यह 'चम्मसारक-जातक' में ब्राह्मण द्वारा कहे हुए वचन से ज्ञात होता है—'इमेसं एत्रकानं मनुस्सानं अन्तरे अयं एकोएकको अम्हा गुणं जानाति।' अर्थात् इतने मनुष्यों के मध्य यह एक मेढ़ा ही हमारे गुणों को जानता है।

क्षत्रियों का उल्लेख तो नहीं है, हाँ राजाओं का उल्लेख है। उन्हें ही क्षत्रिय मानकर अध्ययन कर सकते हैं। जातकावलि में 'राजोवाद-जातक', 'मखादेव जातक', 'शूर्पारक जातक' तथा 'उत्संग जातक' में राजाओं का उल्लेख

मिलता है। राजाओं का वातावरण विलासिता पूर्ण था। सुप्पारक पंडित का ये कथन 'यह नाई की संतान है।' इसकी ओर स्पष्ट संकेत करता है। वैश्य-लोगों का उल्लेख मिलता है। ये विदेशों में भी व्यापार करते थे और अच्छी आय करते थे। 'वावेरु जातक' में वैश्य-वृत्ति का उदाहरण अत्यन्त सुन्दर है। कौए की कीमत १०० और मोर १००० कार्षापण तक लेते हैं। तथा 'सुप्पषरक जातक' के द्वारा भी तत्कालीन व्यापार, विदेशगमन व वैश्यों के साहस का परिचय मिलता है। ये विदेशों से वहुमूल्य रत्न आदि भी लाते थे। 'सीह-चम्प जातक' के द्वारा ज्ञात होता है कि मध्यम श्रेणी के वैश्य गाँवों में ही भ्रमण करते हुए व्यापार करते थे। 'वलाहस्व जातक' के द्वारा यह ज्ञात होता है कि बनिये विलासी भी हुआ करते थे।

इसके अतिरिक्त नाइयों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। वे राजा व रंक आदि के कर्म्य करते थे और राजा के यहाँ आदर सम्मान भी पाते थे। (मखादेव जातक) नाई आर्य श्रावकों की सेवा भी करते थे और वदले में मोक्ष की प्राप्ति करते थे (सीलनिसंस जातक)।

ब्राह्मणों के लिए मांस-भक्षण अस्वीकृत नहीं था (मृतकभक्त जातक)। पशुओं की विशेषकर वकरे आदि की बलि भी दी जाती थी और उपासक के अतिरिक्त अन्य लोग उसका मांस खा लेते थे। (सीलनिसंस जातक)। शूद्रों के द्वारा प्रदत्त मांस व भोजन ब्राह्मण वर्ग द्वारा मान्य नहीं था। सीलनिसंस जातक में इसके उदाहरण मिलते हैं। किन्तु आर्य श्रावक व उपासक आदि ही छुआछूत मानते थे, साधारण ब्राह्मणों में इसके प्रति कठोर नियम न थे।

राजाओं का शासन अत्यन्त समृद्धिपूर्ण व शांतिपूर्ण होता था (राजोवद जातक)। प्रजा को न्याय के लिए कचहरियां भी उपलब्ध थीं।

आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं वीतराग की भावना भी राजाओं में पाई जाती थी। 'मखादेव जातक' का राजा मखादेव एक बाल के सफेद हो जाने पर ही राज्य कार्य से त्याग ले लेता है।

तत्कालीन समाज में अनेक प्रकार के व्यवसाय प्रचलित थे। ब्राह्मण वर्ग अध्ययन, अध्यापन, शिक्षा, दीक्षा भिक्षावृत्ति इत्यादि के द्वारा जीवन यापन

करते थे और वैश्य वर्ग व्यापार आदि के द्वारा। उस काल में कृषि एक प्रमुख व्यवसाय था। कृषि द्वारा शालि, यव, तिल, चावल आदि के उत्पन्न होने का वर्णन मिलता है। शेर की खाल से ढके हुए गधे का खेतों को चरजाना कृषि की ओर संकेत करता है। (सीहचम्म जातकं)। कृषि के अतिरिक्त गोपालन का वर्णन भी मिलता है।

हाथी घोड़े आदि का राजाओं के यहाँ होना दिखाया गया है। 'सुप्पारक जातकं' में हाथी घोड़ों का उल्लेख मिलता है। नाव द्वारा विदेशों में व्यापार करने का वर्णन भी कई जातकों में आता है। (सुप्पारक जातकं)। सोने चाँदी के आभूषणों का उल्लेख भी मिलता है। कैंची व तलवार आदि का वर्णन मिलता है जो कि लुहारों की स्थिति को स्पष्ट करता है। उस काल में सुनार, लोहार आदि अनेक जातियाँ थीं जिनका स्पष्ट रूप से वर्णन मिलता किन्तु आगे जाकर इन जातियों का पूर्ण रूप से विकास हो गया।

तत्कालीन समाज में माँस व भात भक्षण का वर्णन अधिकांश रूप में मिलता है इसके अतिरिक्त जौ, तिल, मूंग, फल, मधू, दूध, दही आदि का प्रयोग भी होता था। माँस को भून कर खाने का भी वर्णन कई जातकों में मिलता है। पेय पदार्थों का प्रचलन भी उस काल में था यह 'बावेरू जातक' से ज्ञात होता है।

आचार-विचार की दृष्टि से भी कोई विशेष बात न थी। अपने कार्य को पूरा करने के लिए हर प्रकार के अच्छे बुरे प्रयत्न किए जाते थे। 'सिसुमार जातकं', 'वानरेन्द जातकं' इसके अच्छे उदाहरण हैं। 'बक-जातक' से ज्ञात होता है कि 'शठे शाठ्यं समाचरेत' वाली उक्ति भी प्रचलित थी। चोरों आदि का भय भी व्याप्त था। उपवासादि श्रमण जन ही किया करते थे, सामान्य जन नहीं। किसी भी वस्तु को अकेला देखकर उसकी घोषणा की जाती थी तीन बार और फिर उसे अपने अधिकार में ले लिया जाता था (सस जातकं)

तत्कालीन गृहस्थ जीवन में कठोर नियम नहीं होते थे। यद्यपि विवाह प्रथा थी किन्तु फिर भी स्त्री व पुरुष दोनों ही स्वतन्त्र थे। उस काल में व्यभिचार भी खुले रूप से किया जाता था—"रत्तिम्पि दिवापि आगच्छन्तानं च गच्छन्तानं

च प्रमाणं नत्थि।' (राध-जातकं)। 'उत्संग-जातक' में पति का स्थान अत्यन्त ही अमहत्वपूर्ण बताया है कि 'पथि धावन्त्या पति' अर्थात् राह चलते पति मिलना। यह सब समाज के संयमहीन आचरण को प्रकट करते हैं।

तत्कालीन समाज में पत्नी को पति से ३ वर्ष तक अलग रहने के उपरांत तलाक प्राप्त होने का अधिकार था और वह दूसरा विवाह भी कर सकती थी। 'वलाहस्स जातकं' में यक्षिणियाँ बनियों को अपना पति बना लेती हैं क्योंकि उनके पति ३ वर्ष से व्यापार करने के लिए गए हुए थे, लेकिन लौटकर नहीं आए थे। स्वयंवर-प्रथा का भी उल्लेख मिलता है (न च जातकं)।

तत्कालीन समाज में शासन की दृष्टि से शांति थी। जीवन अत्यन्त असंयमित था लेकिन अत्याचार होने का वर्णन किसी भी जातक में नहीं मिलता है। राजा प्रजा के हित चिंतन में लगे रहते थे और उनको न्याय भी मिलता था। राजा का महत्वपूर्ण स्थान था। 'अपतिस्स चासो नाम न वट्ठति'। अर्थात् 'बिना राजा के रहना ठीक नहीं है।' राजा का चुनाव भी होता था (उलूक जातकं)। और वंश परम्परागत राजा भी होते थे। अधिकतर मंत्री इत्यादि ही राज्य का कार्य-भार देखा करते थे। जन-सामान्य को अपने-अपने विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। जैसा कि 'उलूक जातक' से स्पष्ट है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्कालीन समाज में असंयमित व अनियमित जीवन के होते हुए भी समृद्ध व्यापार वृत्ति थी, शांति व सुख था।

जातक-साहित्य तत्कालीन समाज का सत्य व यथातथ्य रूप में चित्र उपस्थित करता है, जिसके द्वारा जातक-कालीन समाज का रूप स्पष्ट रूप से सामने उतर आता है।

प्रश्न—'पालि-जातकावलि' के आधार पर तत्कालीन राजनैतिक व आर्थिक अवस्थाओं का निरूपण कीजिए।

उत्तर—राजनैतिक-जीवन—जातकावलि न केवल सामाजिक वरन् राजनैतिक जीवन पर प्रकाश डालने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं। इसमें अनेक ऐसे जातक संकलित हैं, जिसके आधार पर तत्कालीन राजनैतिक अवस्था का परि-

चय मिलता है। 'मखादेव-जातक', 'राजोवाद-जातक', 'उत्संग जातक', 'उलूक जातक', 'सुप्पारक जातक', आदि जातकों के अध्ययन के द्वारा निम्नलिखित बातें प्रकाश में आती हैं—

(१) तत्कालीन राजा, पद के लोलुप नहीं हुआ करते थे। जैसी ही वृद्धावस्था की सूचना श्वेत पके केशों द्वारा मिलती थी, वे राज्य त्यागकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लेते थे। (मखादेव-जातक)

(२) राजा वचपन में शिक्षा ग्रहण कर प्रजा के हित में लग जाते थे। अतः न्याय के कारण घूस का प्रचलन भी न था और किसी प्रकार की अन्य दुर्घटनाएँ भी नहीं होती थीं। (राजोवाद जातक)

(३) राजा परस्पर अन्य राजाओं का गुणों के आधार पर आदर व सम्मान करते थे। (राजोवाद-जातक)

(४) राजा लोग भी सदाचारों का पालन करते थे—

"अक्कोधेन जिने क्रोधं, असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन, सच्चेनालिक वादिनं॥
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथी' ति।"

(राजोवाद जातक)

(५) चोरों को राजा कड़ा दण्ड देता था और प्रसन्न होने पर उनका दंड क्षम्य भी था। (उत्संग जातक)

(६) राजा के चयन के समय प्रत्येक व्यक्ति को अपना मत देने का स्वतंत्र अधिकार था।

'भण सम्म अनुज्जातो अत्थं धम्मश्च केवल।
सन्ति हि दहरा पक्खी पञ्जावन्तो जुतिन्धराऽति।'

(उलूक जातक)

'न मे रुच्चति भद्दं वो उलूकस्साभिसेचनं....।

राजा—निर्वाचन के समय उसकी मुख शोभा इत्यादि का ध्यान भी रखा जाता था।

(७) राजा द्वारा प्रसन्न होकर अपने सेवकों को पारितोपिक आदि का वर्णन भी मिलता है। (सुप्पारक जातक)

(८) राजा का चयन भी होता था और राजा वंश-परम्परा के अनुसार भी होते थे।

आर्थिक-जीवन—जातकावलि में संकलित जातकों के अध्ययन से यद्यपि तत्कालीन जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश पड़ता है, किन्तु ये जातक संख्या में २० ही हैं। अतः समग्र चित्र प्रस्तुत न करके भी ये झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं जिनके आधार पर तत्कालीन जीवन का अनुमान किया जा सकता है।

जातकों के आधार पर तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के भी संकेत प्राप्त होते हैं।

बुद्ध के समय में व्यवसायों का प्रचुर विकास हो चुका था। ये व्यवसाय व्यक्तिगत रूप में भी दिखते हैं और सामूहिक रूप में भी इनका परिचय मिलता है। इसी काल में भारत का विदेशों से सम्पर्क स्थापित हुआ था और उत्तरी व दक्षिणी भारत में भी व्यवसाय के उदाहरण हमें मिलते हैं। जैसे-जैसे नागरिक जीवन की वृद्धि हुई वैसे ही वैसे परस्पर यातायात के साधन बढ़ते गए और व्यवसाय भी उत्तरोत्तर विकसित होता गया, जिसके कारण आर्थिक दृष्टि से देश सम्पन्न व समृद्ध होता गया। जन-साधारण से लेकर राजा तक सभी के घर पत्थर, ईंट, लकड़ी के हुआ करते थे। यह तत्कालीन सम्पन्नता का ही सूचक है। इसके अतिरिक्त नगरों में परस्पर भागों को जोड़ने के लिए राजमार्ग हुआ करते थे। यात्रियों को अत्यंत सुविधा के लिए आवास-गृहों का भी वर्णन उपलब्ध होता है। नदियों को पार करने के लिए पुल आदि भी होते थे। इससे ज्ञान होता है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण ही जनता को इतने अधिक साधन सुलभ थे।

उस काल में ग्राम व नगरों का उल्लेख आता है। ग्रामों में कृषि, गोपालन आदि व्यवसाय होते थे, इनसे भी आर्थिक समृद्धि थी। नगरों में बड़े-बड़े व्यापार हुआ करते थे, ये व्यापारी विदेशों तक जाकर देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में पर्याप्त योगदान देते थे।

कृषकों से लगान के रूप में ही अनाज ले लिया जाता था। किसी भाँति

यदि कठिनाई हो जाती थी तो लगान माफ भी कर दिया जाता था। लगान किए हुए धन को सुरक्षित रखा जाता था। ग्रामों में सामर्थ्य के अनुसार पैसा इकट्ठा किया जाता था और उससे उत्सव आदि का आयोजन किया जाता था। कुछ वणिक् लोग आवश्यकता होने पर परस्पर एक दूसरे को धन भी उधार दिया करते थे। जैसा कि 'गहपति जातक' से ज्ञात होता है।

ग्रामों में वस्त्र व्यवसाय भी होता था। कपड़े बुने जाते थे और उनका क्रय-विक्रय होता था। रेशमी कपड़े का प्रचलन भी था, जिसे कि धनवान् लोग पहना करते थे। अन्य बढ़ई, नाई आदि के छोटे-छोटे व्यवसाय भी थे। ये सभी संघ रूप में संगठित रहते थे।

पुरुष ही नहीं स्त्रियां भी आजीविका कमाती थीं। जीविकाएँ कुल क्रमानुसार ग्रहण कर ली जाती थीं।

इस प्रकार इस विवेचन से हम देखते हैं कि तत्कालीन समाज में आर्थिक दशा अत्यन्त सुदृढ़ व सम्पन्न थी तथा समाज के विकास के लिए आर्थिक सम्पन्नता का होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी कारण तत्कालीन समाज का अत्यन्त विकसित रूप भी हमें देखने को मिलता है।

प्रश्न—'पालि-जातकावलि' के आधार पर तत्कालीन धार्मिक स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—जातक-साहित्य तत्कालीन समाज को सुस्पष्ट रूप से प्रतिच्छवित करता है। तत्कालीन समाज ही नहीं उसमें तत्कालीन धार्मिक, आर्थिक व राजनैतिक अवस्थाओं का भी निरूपण हुआ है।

'पालि-जातकावलि' में यद्यपि कुछ ही जातकों में धार्मिक-अवस्था का वर्णन है किन्तु उसके आधार पर तत्कालीन स्थिति का आभास मिलता है और अनुमान भी किया ही जा सकता है। 'सीलनिसंस जातक', 'राजोवाद जातक', 'मखादेव जातक', 'मतकभत्त जातक', 'सस जातक' आदि जातकों में धार्मिक स्थिति के संकेत मिलते हैं। इन जातकों के आधार पर निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं—

(१ तत्कालीन समाज में दान देना, सील का आचरण करना, उपोसथ कर्म (व्रत) करना प्रचलित था तथा ये सब करना अत्यन्त ही धर्मयुक्त

समझा जाता था। 'शशजातक' में ससपण्डित इसी भाँति का उपदेश अपने मित्रों को देता था कि—'दानं दातब्बं, सीलं रक्खितब्बं, उपोसथकम्मं वातब्बंगन्ति'। अर्थात् दान देना चाहिए, शील पालन करना चाहिए और उपोसथ कर्म करना धर्म है। इतना ही नहीं 'उपोसार्थक' होने पर अतिथि या याचक को दान देना भी बताया गया है। 'सीले पतिट्ठाय दिन्नदानं महप्फलं होति, तस्मा याचके सम्पत्ते तुम्हेहि खादितब्बाहारतो दत्वा खादेय्याथा ति।' अर्थात् शील में प्रतिष्ठित होकर दिया हुआ दान महत्फल वाला होता है, अतः याचक को अपने आहार में देकर खाना चाहिए।

व्रती होने पर याचक को अपने पास कुछ न होने पर स्वयं को ही समर्पित कर दिया जाता था। अर्थात् व्रती को याचक को दान देना अत्यन्त महत्वपूर्ण था। जैसा कि 'ससपण्डित' की इस गाथा से स्पष्ट होता है—

'न ससस्य तिला अत्थि न मुग्गा नापि तण्डुला
इमिना अग्गिना पक्क मम भुत्वा वने वसा' ति।'

अर्थात् 'शश के पास न तिल है, न मूंग और न चावल। केवल मैं हूँ अतः अग्नि के द्वारा मुझे पकाकर खाकर वन में रहो।'

(२) उस काल में भी श्राद्ध आदि जैसे धार्मिक अनुष्ठानों का भी वर्णन मिलता है। श्राद्ध आदि अवसरों पर बलि आदि का विधान था, ऐसा 'मतकभत्त जातक' से अनुमान होता है। बलि से पहले वध्य को नहलाकर पूजा आदि की जाती थी। वाराणसी में जैसा कि एक ब्राह्मण अपने शिष्यों को आदेश देता है—'मतभत्तं दस्सामी' ति।....'इमं एळकं नदिं नेत्वा नहापेत्वा, कण्ठे मालं परिक्खिपित्वा, पञ्चङ्गुलिकं दत्वा, मण्डत्वा आनेथा।'

अर्थात् 'श्राद्ध करूँगा।' अतः इस भेड़े को नदी में नहलाकर, गले में माला पहनाकर, टीका तिलक लगाकर, सजाकर ले आओ।'

उस समय भी यह विश्वास था कि श्राद्ध करने से पूर्वजों को शान्ति प्राप्त होती है।

(३) आर्यश्रावक, जो कि ईश्वरोपासना में ही लगे रहते थे और शील आदि का आचरण करते थे, उनका समाज में ही नहीं, देवी-देवताओं तक के

लिए विशेष स्थान था। 'सीलनिसंस जातक' में जब आर्यश्रावक और नाई एक द्वीप में पहुँचे तो देवता (समुद्र देवता) ने आर्यश्रावक के धर्म से प्रसन्न होकर उसे जम्बूद्वीप ले जाने का उपक्रम किया। किन्तु नाई को वे उस श्रावक के आधा शील देने पर ही ले गए। अतः ज्ञात होता है कि धर्मपालकों को विशेष आदर दिया जाता था। समुद्र देवता कहते हैं कि—'एतस्स सोलगुणाचारी नत्थि, तं कारण अह हि तुम्हं नावं आहरिं, एतस्सा'ति।' अर्थात् 'इस (नाई) के पास शील गुण नहीं है, इस कारण मैं तुम्हें ले जाऊँगा लेकिन इसे नहीं। धार्मिक का महत्व इस गाथा द्वारा ज्ञात होता है—(सीलनिसंस जातक)

'पस्स सद्धाय सीलस्स चागस्स च अयं फलं
नाओ नावाय वण्णेन सद्धं वहति उपासकं।'

देखो श्रद्धा, त्याग और शील का यह फल है कि नाग, नौका के रूप में श्रद्धावान् उपासक को ढो रहा है,

(४) 'राजोवाद जातक' में 'सीलवन्ततरस्स ओकासं दस्सामी' ति' अर्थात् शीलवान को मार्ग दूँगा।' सारथि का यह कथन सिद्ध करता है कि शील युक्त मानव को श्रेष्ठ समझा जाता था। दोनों ही राजाओं के वयकुल बलधन इत्यादि को समान देखकर शील के आधार पर श्रेष्ठता ठहरा कर विवाद समाप्त किया जाता है। वाराणसी राजा का सारथि अपने राजा के शील का इस भाँति वर्णन करता है—

'अक्कोधे जिने कोधं असाधुं साधुना जिने
जिने कदरियं दानेव, सच्चेनालिक वादिनं। (राजोवाद जातक)

अर्थात् 'अक्रोध से क्रोध को, असाधु को साधुता से, कंजूस को दान से और झूठे को सत्य से जीतता है।' इससे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि शील में प्रतिष्ठित प्राणी का अत्यन्त आदर था।

(५) उस काल में भी आश्रमों का विशेष ध्यान रखा जाता था। राजा हो या सामान्य प्राणी, श्वेत केश हो जाने पर वह गृहस्थ आश्रम को त्याग कर संन्यास आश्रम ग्रहण करते थे। राजा मखादेव भी पलितकेशों को देखकर प्रव्रज्या के लिए प्रस्तुत होते हैं—

उत्तमङ्गरुहा मय्हं इमे जाता वयोहरा
पातुभूता देवदूता पब्बज्जा समयो ममा' ति।'

अर्थात् 'ये मेरे बाल अवस्था-हरण करने वाले हो गए। देवदूत प्रगट हो गए। मेरी प्रव्रज्या का समय हो गया।'

गृह्यसूत्र में भी कहा गया है कि—'गृहस्था स्तु यदा पश्येद्वतिपलितमात्मनः अपत्यत्वैव चापत्य तदारण्यं समाश्रयेत्।'

अर्थात्, गृहस्थ जब पलित केश हो जाए और संतान हो, तब आरण्यक का आश्रय लेना चाहिए।'

इस भाँति हम देखते हैं कि प्राचीन जातक-काल में भी व्रत, आश्रम, दान, शील, आदि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था तथा बिना धर्म के प्राणी को आदर व सम्मान प्राप्त न होकर तिरस्कार सहन करना पड़ता था। जातकों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि तत्कालीन धार्मिक नियमों का पालन होता था किन्तु वे अत्यन्त कठिन न थे और प्रत्येक के लिए बन्धन न थे। भगवान बुद्ध के उपदेशों व शिक्षाओं को ही नियम बनाकर प्राणी मात्र अपने उद्धार के लिए इनका पालन करते थे।

प्रश्न—बुद्ध की प्रमुख शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—गौतम बुद्ध अत्यन्त उच्चकोटि के विचारक थे। उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त करने के उपरान्त जिस धर्म का प्रचार व प्रसार किया, वह मानव जाति के कल्याण के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है। इस धर्म ने न केवल भारत को वरन् विश्व को भी प्रभावित किया। विश्व में शांति का संदेश बौद्ध धर्म के द्वारा ही प्रसारित हुआ।

बुद्ध ने नैतिकतापूर्ण सदाचरण की ओर प्राणियों को उन्मुख किया और जीवन में उसका प्रधान स्थान निर्धारित किया। इसका माध्यम था जातक-कथाएँ। इन कथाओं के द्वारा विश्व को एक नवीन प्रकाश मिला। बुद्ध ने जो उपदेश व शिक्षाएँ दीं, उनमें चार आर्य सत्य, दस शील और अष्टांगिक मार्ग यही मानव को मानव बनाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

बुद्ध ने बताया कि 'सर्वं दुःखं दुःखम्' अर्थात् सब दुःख स्वरूप है। दुःख व दुःख के कारणों को समझाते हुए बुद्ध ने उसके निराकरण का मार्ग भी बताया।

जिसका पालन करने से मानव क्लेशों से व दुःख से छुटकारा पाकर जीवन की उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है जहाँ शांति ही शांति होती है और दर्शन की भाषा में जिसे 'निर्वाण' कहते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने अनेक वर्षों तक योग का, तृष्णा व इच्छाओं का त्याग कर, साधना करते हुए मानव कल्याण के निमित्त जिस सार तत्व को प्राप्त किया, उसे प्राणीमात्र के समक्ष रख कर, उसे भी मुक्ति का मार्ग दिखाने का पूर्ण प्रयत्न किया।

इसलिए बुद्ध ने चार आर्य सत्यों का अनुसंधान किया।

इन्हें 'अरियसच्चानि' भी कहा जाता है। ये हैं—दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध तथा दुःख निरोधगामी मार्ग।

(१) दुःख—'दुःख' क्या है ? इसकी व्याख्या करते हुए बुद्ध ने सर्व दुःखं दुःखम्, सर्वं क्षणिकं क्षणिकम्' कहते हुए सम्पूर्ण संसार को दुःखस्वरूप ही माना है। बुद्ध ने कहा कि—"इदं खो पन भिक्खवे दुक्खं अरिय सच्चं। जातिपि दुक्खा, जरापि दुक्खा, मरणम्पि दुक्खं, सोक-तरिदेव-दोमनस्सुपायासायि दुक्खा अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि पिप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं....'

अर्थात्—'हे भिक्षुओं, यह दुःख का उत्तम सत्य है। जन्म दुख है, वृद्धावस्था दुःख है, मरण दुःख है, प्रिय से वियोग दुःख है, जिसे चाहो। वह न मिले यह भी दुःख है। सारांश यह है कि जीवन की कामनाओं में लिप्त रहना दुःख है।'

इस प्रकार बुद्ध के अनुसार सब कुछ दुःख ही दुःख है इससे छुटकारा पाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए बुद्ध ने अन्य मार्ग बताएँ हैं।

(२) दुःख-समुदय—बुद्ध ने उपदेश दिया कि "इदं खो पन भिक्खवे दुक्खसमुदयं अरियसच्चं। योतं तण्हा पोनब्भविका नन्दि रागसहगता तत्र तत्र भिनन्दिनी सेममीदं कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।

अर्थात् हे भिक्षुओ दुःख-समुदय (दुःख का कारण) दूसरा आर्य सत्य है।

दुःख का वास्तव हेतु है-तृष्णा। यह तृष्णा विषयों के राग से युक्त है, उससे उत्पन्न है, और उन विषयों का अभिनन्दन करने वाली है। यह तीन प्रकार की है—कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा।

कामतृष्णा का क्या परिणाम होता है यह बुद्ध ने "मज्झिम निकाय (१।२।३) में स्पष्ट किया है—"काम के लिए ही राजागण संघर्ष करते हैं, क्षत्रिय क्षत्रिय से, ब्राह्मण-ब्राह्मण से, गृहपति-गृहपति से, माता-पुत्र से, भाई-भाई से, मित्र-मित्र से संघर्ष करते हैं। इस परस्पर विग्रह विवाद में एक दूसरे पर हाथ से, डंडे से, शस्त्र से प्रहार करते हैं, मरने पर मरण दुःख को प्राप्त होते हैं।" इस प्रकार बुद्ध के अनुसार तृष्णा दुःख का मूल है।

(३) दुःख निरोध—दुःख और दुःख का कारण बताने के बाद दुःख को दूर करने का उपाय बताना भी आवश्यक था। अतः बुद्ध के अनुसार दुःख का कारण अविद्या और तृष्णा है। इन दोनों का नाश होने पर दुःख स्वतः नष्ट हो जाएगा, ऐसा मानकर तृष्णा को समाप्त करने का आदेश बुद्ध ने दिया। कहा कि "दुःख निरोध आर्यसत्य उस तृष्णा से अशेष सम्पूर्ण वैराग्य का नाम है, उस तृष्णा का त्याग, प्रतिसर्ग, मुक्ति तथा अनालय यही है।',

दुःखविरोध को 'निर्वाण' भी कहा जा सकता है। निर्वाण—अखंड शांति की अवस्था है। इस अवस्था में तृष्णा का नाश हो जाता है। प्राणी जीवन्मुक्त हो जाता है। तृष्णा के निःशेष हाने पर उपादान-निरोध और उपादान निरोध होने पर भव निरोध, पुनः जन्म निरोध हो जाता है। इसके अनन्तर जरा, मरण, शोक आदि दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है।

(४) दुःख निरोध मार्ग—किन्तु इस दुःख को दूर करने का उपाय क्या है? यह प्रश्न उस काल में जिज्ञासुओं द्वारा भी अवश्य उठाया गया होगा, जिसके परिणामस्वरूप बुद्ध ने शील, समाधि, प्रज्ञा को दुःखनिरोध का मार्ग बताया। यह चतुर्थ व अंतिम आर्य सत्य है। इस मार्ग को ही 'अष्टांगिक मार्ग' संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। इस मार्ग का उपदेश बुद्ध ने अपने शिष्यों को दिया था। यह 'धर्म चक्र प्रवर्तन' के नाम से प्रसिद्ध है। 'धर्म चक्र प्रवर्त्तन सूत्र'—संयुक्त निकाय (५५।२।१) में बुद्ध का उपदेश है कि—'भिक्षुओ! इन

दो अतियों का सेवन नहीं करना चाहिए—काम सुख में लीन हो जाना और शरीर यातना में लग जाना। इन दोनों अतियों का त्याग (मैंने) मध्यम-मार्ग खोज निकाला है, जो आँख देने वाला, ज्ञान कराने वाला, शांति देने वाला है। वह मध्यम मार्ग यही अष्टांगिक मार्ग है। यह है—

(१) सम्मा दिट्ठ (सम्यक् दृष्टि) (२) सम्मा संकल्प—(सम्यक् संकल्प)	प्रज्ञा
(३) सम्मा वाचा (सम्यक् वाक्) (४) सम्मा कम्मान्त (सम्यक् कर्म) (५) सम्मा जीव (सम्यक् आजीविका)	शील
(६) सम्मा वायाम (सम्यक् व्यायाम) (७) सम्मा सति (सम्यक् स्मृति) (८) सम्मा समाधि (सम्यक् समाधि)	समाधि

यद्यपि भगवान बुद्ध ने इन चार आर्य-सत्यों का प्रचार व प्रसार स्वयं किया व शिष्यों द्वारा भी कराया। किन्तु बुद्ध से पूर्व व्यास तथा विज्ञान-भिक्षु ने 'व्यास-भाष्य' में कहा है कि—

"यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूह रोगो रोगहेतुः आरोग्यं भैषज्यमिति। एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहम् तद यथा संसारः संसारहेतुः मोक्षो मोक्षोपाय इतिः (व्यास भाष्य (२।१५)।

अर्थात् "अध्यात्मशास्त्र चिकित्साशास्त्र के समान चतुर्व्यूह है। जिस प्रकार चिकित्साशास्त्र में रोग, रोगहेतु (कारण), आरोग्य (दवा का नाम) तभा भैषज्य है। उसी भाँति दर्शनशास्त्र में संसार (दुःखरूप), संसार हेतु (दुःख का कारण) मोक्ष (दुःख का नाश), तथा मोक्ष का उपाय—ये चार सत्य माने जाते हैं। वैद्य की ही भांति तत्वज्ञानी भी उपायों द्वारा संसार दुःख को दूर कर नाश कर देता है।"

दसशील—चार आर्य सत्य व अष्टांगिक मार्ग के अतिरिक्त भगवान बुद्ध ने १० शीलों का वर्णन भी किया है जो कि प्राणी के लिए अत्यन्त उपयोगी है ये हैं—

(१) 'अहिंसा परमो धर्मः' का प्रचार किया। हिंसा का विरोध किया और

उपदेश दिया कि 'किसी जीव को मारना या मरवाना नहीं चाहिए। न ही किसी को ऐसा करने की प्रेरणा देनी चाहिए। अपितु विरोध करना चाहिए। अतः अहिंसा का प्रचार किया।

(२) चोरी का त्याग करना चाहिए। पराई या अदत्त वस्तु को लेने की लालसा नहीं करनी चाहिए।

(३) ब्रह्मचर्य पर जोर दिया है। व्यभिचार को जलते हुए अंगारे के समान बताया है, जिसका त्याग ही उचित है।

(४) झूठ बोलना पाप है। न ही स्वयं झूठ बोलना चाहिए न किसी को प्रेरित करना चाहिए। वैदिक ऋषियों ने भी सत्य को स्वीकार किया।

(५) सुरा, मांस आदि नशीले व मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।

(६) नृत्य, गीत, वादित्र आदि का प्रयोग भी बुद्ध ने वर्जनीय माना है, क्योंकि इनके प्रयोग से तृष्णाएँ बढ़ती हैं।

(७) गन्ध, विलेपन, आभूषणादि का भी बहिष्कार किया है।

(८) रात्रि-भोजन का भी निषेध किया है।

(९) 'भूमि-शयन ही श्रेष्ठ है।'

(१०) धन, वैभव सम्पदा से निर्लिप्त रहना चाहिए।

इन दस शीलों के आचरण से मानव को मुक्ति प्राप्त होती है। इस विवेचन से ज्ञात होता है कि इन शीलों का आचरण प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है क्योंकि इनके द्वारा ही दुःख निरोध सम्भव है और मानव उच्च से उच्चतम स्तर तक पहुँच सकता है।

गौतम बुद्ध हिन्दू-देवताओं को सम्मान लेते थे। उनके लिए जीवन में पवित्रता का होना अत्यन्त आवश्यक है। बुद्ध जाति के वर्ण स्थान पर गुणों को प्रधानता देते थे। उनका कहना था कि "हे भिक्षुओ जिस भाँति बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्र में गिरकर अपना नाम त्याग देती हैं उसी प्रकार भिक्षु हो जाने पर उनमें वर्ण भेद नहीं रहता। धार्मिक जीवन में सब ऊँच नीच समान हो जाते हैं।"

बुद्ध की शिक्षाएँ व उपदेश इतने गहन व सारयुक्त थे कि न केवल भारत में अपितु विश्व में भी उनका अत्यधिक प्रसार भी हुआ और साथ ही आदर व सम्मान भी। बुद्ध की शिक्षाओं का महत्व न केवल उस काल में था, अपितु आज भी है और सदैव युग-युगों तक यह महत्व अक्षुण्ण बना रहेगा।

प्रश्न—बुद्ध के दार्शनिक विचारों का उद्‌घाटन कीजिए।

उत्तर—प्रत्येक धर्म का आधार कोई न कोई दर्शन होता है। या कहें कि धर्म का महत् भवन दर्शन की नींव पर खड़ा होता है। बौद्ध-धर्म का आधार भी कुछ दार्शनिक सिद्धान्त हैं। गौतम बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया, बुद्ध ने जो भी सार तत्व अनुभव किया, उसे उपदेशों के माध्यम से अनुयायियों को दिया। गौतम बुद्ध ने जो भी दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित किए और जो भी शिक्षाएँ दीं, वे आज भारत ही नहीं, विश्व के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण अमूल्य निधियां हैं।

बुद्ध ने आत्मा व जगत् का अत्यन्त स्पष्ट रूप से विवेचन किया है। दर्शन-शास्त्र प्राणियों की जिज्ञासाओं को शांत करने का उपचार है। वस्तुतः क्या, क्यों और कैसे? इन्हीं जिज्ञासाओं ने दर्शन-शास्त्र को जन्म भी दिया है।

बुद्ध ने जगत् व आत्मा के सम्बन्ध में विचारों को प्रकट किया है। उन्हें हम इस प्रकार जान सकते हैं—

(१) ईश्वर नहीं है।

(२) आत्मा अनित्य है।

(३) ग्रन्थ अपौरुषेय या स्वतः प्रमाण नहीं है।

(४) जीवन केवल शरीर की परिधि में नहीं है।

प्रथम तीन सिद्धांत नकारात्मक और अंतिम एक स्वीकारात्मक है।

(१) ईश्वर नहीं है—बुद्ध ने वैदिक ईश्वरवादी सिद्धांत को उलट दिया। बुद्ध ने 'प्रतीत्यसमुत्पाद' सिद्धांत के द्वारा ईश्वर की अस्थिति को स्पष्ट कर दिया है। प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत के अनुसार एक वस्तु का विनाश होने पर ही दूसरी वस्तु का निर्माण होता है। ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं माना जा सकता, क्योंकि फिर जगत् के भले-बुरे सभी कर्म ईश्वर में भी

होने चाहिए। जब कि ईश्वर अमल, निर्विकार और गुण दोषों से रहित है। यदि ईश्वर को निमित्तकारण माना जाए तो उपादान का होना आवश्यक है। जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़े को बनाता है, कुम्हार निमित्त कारण, मिट्टी उपादान कारण और जगत् कार्य है। तो ईश्वर निमित्त होने पर जगत् का उपादान कारण कुछ भी ज्ञात नहीं होता। बिना उपादान कारण के कार्य सम्भव नहीं। (बिना मिट्टी के घड़ा बन ही नहीं सकता।) यदि उपादान कारण को न मानें तो अभाव से भाव की उत्पत्ति माननी होगी और कारण-कार्य मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

ईश्वर को ही प्रधान कर्त्ता मानने से मानव अपने किए सुख-दुःखादि कर्मों को क्यों भोगता है ? ईश्वर को ही भोगना चाहिए।

अत: इस प्रकार के तर्कों से बुद्ध के अस्तित्व में संदेह व्यक्त किया है। बुद्ध ने अपने उपदेशों में स्पष्ट कहा है कि—'आदि मानव को ही परवर्त्ती मानव ने भ्रमवश ईश्वर मान लिया।' इतना ही नहीं, बुद्ध ने कहा—"कि ये ब्राह्मण अंधे के पीछे चलने वाले अंधों की भाँति बिना जाने-देखे ईश्वर ब्रह्म आदि पर विश्वास करते हैं।

उस काल में बुद्ध के इस सिद्धांत ने विचारधारा में एक क्रांति उत्पन्न कर दी थी।

'आत्मा अनित्य है'—बौद्ध दर्शन आत्मा को नहीं मानता। अत: इसे अनात्मवादी दर्शन भी कह सकते हैं। बुद्ध का उपदेश था कि—"शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। वह स्कंध के योग से उत्पन्न एक शक्ति है, जो क्षण-क्षण में उत्पन्न विनष्ट होती है। इसलिए हम अनित्य हैं अनात्म हैं।" बौद्ध दर्शन सभी वस्तुओं को क्षणभंगुर व अनित्य मानता है—'सर्वं क्षणिकं क्षणिकम्'। अत: आत्मा भी अनित्य है और शरीर के नष्ट हो जाने पर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। बुद्ध के अनुसार 'आत्मा दीपशिखा की भाँति है। जैसे दीप के जलने तक दीपशिखा रहती है ऐसे ही शरीर के रहने तक आत्मा रहती है।'

उपनिषदों में प्रतिष्ठित आत्मवाद का बुद्ध ने खंडन किया है। 'जो मेरा

यह अनुभवकर्त्ता, अनुभव का विषय है और अपने भले-बुरे कर्मों को अनुभव करता है वह आत्मा नित्य, ध्रुव, शाश्वत और अपरिवर्तनशील है, अनन्त तक ऐसा ही रहेगा, यह भिक्षुओं वाला धर्म (मूर्खों का विश्वास) है।'

बुद्ध के अनुसार आत्मा अनित्य, अस्थायी होते हुए भी वस्तु-सत् है, उपनिषदों की भाँति। अनात्मवादी होते हुए भी बौद्ध दर्शन भौतिकवादी नहीं था। बौद्ध धर्म के अनुसार—"वही जीव है, वही शरीर है, दोनों ही एक है।"

'कोई भी ग्रंथ अपौरुषेय या स्वतः प्रमाण नहीं है'——बुद्ध ने किसी भी ग्रंथ को प्रामाणिक या अपौरुषेय स्वीकार नहीं किया। बौद्ध दर्शन के अनुसार परिशुद्धि और मुक्ति, मानव कर्म द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। अतः कर्म करने के लिए उसे स्वतन्त्र होना चाहिए। कर्म की स्वतन्त्रता बुद्धि की स्वतन्त्रता पर निर्भर है। बुद्धि की स्वतन्त्रता को बुद्ध ने किसी ग्रन्थ विशेष की परतंत्रता में नहीं बाँधा। अतः किसी भी ग्रन्थ को प्रामाणिक व अपौरुषेय स्वीकार नहीं किया।

(४) 'जीवन निरंतर गतिशील है'—बुद्ध ने जीवन को सतत् प्रवहशील माना है। इसके अनुसार शरीर असंख्य परिवर्तनशील अणुओं का संगठन है। अणु बनते हैं और मिटते हैं। कर्म के अनुसार जीवन में सुख-दुःख प्राप्त होते रहते हैं। जीवन का प्रवाह शरीर की परिधि में ही सीमित नहीं है। वह शरीर से पूर्ण भी था और बाद में भी रहेगा।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचित सिद्धांत बुद्ध के प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत हैं। इसके अतिरिक्त अनेक सिद्धांत हैं जो कि बौद्ध दर्शन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

क्षणिकवाद—बौद्ध दर्शन में किसी भी वस्तु को स्थायी नहीं माना जाता है। सभी कुछ क्षणिक व अनित्य है। कोई भी वस्तु एक क्षण से अधिक देर तक नहीं टिकती। वस्तु ही नहीं, बुद्ध ने आत्मा को भी क्षणिक माना है। जगत्, आत्मा सभी अस्थायी व क्षणभंगुर है। क्षणवाद और अनित्यवाद दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसी से आगे जाकर—'शून्यवाद' का प्रसार हुआ।

पुनर्जन्मवाद एवं परलोकवाद—बुद्ध ने यद्यपि आत्मा को भी अनित्य

माना है, किन्तु जीवन का शाश्वत प्रवाह स्वीकार किया है। इसी कारण पुनर्जन्मवाद व परलोक को भी स्वीकार किया है। समस्त जातक-साहित्य पुनर्जन्मवाद पर ही आधारित है। जातक-कथाओं में अतीत कालीन पिछले जन्म की घटनाओं पर ही वर्तमान घटनाओं को आधारित बताया गया है। पशु, पक्षी मनुष्यों के सभी पुनर्जन्म इस सिद्धान्त का पोषण करते हैं। बुद्ध ने पुनर्जन्मवाद के साथ-साथ योगवाद पर भी विशेष बल दिया है और स्वीकार किया है कि कर्म के अनुसार ही जीवन का भोग करना पड़ता है। कर्मों का भोगकर लेने पर ही मानव परलोक में मुक्त होता है। अनेक जातक कथाएँ इस सिद्धांत की पुष्टि करती हैं। 'मखादेव जातक' के द्वारा ही पुनर्जन्मवाद, भोगवाद तथा परलोकवाद का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

बुद्ध ने पुण्य और पाप की सत्ता भी स्वीकार की है। बुद्ध ने उपदेश दिया कि पुण्य करने से स्वर्ग और पाप से नरक की प्राप्ति होती है अतः शील व सदाचार का पालन करना चाहिए। दोनों लोकों के भागों को भोग लेने पर हीं प्राणी परलोकवासी होता है। 'राजोवाद-जातक' में इसका स्पष्ट उदाहरण मिलता है। इससे 'कर्मवाद' की भी प्रतिस्थापना होती है।

'अहिंसा' भी बौद्ध-दर्शन का मुख्य सिद्धान्त है। बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं में प्राणातिमात्र की हिंसा करने का भी निषेध किया है। अहिंसा पाप और पुण्य का कारण बनती है। पाप से पुनः भोग और पुनः जन्म। अतः पापों का क्षय कर्म-भोग व अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। अनेक जातकों में बुद्ध ने अहिंसा का उपदेश दिया है। 'ससजातक' में इसको देखा जा सकता है। यज्ञ के अवसर पर की जाने वाली बलि का भी बुद्ध ने विरोध किया है (मृतक भत्त जातक)। पाप व पुण्य के अनेक भोगों का निर्देश 'सुप्पारक जातक' में किया गया है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों से बौद्ध दर्शन का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। बुद्ध ने यद्यपि आत्मा व ईश्वर को न मानते हुए भी, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, जीवन-मृत्यु का उल्लेख किया है। उल्लेख ही नहीं भली-भाँति विवेचन व विश्लेषण भी किया है।

बौद्ध-दर्शन अपने सिद्धान्तों की गरिमा के कारण अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है। इसका महत्व युग युगों तक अक्षुण्ण है।

प्रश्न—जातक-कथाओं में हास्य, व्यंग्य और विनोद की आवश्यकता और स्थान का निरूपण कीजिए।

उत्तर—हास्य, व्यंग्य और विनोद ये जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। अथवा कहें कि जीवन इनसे अलग नहीं है, तो अनुचित न होगा। प्रत्येक काल में इनका महत्व सदा अक्षुण्ण रहा है। जातक-काल में भी मानव जीवन से इनका सम्बन्ध और उस सम्बन्ध की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य में भी देखी जा सकती है। साहित्य में सरसता, सरलता व रोचकता का समावेश करने के लिए हास्य-विनोद अत्यन्त आवश्यक हैं। साहित्य में हास्य का इतना अधिक महत्व है कि उसे 'रस' माना गया है। साहित्य कैसा भी हो धार्मिक, राजनैतिक या सामाजिक उसमें जीवन को व्यक्त करने वाले इन तत्वों का होना नैसर्गिक है।

जातक-साहित्य में यद्यपि धर्मोपदेशों की प्रधानता है। बुद्ध ने स्वानुभूत सार तत्व को जन-सामान्य के कल्याण के लिए प्रसारित व प्रचारित किया। यह धर्मोपदेश जातक-कथाओं के माध्यम से भी जन-जन तक पहुँचा। इस दृष्टि से देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि जातक-साहित्य धार्मिक-साहित्य है। कल्पना जहाँ काव्य को मोहक रूप प्रदान करती है, वहाँ हास्यादि भी इस मनोरमता की वृद्धि ही करते हैं। हास्यादि तत्व ऐसे हैं जिनसे पाठक के मन पर अमित प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि हास्य, व्यंग्य और विनोद से परिपूर्ण जातक-कथाएँ मानव-मन को प्रभावित करने वाली हैं।

भगवान बुद्ध का यह प्रयास था कि शील और सदाचार के मार्ग पर जनता आ सके। इसके लिए जन-सामान्य को बाध्य नहीं किया जा सकता था किन्तु मानव मन की सहज प्रवृत्ति को आकर्षित करके धर्मोपदेश ग्रहण कराए जा सकते थे। अतः इस कार्य को हास्यादि पूर्ण जातक-कथाओं ने सफलतापूर्वक पूर्ण किया। बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों, मान्यताओं, शिक्षाओं को घटनाओं, संवादों और परिस्थितियों के माध्यम से प्रकाशित किया। उन्होंने प्रकारान्तर से अन्य

सिद्धान्तों का खंडन किया। वस्तुतः जातक चासनी चढ़ी कुनैन की तरह है, जिसे श्रोता व पाठक धैर्यपूर्वक ग्रहण कर लेता है, यह चासनी है हास्य, व्यंग्य व विनोद की। इसके अतिरिक्त अन्य सिद्धान्तों व विधर्मियों तथा विपक्षियों की मान्यताओं पर व्यंग्य करना भी जातककार का लक्ष्य है, और भावनाओं व क्रियाओं में मूर्खता दिखाकर उपहास भी किया है। बुद्ध ने जातक-कथाएँ इस दृष्टि से अत्यन्त रोचक, सार्थक, सोद्देश्य व मनोरम बन गई हैं।

'पालि-जातकावलि' के प्रथम जातक 'सुंसुमार-जातक' में बन्दर व मगर का परस्पर वैर तथा बन्दर की प्रत्युत्पन्नमति और मगर की स्थूल बुद्धि का सुन्दर चित्रण किया गया है। मगर का अपनी स्थूल बुद्धि से बन्दर को हरे-भरे प्रदेश में ले जाने का लालच देकर उसे मार डालने का प्रयास करना और बन्दर को मालूम होने पर, उसके द्वारा मगर का ठगा जाना, हास्य, विनोद व व्यंग्य का सुन्दर उदाहरण है।

'''''सचे हि अम्हाकं उदयं हृदयं भवेय्य, साखग्गेसु चरन्तानं चुण्णविचुण्णं भवेय्या' ति।'

'कहं पन सपेथा, ति।'

बोधिसत्तो अतिदूरे एकं उदुम्बरं पक्कफलपिण्डि सम्पन्नं दस्सेन्तो 'पस्सेतानि अम्हाकं हृदयानि एकिस्मं उदुम्बरे आलम्बन्तीति।'

अर्थात् 'यदि हमारे हृदय उदर में हों तो डालियों पर झूलते हुए चूर्ण-विचूर्ण हो जाएँ।'

'तुम कहाँ रखते हो ?'

बोधिसत्व ने दूर एक पके हुए फल वाले गूलर के पेड़ को दिखाते हुए कहा 'हमारे हृदय इस गूलर पर लटके हैं।'

वस्तुतः यह हास्य का रोचक प्रसंग है। वह बन्दर मगर का उपहास करता है :—

'महती वत ते बोन्दि न च पञ्जा तदूपिका
सुंसुमार वञ्चितोसि गच्छ दानि यथा सुखन्ति।

'हे मगर 'तुम्हारा शरीर ही बड़ा है, बुद्धि नहीं। तुमको मैंने ठग लिया अब कहीं और जाओ।'

इस संवाद के द्वारा मूर्ख व विपक्षियों का उपहास भी ज्ञात होता है कि केवल शरीर बड़ा होने से ही बुद्धि तीक्ष्ण नहीं होती और ऐसे व्यक्ति धोखा ही खाते हैं।

'वानरिन्द-जातक' में भी वानर और कुम्भील के संवाद अत्यन्त हास्यपूर्ण, चुटीले तथा व्यंग्यात्मक हैं, जो पाठक को न केवल चमत्कृत ही करते हैं अपितु उसे हँसाते भी हैं। पत्थर से वार्तालाप करने की कल्पना भी कितनी रोचक है।

देखिए—'पासाणो किं परिवचनं न दस्सती' ति।' पुनपि नं वानरो 'किं भो पासाण अज्ज मह्यं परिवचनं न देसी' ति अह। कुंभीलो 'अद्धा अज्जेसु दिवसेसु अयं पासाणो वानरिन्दस्स परिवचनं अदासि' दस्सामि दानिस्स परिवचनन्ति····।'

अर्थात्—'हे पत्थर, क्या आज जवाव नहीं दोगे ?' फिर से हे पत्थर, आज क्यों मेरी वात का जवाव नहीं देते हो ?'

कुम्भील ने सोचा कि अन्य दिनों में यह पत्थर इस वानर को जवाव देता होगा' अतः आज मैं जवाव दूंगा।'

कुम्भील यह न सोच सका कि पत्थर कैसे वोल सकता है। एक सामान्य सा सिद्धान्त है कि असत्य से सत्य को जाना जा सकता है। यह सिद्धान्त यहाँ भी लागू दिखाई देता है। वानर इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण व्यवहार से कुम्भील की कपटता को जान लेता है।
तथा अंत में कुम्भील उसकी प्रशंसा भी करता है—

'यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द। यथा तव
सच्चं धम्मो धिती चागो दिट्ठ सो अतिवत्तनीति।'

अर्थात्—'हे वानर, जिसको तेरे समान ये चारों धर्म प्राप्त हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग, वह शत्रु को जीत लेता है।'

इस प्रशंसा से शत्रु का उपहास (स्वयं द्वारा) जहाँ स्पष्ट है, वहाँ प्रत्युत्पन्न-मतित्व व विनोद की झलक भी मिलती है।

जातक-कथाओं में इस प्रकार के प्रसंगों की कमी नहीं है। 'बक-जातक' में भी हास्य और विनोद का पुट अत्यन्त सुन्दर है। केकड़े और बगुले का मामा-भानजे का सम्बन्ध व तदनुरूप वार्तालाप शुद्ध हास्य की सृष्टि करता है। इतना ही नहीं बगुले की मरण-भयभीत दशा का वर्णन भी अत्यन्त विनोदकर है। सम्पूर्ण जातक हास्य व विनोद का वातावरण उपस्थित करता है।

'सीहचम्म जातक' में भी विनोद की पर्याप्त सामग्री है। बनिये का गधे को सिंह चर्म पहनाकर खेतों में छोड़ देना और स्वयं विश्राम करने का प्रसंग अत्यन्त विनोदपूर्ण है। किन्तु गधे की आवाज से किसानों का भय दूर होना और फिर उसकी पिटाई होना ये सभी हास्य-पूर्ण स्थितियाँ तो हैं ही, साथ ही नीति सिद्धान्तों की भी पोषक भी हैं। 'भले बुरे सब एक से जब लौं बोलत नाहिं' इसका सुन्दर उदाहरण है यह जातक।

'न-च-जातक' में भी हास्य की झलक है। व्यक्ति कभी-कभी अति-प्रसन्न होकर ऐसे कार्य कर डालता है, जिसके कारण वह उपहास का पात्र तो बनता ही है, अन्यों के लिए हास्य की स्थिति भी उत्पन्न करता है। मोर की जब बहुत प्रशंसा होती है और हंसदुहिता उसे पति रूप में पसन्द करती है, तो प्रसन्नता के अतिरेक में मोर सब कुछ भूलकर नाचने लगता है और वह नाचते-नाचते नंगा हो जाता है, जिसके फलस्वरूप न तो उसे हंसदुहिता मिलती है और न प्रशंसा।

'रुदं मनुज्जं रुचिरा च पिट्ठो, वेलुरियवण्णू पनिभा च गीवा।
व्याममत्तानि च पेक्खुणानि, नच्चेन ते धीतरं नो ददामि ति।

अर्थात्—'वाणी मनोज्ञ है, पीठ सुन्दर है, गर्दन वैदूर्य मणि के समान है तथा चार हाथ लम्बी पाँखे हैं, किन्तु नाच से तुझे मैं अपनी पुत्री नहीं दूँगा।'

'उलूक-जातक' के द्वारा भी हास्य उत्पन्न होता है। काक का यह कहना कि—'एतस्स इमस्मिं राजाभिषेककाले एवरूपं मुखं, कुद्धस्सं किदिसं भविस्सती' ति।' 'देखो राज्यभिषेक के समय इसका (उल्लू का) मुख ऐसा है इसके क्रोधित होने पर कैसा होगा?' उपहासात्मक तो है ही तथा अदर्शनीय व्यक्तियों पर व्यंग्य भी है।

'चम्मसारक-जातक' तो वस्तुतः शुद्ध हास्यपूर्ण है। किसी परिव्राजक का मेढ़े को अपना आदर सत्कार करने वाला समझना हास्यपूर्ण ही है। मेंढ़ा पीछे हटता है उसे मारने के लिए वह उसे आदरसूचक समझता है। परिव्राजक की यह गाथा पाठक को हँसी से लोट-पोट कर देती है—

'कल्याणरूपो वत यं चतुप्पदो सुभद्दको चेव सुपेसलो च
यो ब्राह्मणं जातिमन्तूपपन्नं अपचायती मेण्डवरो यसस्सीति।

अर्थात् "यह पशु उत्तम स्वभाव का है। सुन्दर और प्रिय आचरण वाला है, जोकि जाति और मंत्र से युक्त ब्राह्मण का सत्कार कर रहा है। यह श्रेष्ठ और यशस्वी मेंढा है।"

इसके अतिरिक्त 'वैदब्भ जातक', 'उच्छङ्गजातक', आदि के द्वारा भी हास्य व विनोद की झलक प्राप्त होती है।

विवेचन के आधार पर सहज ही हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 'पालि जातकावलि' में संगृहीत जातकों में हास्य, विनोद व व्यंग्य के वातावरण के द्वारा रोचकता, नवीनता, ग्राह्यता का समावेश स्वतः ही हो गया है। हास्यादि का जातकों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, यह निर्विवाद है।

प्रश्न—जातकों के व्यावहारिक पक्ष पर एक लेख लिखिए।

उत्तर—जातक-साहित्य तत्कालीन जीवन के विविध पक्षों का सुन्दर चित्र उपस्थित करता है। जातक-साहित्य में लगभग पशु या पक्षियों के माध्यम से विविध मान्यताओं का उद्घाटन किया गया है। कहीं पर ये पक्षी नायक हैं, कहीं प्रतिनायक। इनके माध्यम से भगवान बुद्ध ने व्यावहारिक पक्ष को उद्घाटित किया है। हास्य, व्यंग्य व विनोद के समावेश के कारण इसमें रोचकता व मनोरमता आ गई है। इस प्रकार बौद्ध-दर्शन के सिद्धान्त व बुद्ध की शिक्षाएँ सहज रूप से मानव को प्रभावित करती हैं। विभिन्न उद्धरणों के द्वारा जातक-कथाओं में निहित व्यावहारिक पक्ष स्पष्ट होता है।

व्यावहारिकता का पूर्ण ज्ञान मानव को आपत्ति से उबार लेता है। अतः इस व्यावहारिकता की शिक्षा जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'सुंसुमार-जातक' में वानर का प्रत्युत्पन्नमतित्व उसकी व्यवहार चतुराई का सुन्दर उदा-

हरण है। वानर का कथन·········पस्सेतनि अम्हाकं हृदयानि एकस्मिं उदुम्बरे ओलम्बन्ती' ति, 'हमारे हृदय इस गूलर के पेड़ पर लटके हैं।' यह कहकर और मगर,को ठगकर वह गूलर के पेड़ पर पहुँच जाता है । इस प्रकार प्राण रक्षा करता है।

'महती वत ते बोन्दि न च पञ्जा तदूपिका
सुंसुमार, वञ्चितोसि गच्छ दानि यथासुखन्ति ।'

अंत में वानर, मगर को अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देता है—'हे मगर तुम्हारा शरीर ही बड़ा है बुद्धि नहीं। मैंने तुमको धोखा दिया, अब अपनी इच्छानुसार जाओ।' इससे ज्ञात होता है कि उस काल में प्राणरक्षा के लिए झूठ बोलना भी पाप नहीं था। 'शठे शाठ्यं समाचरेत' अर्थात् 'धूर्त के साथ धूर्तता का व्यवहार करे' यह सिद्धान्त भी मान्य था।

'वानरेन्द्र जातक' का वानर भी रास्ते में छिपे हुए कुम्भील को जानकर अपनी चतुरता के कारण उसी के मस्तक पर पाँव रखते हुए नदी पार कर लेता है। वानर मगर की मोटी बुद्धि को जानते हुए पत्थर से इस भाँति बातें करता है, जैसे वह पत्थर रोज ही उससे बातें करता है। मगर इसको वानर की चालाकी न समझ कर जवाब दे देता है और वानर का सदेह विश्वास में बदल जाता है, वह अत्यन्त चतुराई से प्राणरक्षा करता है।

'कुरङ्गमिग-जातक' व्यावहारिकता की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर जातक है। हिरन, सारस और कछुए की मैत्री का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है। हिरन के जाल में फँस जाने पर सारस तथा कछुए ने अपने सहयोग द्वारा हिरन की प्राणरक्षा कर अपना मैत्री कर्त्तव्य निभाया। इस जातक में 'संघे शक्तिः कलौ युगे' का सुन्दर प्रतिपादन किया है। वैसे भी कहावत है कि 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।'

'बक-जातक' का केकड़ा भी अपनी व्यावहारिकता से व चतुराई से बगुले का अंत करता है और अपनी रक्षा करता है। जिसे देखकर वृक्षदेवता प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि—

'नाच्चन्तनिकतिपञ्जो निकत्या सुखमेधति
आराधेनिकतिपञ्जो बको कक्कटामिवाति ।'

अर्थात् 'अत्यन्त धोखेबाज, धोखेबाजी से सुख प्राप्त नहीं करता। धोखेबाज उसी प्रकार दुःख प्राप्त करता है जैसे कि केकड़े द्वारा बगुला को दुःख प्राप्त होता है।'

'राध-जातक' में पोट्ठपाद व राध नामक तोतों में से पोठ्ठपाद ने इसी व्यावहारिकता के अभाव में अपने प्राण गँवा दिए। जब कि राध नामक तोते ने परिस्थिति व समय देखकर तथा पोठ्ठपाद के अंत को देखकर ब्राह्मण के आने तक कुछ न कहा। ब्राह्मण के पूछने पर उसने अपनी चतुराई से सत्य बात का परोक्ष रूप से प्रकट कर दिया—

'न खो पनेतं सुभणं गिरं सच्चूपसहितं।
सयेथ पोट्ठपोदावं मुम्मुरे उपकूलितो।'

अर्थात् 'सत्य से युक्त यह बात कहने योग्य नहीं है (नहीं तो कहने पर) पोठ्ठपाद की भाँति चूल्हे में भुनकर सोना पड़ेगा।' अपने व्यवहारपूर्ण व्यवहार से वह मुक्त हो जाता है।

'जवसकुण-जातक' में सिंह के गले में लगी हुई हड्डी को कठफोड़क पक्षी निकालता है। वह जानता है कि सिंह हड्डी के निकल जाने पर उसे खा लेगा। यद्यपि सिंह उसे यह आश्वासन देता है कि 'वह उसे नहीं मारेगा।' किन्तु पक्षी उसके स्वभाव को जानकर और सोचकर '....यथा मुखं पिदहितुं न सक्कोति तथा तस्स अधरोष्ठं च उत्तरोठ्ठे च दण्डकं ठपेत्वा मुखं पविसित्वा अट्ठिकोटिं तुण्डेन पहरि।' 'जिससे कि यह शेर मुख बंद न कर सके यह सोचकर उसके अधरोष्ठ व उत्तरोष्ठ के मध्य एक लकड़ी लगाकर मुख में प्रवेश करके चोंच से हड्डी पर प्रहार किया।

सत्य भी है 'स्वभावो दुरतिक्रमः, अतः पक्षी ने चातुर्य्यपूर्ण व विवेक द्वारा भविष्य की चिंता करके अपनी रक्षा का प्रबन्ध करके, सिंह को उस दुःख से मुक्त किया, अन्यथा वह उस पक्षी की जीवन लीला समाप्त किए बिना न मानता। पक्षी की अंतिम दोनों गाथाएँ व्यावहारिक दर्शन को सुन्दर रूप से प्रस्तुत करती हैं—

'अकतञ्ञं अकत्तारं कतस्स अप्पतिकारकं
दास्मिं कतञ्जता नत्थि निरत्था तस्स सेवना।
यस्स सम्मुखचिण्णेव मित्तधम्मो न लब्भति
अनुसूय्यं अनक्कोसं सणिकं तम्हा अपक्कमे' ति।

अर्थात् 'अकृतज्ञ और, किए हुए का प्रतिकार करने वाले नहीं है, और जिसमें कृतज्ञता नहीं, उसकी सेवा व्यर्थ है। जिसके समक्ष अच्छा कार्य करने से मित्र धर्म की प्राप्ति नहीं होती है, विना क्रोध किए और बिना ईर्ष्या किए उससे दूर हट जाना चाहिए।'

ये गाथाएँ सुन्दर व्यवहार को प्रकट करती हैं। वस्तुतः अकृतज्ञ और अप्रतिकारक न तो ईर्ष्या के पात्र हैं और न ही क्रोध के। क्योंकि उनके लिए मित्रता की कोई कीमत नहीं होती। जातक कथाओं में व्यावहारिकता का सुन्दर निर्दशन हुआ है।

'वावेरू-जातक' में चतुर व्यापारियों की कथा है। वैसे भी वनिए अपनी व्यापार पद्धति में अत्यन्त चतुर व व्यवहार कुशल होते हैं। व्यापारी के लिए व्यवहार कुशल होना अत्यन्त आवश्यक भी है। इस जातक में व्यापारी पक्षियों को बहुत अधिक मूल्य में वेचते हुए दिखाए गए हैं।

'वलाहास्स जातक' में भी वनिया अपनी तीक्ष्ण वुद्धि व व्यवहार-कुशलता से अपने व अन्य साथियों के प्राणों की रक्षा करता है।

'सीलनिसंस जातक' भी व्यवहार कुशलता का सुन्दर उदाहरण है। इसकी अन्तिम गाथा व्यावहारिकता का अत्यन्त सुन्दर रूप प्रकट करती है—

सब्भिरेव समासेथ सब्भि कुब्बेथ सन्थवं
सत्तं हि सन्निवासेन सोत्थि गच्छति नहापितो 'ति।'

अर्थात् 'सत्पुरुष से ही साथ करे, सत्पुरुष से ही मैत्री करे, क्योंकि सत्पुरुष के साथ रहने से नाऊ कल्याण को प्राप्त हो रहा है।'

वस्तुतः सज्जन व्यक्तियों का साथ जीवन में सदैव कल्याणकारी ही होता है। अतः सज्जनों का साथ करना चाहिए।

'उत्संग जातक' में यह व्यवहार-कुशलता अपनी चरम सीमा पर पहुँच

गई है। यह जातक अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। इसमें चोरों की स्त्रियाँ रोती हैं और राजा उनके दुःख से द्रवित होकर कहता है कि 'भाई, पति और पुत्र में से किसी को ले सकती हो।' वह अपने भाई की कामना करती है। उसकी भाई के महत्व को व्यक्त करने वाली यह गाथा अत्यन्त विवेकपूर्ण है—

'उच्छंगं देव, मे पुत्तो, पथे धावन्तिया पति
तञ्च देसं न पस्सामि यतो सोदरियमानये'ति।'

अर्थात् 'हे देव, पुत्र मेरी गोद में है। पति मार्ग में दौड़ते हुए मिलते हैं, किन्तु वह देश कहीं नहीं है जहाँ से सहोदर को प्राप्त कर सकूँ।' राजा उस स्त्री के इस चातुर्यपूर्ण व्यवहार को देखकर और विवेकयुक्त उत्तर को सुनकर प्रसन्न हो तीनों को ही छोड़ देता है। उस स्त्री की व्यवहार कुशलता व चतुरता से सभी की प्राण रक्षा होती है।

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जातकों का व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त सुन्दर व सशक्त है। इस प्रकार के व्यवहार-नीति-पूर्ण जातक कथाओं के माध्यम से बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं व सिद्धान्तों को अत्यन्त सरल रूप से हृदयग्राही बना दिया है। इस कारण इन जातक कथाओं का अतुलनीय महत्व है।

प्रश्न—'जातक कथाओं में कर्म सिद्धांत की स्थापना की गई है।' इस उक्ति के समर्थन में अपने पाठ्य ग्रंथ से उद्धरण देते हुए सिद्ध कीजिए कि कर्म सिद्धान्त का पुनर्जन्मवाद से अटूट सम्बन्ध है।

अथवा

'यदि जातक बौद्ध दर्शन के किसी विशेष पक्ष पर बल देता है तो वह है पुनर्जन्मवाद।' इस उक्ति की मीमांसा कीजिए।

उत्तर—गौतम बुद्ध ने अनेक दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। बुद्ध के प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत हैं—

(१) ईश्वर नहीं है।
(२) आत्मा नित्य नहीं है।
(३) जीवन प्रवाह शाश्वत है।

(४) क्षणिकवाद ।

(५) कर्मवाद व भोगवाद ।

(६) पुनर्जन्मवाद ।

(७) निर्वाण ।

ये सभी सिद्धान्त बौद्ध-साहित्य में यत्र-तत्र मिलते हैं। किन्तु जातक-साहित्य बुद्ध के कर्मवाद व भोगवाद का सुन्दर उदाहरण है। कर्मवाद के साथ ही साथ पुनर्जन्मवाद अभिन्न रूप से आता है।

कर्मवाद का पुनर्जन्मवाद से अटूट सम्बन्ध है। क्योंकि कर्मों का सम्पूर्ण क्षय जन्म-जन्मान्तरों तक नहीं होता है। कुछ कर्मों का क्षय होता है। कुछ संचित हो जाते हैं। कुछ पुण्य कर्म होते हैं, कुछ पाप कर्म। उन्हीं के अनुसार मानव को जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यद्यपि बुद्ध ने ईश्वर व आत्मा को नित्य नहीं माना है किन्तु फिर भी पुण्य व पाप, स्वर्ग-नरक को स्वीकार किया है। इसी कर्मवाद के आधार पर पुनर्जन्मवाद है। मानव को कर्मों के अनुसार ही जीवन प्राप्त होता है। सद्‌कर्मों के करने से अच्छा जन्म प्राप्त होता है और बुरे कर्म करने से बुरा जन्म। इसकी पुष्टि जातक-कथाओं से भली-भाँति होती है। जातक कथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि मनुष्य को पशु, पक्षियों का जन्म भी प्राप्त होता है।

जातक-कथाओं में बुद्ध के अनेक जन्मों की कथाएँ हैं, जो कि कर्मवाद व पुनर्जन्मवाद के सिद्धांत को प्रतिपादित करती हैं।

राजा मखादेव (मखादेव-जातक) की कथा में ही भोगवाद और पुनर्जन्म-वाद का सिद्धान्त एक साथ ही प्रतिपादित हुआ है।

"........तस्मिञ्ञेव मखादेवम्बवने विहरन्तो चतुरासीतिवस्स सहस्सानि चत्तारो ब्रह्मविहारे भावेत्वा अपरिहीनज्झाने ठितो कालं कत्वा ब्रह्मलोके निब्बत्तित्वा पुन ततो चुतो मिथिलायं येव निमिनाम राजा हुत्वा ओसक्कमानं अत्तनो वंसं घटेत्वा तत्थेव अम्बवने पब्बजित्वा ब्रह्मविहारे भावेत्वा पुन ब्रह्मलोकूपगोव अहोसि।"

अर्थात् "........उसी मखादेव—आम्रवन में विहार करते समय चौरासी

हजार वर्षों तक चारब्रह्म विहारों की भावना पर ध्यान के साथ ही रहते, मर कर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हो, पुनः वहाँ से च्युत, मिथिला में ही निमि नामक राजा हो, समाप्त होते हुए अपने वंश को दृढ़ करके वहीं आम्रवन में प्रव्रजित हो, ब्रह्मविहारों की भावना कर फिर ब्रह्मलोक को ही चला गया।'

इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि—

(१) राजा मखादेव चौरासी हजार वर्षों तक आम्रवन में ऋषियों की भाँति जीवन व्यतीत करता रहा।

(२) उसने मरने के बाद ब्रह्मलोक में जन्म लिया।

(३) भोग पूर्ण होने पर वहाँ से च्युत हुआ।

(४) फिर मिथिला में निमि नामक राजा का जन्म लेकर समय पर संन्यास ले पुनः ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ।

इससे स्पष्ट होता है कि मानव अपनी तपस्या आदि की शुभ साधना द्वारा ब्रह्मलोक को जाता है, किन्तु ये पुण्य कर्म क्षय हो जाने पर उसे पुनः जन्म भोग करना पड़ता है। राजा मखादेव का उदाहरण भोगवाद व पुनर्जन्मवाद को अत्यन्त सुन्दर व सशक्त रूप से उपस्थित करता है।

बुद्ध ने अहिंसा का प्रतिपादन किया था, उन्होंने हिंसा का घोर विरोध किया था और उपदेश दिया था कि 'त्वं पन सीलवा प्राणातिपातं न।' करिस्ससि।' (शश जातक)

अर्थात् 'आप शीलवान होकर जीवहिंसा मत करना।' क्योंकि 'सस-जातक' में शील में स्थित प्राणी को हिंसा करना पाप कर्म है। अतः पुण्य पाप के सम्बन्ध में प्राणी की हिंसा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त चोरी, आदि को भी पाप कर्म स्वीकार किया है।

'मतकभत्त-जातक' में श्राद्ध के अवसर पर हिंसा का विरोध किया गया है। ब्राह्मण जब मेंढ़े से उसके हँसने और रोने का कारण पूछता है तो वह पूर्व जन्म का स्मरण करके कहता है कि—"........पुब्बे तादिसो व मन्तज्झायक ब्राह्मणो हुत्वा 'मतकभत्तं दस्सामी' ति एळकं मारेत्वा अदासि। स्वाहं एकस्स एळकस्य घातितत्ता एकेमूनेसु पञ्चसु अन्तभावसतेसु सीलच्छेदं पापुणिं। अयं

मे कोटियं ठितो पञ्चसतिमो अन्तभावो। स्वाहं अज्ज एवरूपा दुक्खा मुच्चिस्सामी' ति सोमनस्सजातो इमिना कारणेन हसिं।' रोदन्तो पन 'अयं पन ब्राह्मणो मं मारेत्वा अहं विय पञ्चजातिसतानि सीसच्छेददुक्खं लभिस्सती' ति तयि कारुञ्जेन रोदिन्ति।"

अर्थात् "........मैंने पहले तुम्हारे समान ही वेद पढ़ाने वाला ब्राह्मण होकर 'श्राद्ध करूँगा' यह सोच भेड़े को मारकर किया। वह मैं एक भेड़े को मारने के कारण एक कम पाँच सौ (४९९) जन्मों में शीशच्छेद को प्राप्त हुआ। यह अंतिम पाँचसौवाँ जन्म है। 'आज मैं इस दुःख से छूट जाऊँगा, 'यह सोचकर प्रसन्न हो हँसा। रोया इसलिए कि 'यह ब्राह्मण मुझे मारकर मेरे समान पाँच सौ सीसच्छेददुःख को प्राप्त होगा' तुम्हारे ऊपर करुणा से रोया।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जीवहिंसा का भोग एक ही जन्म में नहीं समाप्त होगा, वरन् जन्म-जन्मान्तरों तक उस दुःख को सहन करना पड़ता है।' यह प्रसंग कर्मवाद तथा पुनर्जन्मवाद को स्पष्ट करता है और पुष्ट करता है।

'सुप्पारक-जातक' में भी इस प्रकार का वर्णन मिलता है, कि पाप कर्म करने वाला नरक में दुःख भोगता है—"ते सब्बे मरणभयभीता एकप्पहारेनेव अवीचिम्हि पच्चमाना सत्ताविय अतिकरुणसरं मुंचिसु।" (वे सब मृत्यु के भय से एक साथ अवीचि में पकने वाले प्राणियों के समान अत्यन्त करुणाजनक स्वर में चिल्ला उठे।)

'सीलनिसंस-जातक' में शील सदाचरण करने वाले प्राणी की देवता सहायता करते हैं 'यह बात अत्यन्त सुन्दर रूप से इस गाथा में कही गई है—

"पस्स सद्धाय सीलस्स चागस्स च अयं फलं
नागो नावाय वण्णेन सद्धं वहनि उपासकं।"

अर्थात् "देखो श्रद्धा, शील और साम का फल है कि नाग नाव के रूप में उपासक को ढो रहा है।"

केवल उपासक अपने शील से ही नहीं, अपितु नाई को भी उस शील के द्वारा पार कराता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कर्मों का फल कभी उसी जन्म में और कभी जन्मान्तर में प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन व उद्धरणों द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध का कर्मवाद पर अटूट विश्वास था। चूंकि सभी कर्म एक ही जन्म में फलीभूत नहीं होते इस कारण जन्म-जन्मान्तरों की कल्पना बौद्ध धर्म में स्वीकार की गई है। इस कल्पना को यथार्थ बनाने के लिए बुद्ध ने अनेक जातक-कथाएँ कहीं, जो कि उस कल्पना को साकार रूप देती हैं। वस्तुतः कर्मवाद व पुनर्जन्मवाद का अटूट सम्बन्ध है। बौद्ध साहित्य में इन दोनों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न—जातक-कथाओं में कहानी-तत्वों की गवेषणा कीजिए। हिन्दी साहित्य की आधुनिक कहानियों के विकास में जातक-कथाओं का महत्व प्रतिपादित कीजिए ?

उत्तर—साहित्य की विविध विधाएँ—काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र आदि समय-समय पर विकसित होते रहे। इतना ही नहीं, इन विविध विधाओं का स्वरूप भी विकसित व परिवर्तित होता रहा। समय के अंतराल के कारण इनके रूपों में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। समय व परिस्थितियों के अनुरूप विधाओं की श्रेष्ठता के मानदण्ड भी बदलते रहे। उदाहरणार्थ यदि हम कहानी को लें, तो स्पष्टतः कहानी के विकास की कथा इसकी पुष्टि करती है।

कहानी-तत्व विभिन्न कालों में विभिन्न रहे हैं। उसी आधार पर कहानियों की आलोचनाएँ होती रही हैं। वस्तुतः अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति किसी भी साहित्यिक-विधा की प्रमुख आधारशिला है। इसके अतिरिक्त लक्ष्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। सृजन की दृष्टि से कहानी की प्रेरणा दो पक्षों में आती है—अनुभूति और लक्ष्य। इन दोनों से समन्वित कहानी के ये तत्व प्रधान रूप से स्वीकार्य हैं—

(१) कथावस्तु। (२) चरित्र-चित्रण। (३) कथोपकथन। (४) देशकाल और वातावरण। (५) शैली। (६) उद्देश्य।

विषय की दृष्टि से जातकों में संकीर्णता आ गई है। क्योंकि जातक में निहित कहानियाँ धर्म-प्रधान हैं। नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण को ही प्रधानता मिली है। कर्तव्य और अकर्तव्य की विवेचना तो है किन्तु व्यक्ति की प्रधानता नहीं

है। समाज को व्यक्ति से अलग रखकर चित्रण किया गया है। इसी कारण व्यक्ति के विभिन्न चरित्रों का उद्‌घाटन जातकों में नहीं है। व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक चित्रण जातकों में नहीं है। मानव, समाज से कट कर रह गया है जैसे वह उसका अंग न हो। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि जातककार बुद्ध की वृत्तियां स्वतंत्र नहीं थीं। वे केवल धर्म और नीति की प्रचारक वृत्तियाँ हैं। अतः चरित्रों को उभरने का अवसर ही जातक-कथाओं में नहीं है।

चूंकि धर्मगत व वर्गगत संकीर्णताओं में बंध जाने के कारण ये जातक कहानियां सम्पूर्ण मानवता के चित्र को प्रस्तुत नहीं कर सकी हैं। धर्म और नीति के प्रधान होते हुए जीवन की व्यापक-एकता का दिग्दर्शन सम्भव भी नहीं है। अतः विषय-वस्तु के समान जातकों का लक्ष्य भी अत्यन्त संकीर्ण हो गया है। समस्त कहानियां धर्म और नीति की धुरी पर ही घूमती हुई दिखाई देती हैं। कथोपकथन के दर्शन अवश्य अधिकता से होते हैं। जातक-कहानियों में केवल वर्तमान ही है, भूत काल की कहानियों को वर्तमान से जोड़ दिया गया है, धर्म की महत्ता को स्पष्ट करने के लिए।

जातक-कथाओं में अत्यन्त सरल शैली के दर्शन होते हैं। सरल भावों की सरल शैली में अभिव्यक्ति ही जातक कथाओं में है। जातकों में आज की तरह न भावनाओं का घटाटोप है और न ही बौद्धिक जटिलताएं। वह जीवन के खंड चित्रों को अत्यन्त सरल व सीधे रूप से प्रस्तुत करती है।

जातककार को धर्मगत संकीर्णता के कारण विषय चुनने में भी स्वतंत्रता नहीं है। वह वर्गमान्य नायक है। मानव ही नहीं, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि तक जातक-कथाओं के नायक रूप में है। जातक-कहानियां संघर्ष रहित और व्यक्ति-प्रधान हैं।

इन सब तत्वों के आधार पर जातक की कथाएँ भिन्न हैं। इन तत्वों का इनमें पूर्णरूप से समावेश है, यह भी नहीं कहा जा सकता और 'नहीं है' यह भी मान्य नहीं है। किन्तु कुछ तत्व की अधिकता, कुछ की न्यूनता होने के कारण जातक-कथाएँ इन तत्वों के आधार पर सफल नहीं मानी जा सकतीं।

इसके अतिरिक्त जातक कथाओं का एक और अवगुण है आदि और अन्त में चरमाभिव्यक्ति का अभाव। जातक-कथाओं में न कुतूहल है और न चरम सीमा। सभी जातक-कथाओं का प्रारम्भ पूर्ण रूप से समान ही है। उसके कुतूहल के लिए स्थान ही नहीं है। न भिन्नता है और न ही नवीनता का समावेश। धर्म और नीति के प्राचीन सिद्धांतों का, बौद्ध-दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही विभिन्न प्रकारों से किया गया है।

जातक-कथाओं में संघर्ष और घटनाओं के स्थान पर अति-मानवीय एवं अलौकिक घटनाओं का समावेश है। जिसके कारण ये कहानियाँ स्वाभाविकता से बहुत दूर हैं। ये केवल प्रतीकात्मक ही मानी जा सकती हैं। क्योंकि पशु-पक्षियों का नायकत्व इनको सामान्य कहानी नहीं रहने देता।

अतः हम देखते हैं कि जातक-कथाएँ वर्तमान कहानी से अत्यंत भिन्न हैं। यह भिन्नता देश काल के कारण है जो कि सहज और स्वाभाविक ही है। आज की कहानी का जो रूप हमें उपलब्ध होता है, वह अनेक युगों की उपलब्धि है। युग-युगांतरों से कहानी के क्षेत्र में परिवर्तन होते रहे और कहानी आज इस रूप में हमारे समक्ष आई है। इस विकास का क्रम देख चलें तो हमें आगे मुड़कर देखना आवश्यक हो जाता है, और दूर तक दिखाई देते हैं—ब्राह्मण-साहित्य, आरण्यक, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, आदि।

ब्राह्मण-साहित्य में कहानी के बीच तत्वों को भली-भांति खोजा जा सकता है। ब्राह्मणों में जो भी कहानियाँ हैं, वे अत्यंत भिन्न हैं। इनमें वस्तु-वर्णन ही प्रधान है। अनुष्ठानों का वर्णन तथा महत्व प्रतिपादन पात्रों द्वारा किया गया है। पात्र भी उच्चवर्ग के हैं। देव, गन्धर्व या राजा, ऋषि आदि। चूंकि पात्र ऐसे हैं अतएव कहानियाँ भी अलौकिक स्तर की हैं। जन-सामान्य के जीवन की न ये अभिव्यक्ति करती हैं और न उसकी चिंता। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण-कालीन कहानियाँ अलौकिक और विशिष्ट वर्ग की सामाजिक समस्याओं से अछूती कहानियाँ हैं।

आरण्यक व उपनिषदों में विषय का आंशिक परिवर्तन होता है। दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन और विवेचन ही इन कहानियों में प्रधान है। उपनिषदों

में इन तत्वों की व्याख्या गद्य में भी है और पद्य में भी। कहीं-कहीं मिश्रित भी है। उपनिषदीय कहानियों की भाषा सरल, भावाभिव्यक्ति सरल व सुगम तथा बोधगम्य है। ये ही वस्तुतः कहानी का अत्यंत अविकसित आदिम रूप हैं जो कि समय की सान पर चढ़कर तीक्ष्ण होता गया।

उपनिषदों में जितना भी आख्यान-साहित्य है उसके अनेक रूप प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं दृष्टांत रूप में वर्णन है। कहीं-कहीं तत्वों का चिंतन व उसकी अभिव्यक्ति है। कहीं केवल धार्मिक अनुष्ठानों को स्पष्ट करने वाली आख्यायिकाएँ हैं। कुछ संवाद शैली में भी प्राप्त होती हैं। यद्यपि ये अविकसित रूप में हैं, तथापि तत्कालीन वातावरण, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण इनमें भली-भाँति किया गया है।

इनमें रस की महत्ता नहीं है। कथावस्तु भी अनिश्चित और अस्थिर है। चरित्रों का उद्घाटन इनमें नहीं मिलता। इनकी एक विशेषता है तो, व्याख्यात्मकता। ब्राह्मण-कालीन कहानी की अतिशयोक्ति का अत्यल्प रूप इनमें उपलब्ध है।

इसके पश्चात् पुराणों में कहानी ने विकास के क्षेत्र में एक चरण आगे बढ़ाया है। ये आख्यान धार्मिक तो हैं ही मानसिक धरातल पर भी उतरे हैं। पुराणों में आख्यायिका का अंशतः विकसित रूप प्रत्यक्ष है। धर्म के साथ-साथ इतिहास और कल्पना का संयोग भी हो गया है। चरित्र-स्थापना भी मिलती है। उद्देश्य की निश्चितता आ गई है और प्रेम व श्रेय को भी स्थान मिला है। पुराण-कालीन कहानियों की विशेषताएँ हैं—संघर्ष, चरित्र की स्पष्टता और श्रेय की स्थापना।

पौराणिक कथाओं को रामायण और महाभारत द्वारा कल्पना का योग मिला और इससे काव्यात्मकता व रोचकता का समावेश हुआ। तत्कालीन समाज के स्पष्ट चित्र इनमें अंकित हैं। यद्यपि इनमें भी अलौकिक घटनाओं का वर्णन है किन्तु फिर भी ये कहानियाँ स्वाभाविकता की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाई हैं। यह इनकी एक प्रमुख विशेषता है। प्राचीन काल की भाँति धर्म प्रधानता भी है किन्तु उससे अन्य तत्व फीके नहीं हो गए हैं। धर्म, नीति,

अलौकिकता; इन सभी को मानवीय मनोवैज्ञानिक धरातल मिल जाने के कारण इनका महत्व बढ़ जाता है।

इसके उपरांत जातक-कथाएँ आती हैं। जातक-कथाओं में धर्म, नीति, अलौकिकता इन सबका समावेश तो है ही किन्तु मनोवैज्ञानिकता का अभाव और संकीर्णता, इसके कारण जातक-कथाएं स्वाभाविकता से परे हैं। इसमें धार्मिक वातावरण अत्यन्त सुन्दर रूप से मुखरित है। विपक्षियों के सिद्धान्तों का खंडन, हास-परिहास इनकी अपनी विशेषता है। चूंकि ये धर्म की संकीर्ण परिधियों में घिरीं थीं, अतएव इनका विषयगत आकार ही लघु नहीं है वरन् उद्देश्य की लघुता भी द्रष्टव्य है। धर्म प्रचार के लिए इन कथाओं की रचना हुई थी अतः इस कारण से साहित्यिक तत्वों की भी न्यूनता है।

आज की कहानी का जो रूप हमारे समक्ष है उसमें और प्राचीन कथा, कहानी में अत्यधिक अंतराल है। इसके अनेक कारण हैं—कलात्मकता का अभाव। धार्मिक प्रचार के लिए लिखी गई कहानियाँ अतएव स्वाभाविकता का अभाव। तत्कालीन सामयिक उद्देश्य को पूर्ण रूप से स्पष्ट करती हैं। कहानी-कला की उपेक्षा है रसात्मकता का बोध नहीं है, कुतूहल व जिज्ञासा के लिए कहीं स्थान ही नहीं है।

आधुनिक कहानी व जातक-कथाओं के अंतर को हम इस प्रकार देख सकते हैं—

(१) आधुनिक-कहानी कुतूहलपूर्ण और रसात्मक, प्राचीन जातक कहानी में कुतूहल का अभाव और रसात्मकता भी नहीं है।

(२) घटनाओं, व्यापार, संघर्ष की दृष्टि से।

(३) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से।

(४) भावुकता और बौद्धिकता की दृष्टि से।

(५) उद्देश्य की दृष्टि से।

(६) व्यापक परिवेश के आधार पर।

अथवा कहें कि जातक-कथाओं व आधुनिक कहानी में यही अंतर है जो कि एक सीमित व बंधन में बंधे और स्वतंत्र व असीमित में होता है। दोनों में पर्याप्त अंतर है। किन्तु आज की कहानी का जो रूप है वह जातक-कथाओं व प्राचीन कथा-कहानियों के ही विकास का परिणाम है, यह कदापि विस्मरणीय नहीं हैं।

प्रश्न—जातक-साहित्य का विविधमुखी महत्व प्रतिपादित कीजिए।

उत्तर—किसी भी काल का साहित्य, उस काल के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण होता है क्योंकि तत्कालीन-साहित्य परवर्ती समाज व साहित्य के लिए अमूल्य योगदान प्रदान करता है। वह तत्कालीन जन-जीवन का अनेक रूप से चित्रण तो करता ही है, साथ ही परवर्ती जीवन को भी प्रभावित करता है।

यद्यपि जातक-साहित्य विस्तार की दृष्टि से विशाल नहीं है किन्तु उसका योगदान अमूल्य है। उसकी लघुता में ही जीवन की गहराई है। न केवल भारत व भारतीय साहित्य में इसका स्थान विशेष है, अपितु विश्व में भी इसका गौरवशाली स्थान है।

जातक-साहित्य के महत्व को हम इस प्रकार देख सकते हैं—

(१) सम्पूर्ण विश्व के कथा-साहित्य में जातक-कथाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जातक-कथाएँ बुद्ध के उपदेशों व धार्मिक-नैतिक शिक्षाओं से परिपूर्ण हैं। बौद्ध दर्शन व धर्म इन कथाओं में समाहित हो गया है। उस काल में ये कथाएँ अत्यन्त लोकप्रिय रही होंगी। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है—भारत के बाहर भी इनका प्रसार व प्रचार। विदेशों में लंका, बर्मा, स्याम, जावा, सुमात्रा आदि स्थानों पर इसका अत्यन्त प्रचार व प्रसार हुआ। यूनान व अरब तक भी इनका प्रसार था। यूरोप के फ्रांस, स्पेन, इटली आदि देशों की कहानी विधा को भी जातक-साहित्य ने अत्यन्त प्रभावित किया था। बाइबिल भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं है। आज कहानी में विकसित रूप को देखते हुए चाहे जातक कथाओं के महत्व को न माना जाय, किन्तु जातक-साहित्य के तत्कालीन महत्व को भूला नहीं जा सकता।

(२) न केवल विदेशों में भारत में ही इसका विशेष महत्व रहा है। जातक-कथाओं द्वारा प्राचीन कहानी रूप को विकास और विस्तार मिला। वैदिक साहित्य में जो भी सामग्री प्राप्त है उसे कल्पना व कला के योग से प्रशंसनीय रूप प्रदान किया गया है। जातक-कथाओं की प्रेरणा से ही 'पंचतंत्र' जैसी कहानियाँ साहित्य को मिलीं। परवर्ती कहानी को विकास की अवस्थाएँ ही

नहीं, प्रेरणाएँ भी दीं। विंटरनिट्ज़ ने अपनी पुस्तक 'Indian literature' में कहा है कि—'Connecting link beetween the vedic story and the medieval poetry.' अर्थात् 'जातक-साहित्य वैदिक आख्यान और मध्ययुगीन काव्य को जोड़ने वाली कड़ी है।' इससे जातकों का अक्षुण्ण महत्व सिद्ध होता है।

(३) जातक-साहित्य साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, उपयोगिता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। जातक-कथाओं में बुद्ध के उपदेशों और शिक्षाओं का संकलन तो है ही, उसमें मनोरंजकता का समावेश भी हो गया है। हास्य, व्यंग, विनोद जातक-कथाओं का महत्वपूर्ण अंग है अतः इनमें रोचकता और ग्राह्यता आई है, जो कि जीवन के लिए नितांत आवश्यक थी। जीवन के विविध पक्ष इसमें चित्रित हैं। मानव को उपदेशों की ही नहीं, मनोरंजकता की भी आवश्यकता व इच्छा होती है, जिसे तत्कालीन साहित्य को पूरा करना होता है। जातक-साहित्य उपदेश परक होने के साथ-साथ, हास परिहास से युक्त होने के कारण मनोरंजन का साधन भी हैं।

(४) धार्मिक दृष्टि से ये विशेष रूप से मान्य हैं। क्योंकि बुद्ध के धार्मिक व दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन इसमें सरल व स्पष्ट शैली में किया गया है। बुद्ध के क्षणिकवाद, कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य आदि सिद्धांतों का सुन्दर रोचक ढंग से विवेचन किया गया है। बुद्ध ने अतिवादी दृष्टिकोणों की उपेक्षा करते हुए मध्यम मार्ग को स्वीकार किया था और दोनों अतियों के मध्य समत्व स्थापित किया था।

(५) जातक-साहित्य धर्म-विशेष को व्यक्त करता हुआ भी सामान्य जनता का साहित्य है। तत्कालीन समाज का भरा-पूरा यथार्थ चित्र जातकों में निहित है। तत्कालीन समाज के विभिन्न चित्र, रीत-रिवाज, व्यापार, उद्योग-धंधों, आदि का व्यापक रूप से चित्रण मिलता है। तत्कालीन समाज ही नहीं, राज-नीति, व आर्थिक अवस्था को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त करने वाले जातकों की संख्या पर्याप्त है। भौगोलिक स्थिति का भी यथार्थ चित्र इससे प्रकट होता है।

(६) तत्कालीन जातक-साहित्य ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वशाली है। तत्कालीन राजाओं की तिथियों को ही यह समक्ष सप्रमाण प्रस्तुत नहीं

करता अपितु उसके साथ जनता के इतिहास को जानने में भी पूर्ण सहयोग देता है। इतिहास के लिए यह प्रामाणिक सामग्री जुटाने वाला है। बौद्ध-धर्म से इतिहास को अमूल्य योगदान जातक-साहित्य से मिला है। बौद्ध-धर्म का पूर्ण परिचय जातक-साहित्य से प्राप्त होता है।

(७) जातक-साहित्य ने कहानियों के विकास में स्मरणीय योग दिया है। अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा कहानी का रूप जातकों में अधिकांशतः विकसित हो गया है। कथोपकथनों का समावेश इन जातकों की विशेषता है। नायक मानव ही नहीं पशु-पक्षी भी है। अलौकिकता का समावेश इन्हें साधारणतया स्वाभाविक नहीं रहने देता, किन्तु अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने में यह पूर्णरूप से सक्षम है। जातक कथाओं का लक्ष्य है बुद्ध की महिमा का गान और उसके माध्यम से बुद्ध की शिक्षाओं व उपदेशों का प्रतिपादन। इसके कारण अलौकिकता का आश्रय भी जातककार को लेना पड़ा है। कुछ भी हो कहानी के विकास में जातक-कथाओं का अविस्मरणीय योगदान है।

(८) जातकों में सैद्धांतिक पक्ष ही नहीं, व्यावहारिक पक्ष भी अत्यन्त सुन्दर व रोचक है। विभिन्न जातकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में व्यावहारिकता का भी बोलबाला था। व्यवहार कुशल मानव ही उन्नति व अर्थ लाभ करता था, अन्यथा वह नष्ट हो जाता था। तत्कालीन जन-जीवन में व्यावहारिकता का महत्त्व भी अत्यधिक था।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि "बुद्धकालीन राजाओं, राज्यों, प्रदेशों, जातियों, ग्रामों, नगरों आदि के साथ-साथ हमें जातकों से तत्कालीन शिक्षा विधान, उसके व्यावहारिक और सैद्धांतिक पक्ष, निवास, भोजन, संयम आदि के विषय की भी पूरी जानकारी प्राप्त होती है। तत्कालीन व्यापार-स्थिति, आवागमन के मार्ग, दास-प्रथा, सुरापान, अहिंसा, शिल्पकला आदि का प्रचुर ज्ञान प्राप्त होता है।"

इस विवेचन से स्पष्ट है कि जातक-साहित्य का महत्त्व अक्षुण्ण है। युग-युगों तक उसका प्रभाव परवर्ती साहित्य पर रहेगा और उसका महत्त्व भी उस सन्दर्भ में शाश्वत ही रहेगा।

द्वितीय खण्ड

पालि-व्याकरण

१. पालि का ध्वनि समूह
२. ध्वनि परिवर्तन
३. कारक तथा विभक्तियाँ
४. क्रिया-प्रकरण
५. संख्या वाचक शब्द
६. वाच्य-प्रकरण
७. अव्यय-प्रकरण
८. तद्धित-प्रत्यय
९. कृदन्त-प्रत्यय
१०. स्त्री-प्रत्यय
११. सन्धि-प्रकरण
१२. समास-प्रकरण

पालि का ध्वनि समूह

वैदिक ध्वनि समूह

वैदिक संस्कृत भाषा में ६४ अक्षर हैं और लौकिक संस्कृत में ५० किन्तु पालि में और भी कम।

वैदिक

स्वर : मूल—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ।

संयुक्त स्वर—ए, ऐ, ओ, औ

व्यंजन

स्पर्श व्यंजन (२७)

कण्ठ्य—क्, ख्, ग्, घ्, ङ्

तालव्य—च्, छ्, ज्, झ्, ञ्

मूर्द्धन्य—ट्, ठ, ड, ढ, ण, ळ, ळ्ह

दन्त्य—त्, थ्, द्, ध्, न्

ओष्ठ्य—प्, फ्, ब्, भ्, म्

अन्तस्थ—(४) य्, र्, ल्, व्

ऊष्म—श्, ष्, स्

अनुनासिक—(१) अनुस्वार

अघोष ऊष्म्—(३) विसर्ग या विसर्जनीय जिह्वामूलीय 'क' से पूर्व आने वाला विसर्ग।

उपध्मानीय 'प' से पूर्व आने वाला विसर्ग जैसे—'फु', 'पु', में विसर्ग की ध्वनि।

संस्कृत ध्वनिसमूह

वैदिक संस्कृत एवं संस्कृत के ध्वनि समूह में पर्याप्त साम्य है। अन्तर के तत्व निम्न हैं—

(१) 'ल' 'ह्ल', जिह्वामूलीय, उपध्मानीय ध्वनियों का प्रयोग नहीं मिलता है।

(२) कुछ स्वरों के उच्चारण में भी अन्तर है।

पालिध्वानि समूह

स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ह्रस्व ए, ऐ, ओ, औ,

व्यंजन

कण्ठ्य क, ख, ग, घ, ङ

तालव्य च, छ, ज, झ, ञ

मूर्द्धन्य ट, ठ, ड, ढ, ण, ल, ह्ल

दन्त्य त, थ, द, ध, न

ओष्ठ्य प, फ, ब, भ, म

अन्तस्थ य, र, ल, व

ऊष्म—स,

निग्गहीत—अं (अनुस्वार)

प्राणध्वनि है

इस प्रकार पालिभाषा में अं आ दयोतितालीस वर्णों ४३ वर्ण हैं। कच्चायन पालि भाषा में केवल ४१ वर्ण मानते हैं। उनके मतानुसार 'ऍ' और 'ऑ' वर्ण नहीं है। परन्तु परवर्त्ती पालि व्याकरणाचार्य इन्हें भी वर्ण मानते हैं। इसका कारण यह है कि संयुक्ताक्षर से पूर्व आने वाले 'ए' और 'ओ' ह्रस्व होते हैं। प्रारम्भिक अ, आ आदि स्वर हैं—'दसादोसर' तथा परवर्ती 'कादयो व्यंजना' व्यंजना है।

वैशिष्ट्य :

(१) पालिभाषा में ऋ, ॠ, लृ, ऐ स्वरों का प्रयोग नहीं मिलता है।

(२) पालि में से नये स्वर ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' मिलते हैं।

(३) विसर्ग का पालि में अभाव है।

(४) पालि में केवल एक 'स' मिलता है श, ष, का अभाव है। इन दोनों का कार्य दन्त्य 'स' से ले लिया जाता है। 'श' के स्थान पर कभी-कभी 'छ' मिलता है जैसे—शव = छव।

(५) पालि में दो नये व्यंजन ळ, ळह, हैं संस्कृत में ये नहीं मिलते हैं।

(६) स्वतन्त्र रूप में 'ह' प्राणध्वनि है किन्तु य, र, ल, व, अथवा अनुनासिक के साथ संयुक्त होने पर इसका विशिष्ट उच्चारण होता है, जिसे पालि में 'ओरस' (हृदय से उत्पन्न) कहा गया है।

ध्वनि परिवर्तन

(१) पालि में 'ऋ' नहीं मिलता है, उसके स्थान पर कहीं-कहीं अ, इ, उ, या ए, तथा 'ऐ' हो जाते हैं। जैसे—

गृहं = गहं तथा कभी-कभी—गेह।
नृत्यं = नच्चं
कृषि = कसि
} अ

ऋणम् = इणं
ऋषि = इषि
तृण = तिण
} इ

ऋतु = उतु
मृदु = मुदु
ऋषभ = उसभ
} उ

वृक्ष = रुक्ख
वृहत = बरहा
} र

(२) 'ऐ' के स्थान पर 'ए' हो जाता है। जैसे—

ऐरावण = एरावण
वैमानिक = वेमानिक
वैयाकरण = वेयाकरण

(२) कभी-कभी ऐ का 'इ' तथा 'ई' भी मिलता हो जैसे—

ग्रैवेय = गीवेय्यं
सैन्धवं = सिन्धवं

ऐश्वर्यम् = इस्सरियं

(४) 'औ' के स्थान पर 'ओ' हो जाता है। जैसे—

औदरिक = ओदरिक

दौवारिक = दोवारिक

औषधम् = ओषधम्

(५) 'औ' कहीं-कहीं 'उ' भी होता है। जैसे—

मौक्तिकं = मुत्तिकं

औद्धत्यं = उद्धत्व

औत्सुक्यम् = उत्सुक्कं

(६) पालि में व्यंजन हलन्त नहीं होते हैं और है न ही पद के अन्त में निग्गहीत 'म्' ही होता है।

(७) पालि में विसर्ग तथा 'रेफ' का भी या तो अभाव है। अथवा वह पूर्ण 'र' हो जाता है। जैसे—

कर्म = कम्म

सर्व = सब्ब

तर्हि = तरहि

महार्ह = महारहो

आर्य = अरिय

क्रीत = कीत

भार्या = भरिया

प्रेत = पेत

समग्र = समग्ग

इन्द्र = इन्दो

ध्वनि परिवर्तन

सावर्ण्य नियम

जब दो भिन्न ध्वनियाँ एक साथ आने पर वक्ता को उच्चारण करने में

असुविधा देती हैं तब वक्ता अपनी सरलता के लिए एक में परिवर्तन कर देता है। इस परिवर्तन से उच्चारण में सरलता आ जाती है; इसी का नाम 'सावर्ण्य का नियम' है।

जैसे—संस्कृत का 'तस्य' पालि में 'तस्स'
संस्कृत का कर्म पालि में कम्म

हो जाता है।

कभी-कभी यह नियम अपूर्ण हो रहता है जैसे संस्कृत का 'त्याग' शब्द पालि में 'चागो' है। यही नहीं, अनेक संयुक्त वर्णों में से दूसरे को द्वित्व हो जाता है तथा अनेक स्थानों पर द्वित्व नहीं होता।

जैसे—संस्कृत	पालि
मुक्त	मुत्त
रक्त	रत्त
दुग्ध	दुद्ध

तथा निम्न स्थलों पर प्रथम वर्ण का द्वित्व हुआ है—

प्राप्नोति	पाप्पोति

इस प्रकार यह सावर्ण्य का नियम—'पूर्ववर्ण सावर्ण्य तथा परवर्ण सावर्ण्य दो प्रकार का होता है।

असावर्ण्य का नियम

इस नियम के अनुसार समान एक या अनेक ध्वनियों की पुनरावृत्ति होने पर एक असमान ध्वनि में बदल जाती है। जैसे—लाङ्गलः से नंगल
दिपोलिका से किपीलिका
ललाट से नलाट

अन्ध सादृश्य का नियम

शब्दों के सादृश्य पर अनेक शब्दों का निर्माण होता है। इसी को 'अन्ध-सादृश्य' का नियम कहते हैं। जैसे—दुब्बुद्धि के सादृश्य पर 'सुब्बुद्धि'
दुब्बचो के सादृश्य पर सुब्बचो
वचसा के सादृश्य पर कायसा
मनसा के सादृश्य पर मुखसा।
आदि

अनुपूर्ति का नियम

जब किसी शब्द के किसी व्यंजन का लोप हो जाता है, वहाँ या तो कोई स्वर दीर्घ कर दिया जाता है या उसके अभाव की पूर्ति के लिए अन्य व्यंजन ले लिया जाता है इसी नियम का नाम 'अनुपूर्ति का नियम' है। उदाहरण के लिए—अर्हत—अरहा

प्रतिकूल—पटिकूल

परिषत्—परिसा आदि

वर्ण विपर्यय का नियम

जब किसी शब्द का वर्ण क्रम बदल जाता है, वहाँ वर्ण-विपर्यय का नियम होता है। जैसे—संस्कृत पालि

दशक	से	दसक
रश्मि	से	रम्सि
ह्रद	से	रहद आदि

स्वरभक्ति का नियम

जब संयुक्त व्यंजनों को अलग करने के लिए किसी स्वर का शब्द के मध्य आगम होता है, वह स्वर-भक्ति का नियम कहलाता है :—

जैसे—अर्हत से अरहा

महार्ह से महारह

भार्या से भरिया

आर्य से अरिय आदि

स्वरपरिवर्तन

(अ) संयुक्त व्यंजनों और निग्गहीत से पूर्ववर्ती दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है—

कार्य = कज्ज

लतां = लतं

(i) 'अ' कभी-कभी 'ए' हो जाता है—

अत्र = एत्थ

फल्गु = फेग्गु

(ii) 'अ' के स्थान पर कहीं-कहीं 'इ' मिलती है—

तमिस्रा = तिमिस्सा

कस्य = किस्स

(iii) 'अ' के स्थान पर कभी-कभी 'उ' हो जाता है—

सद्यः = सज्जु

(iv) 'अ' के स्थान पर 'ओ' भी हो जाता है—

सम्मर्सं = सम्मोस

(आ) इकारान्त और उकारान्त पालि शब्दों के 'इकार' उकार का दीर्घ होकर क्रमशः 'ईकार' और 'ऊकार' हो जाता है। जैसी—

ईहि, ऊहि, ईसु, ऊसु,

अग्गि का अग्गीहि

भिक्खु का भिक्खुहि।

(इ) यदि 'इ' और 'उ' संयुक्त व्यंजन से पूर्व होते हैं तो पालि में वे क्रमश 'ए' और 'ओ' हो जाते हैं। जैसे—विष्णु = वेण्हु

पुस्कर = पोक्खर,

दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ

(१) पदान्त में संयुक्त व्यंजन से पूर्व को छोड़कर दीर्घ स्वर प्रायः यथास्थिति में मिलते हैं।

जैसे—प्रहीण = पहीण

मूल = मूळ

(२) पदान्त में दीर्घ स्वर यदि हो तो पालि में वह ह्रस्व हो जाता है—

देवानां = देवान

नदी = नदि

(३) संयुक्त व्यंजन से पूर्व दीर्घ स्वर होने पर पालि में उसका प्रतिरूप दीर्घ बना रहता है और इस दशा में संयुक्त व्यंजन असंयुक्त हो जाता है।

जैसे—दीर्घ = दीघ

लाक्षा = लाखा

(४) 'ए' और 'ओ' होने पर व्यंजन विकल्प से असंयुक्त रहता है, कभी रहता है और कभी नहीं भी।

जैसे—अपेक्षा = अपेखा, अपेक्खा

उपेक्षा = उपेखा, अपेक्खा

उपर्युक्त ध्वनि परिवर्तन का नियम 'ह्रस्वमात्रा काल का नियम' है। इसकी प्रतिष्ठा डा० गायगर ने की थी।

(१) जब संयुक्त व्यंजन से पूर्व स्वर होता है, उसके स्थान पर पालि में साधारण व्यंजन से पूर्व दीर्घ स्वर हो जाता है। जैसे—

सर्षप = 'सस्सप' न होकर 'सासप'

निर्याति = 'निय्याति' न होकर 'नीयाति'

(२) जब साधारण व्यंजन से पूर्व संस्कृत में दीर्घ स्वर होता है पालि में उसके स्थान पर लघु स्वर हो जाता है। जैसे—

उदूखल = उदुक्खल

कूबर = कुब्बर

(३) उपर्युक्त नियम का विपर्यय भी पालि में मिलता है। संस्कृत अनुनासिक ह्रस्व स्वर पालि में दीर्घ स्वर में परिवर्तित हो जाता है। जैसे—

सिंह = सीह

विंशति = वीसति, वीहं

विसर्ग

पालि भाषा में विसर्ग का अस्तित्व ही नहीं है। विसर्ग के स्थान पर निम्न परिवर्तन हुए हैं।

(१) शब्द के मध्य स्थित विसर्ग आगे आने वाले व्यंजन से संयुक्त हो जाता है। जैसे—

दुःसह = दुस्सहो

दुःखं = दुक्खं

(२) अकारान्त शब्दों से परे विसर्ग ओ में परिवर्तित हो जाता है। जैसे—

देवः = देवो

कः = को

(३) इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे विसर्ग का लोप हो जाता है। जैसे—

अग्निः = अग्गि

धेनुः = धेनु

स्वर-अनुरूपता

पालि भाषा में स्वर अनुरूपता की प्रवृत्ति भी पर्याप्त परिलक्षित होती है। एक ही स्वर परवर्त्ती दूसरे स्वर के अनुरूप तथा परवर्त्ती का पूर्ववर्ती के अनुरूप हो जाता है। जैसे—

(१) 'इ' का 'उ'

इषु = उसु
शिशु = सुसु

(२) 'अ' का 'उ' तथा 'इ'

असूया = उसुया
तमिस्रा = तिमिस्सा

(३) 'उ' के अनन्तर संस्कृत में जब 'अ' होता है, वहाँ पालि में 'अ' की जगह 'उ' मिलता है—

कुरङ्ग = कुरुंग

(४) 'अ' के बाद संस्कृत में जब 'इ' होता है, तब पालि में वहाँ 'इ' की जगह 'अ' मिलता है। जैसे—

अलिजंर = अरंजर

पुष्करिणी = पोक्खरणी

(५) 'अ' के बाद जहाँ संस्कृत में 'उ' होता है, वहाँ पालि में भी 'उ' की जगह 'अ' हो जाता है। जैसे—

आयुष्मन् = आयस्मन्त

(i) 'इ' के बाद जहाँ 'संस्कृत' में 'अ' होता है, वहाँ पालि में 'अ' की जगह 'इ' हो जाता है, जैसे निषण्ण—निसिन्न

स्वराघात

पालि भाषा में संस्कृत के समान ही स्वराघात का नियम है :—

(१) स्वराघात वाले अक्षर के बाद अ, का 'इ' होना पालि में मिलता है। जैसे :—

चन्द्रमा = चन्दिमा

परम = परिम

अहंकार = अहिकार

'अ' का 'उ' भी होता है। जैसे—

नवति = नवुति

सम्मति = सम्मुति

'इ' का 'उ' तथा 'उ' का 'इ' भी होता है। जैसे :—

राजिल = राजुल

मृदुता = मुदिता

(२) स्वराघात के अक्षर के बाद में आने पर भी अनुदात्त लघु स्वर का कभी-कभी लोप हो जाता है। जैसे :—

उदक = ओक

(३) अनुदात्त अन्त्य अक्षर का ह्रस्व हो जाता है।

जैसे—ओ का 'उ' होना—

असौ—असु

उताहो—उताहु

(४) कभी-कभी शब्द का द्वितीय दीर्घ वर्ण ह्रस्व हो जाता है जैसे—

गृहीत—गहित

(५) प्रथम वर्ण के स्वर को दीर्घ भी होता है। जैसे—

अजिर = आजिर

सम्प्रसार और अक्षर संकोच

सम्प्रसार 'य' का 'ई' होना—

त्र्यह = तीह

कहीं—कहीं य शेष है—व्यसन = व्यसन

अक्षर संकोच 'अ य' 'और 'अ व' क्रमशः 'ए,' और 'ओ' हो जाते हैं। जैसे—

जयति = जेति

प्रवण = पोण

'अय' और 'आय' का आ हो जाता है—

कात्यायन = कच्चान

'आव' का ओ'— अतिधावन = अतिधोन

'अवा' का 'आ'— यवागू = यागु

भी हो जाता है।

पालि में अनियमित अक्षर संकोच भी मिलता है। जैसे—

मयूर—मोर।

स्वरागम 'र्य' के स्थान पर 'रिय' होता है। जैसे—

आर्य—अरिय

मर्यादा—मरियादा

'इ' का आगमन :—

ज्या = जिया

वज्र = वजिर

स्नेह = सिनेह

'अ' का स्वरागम—गर्हा = गरहा

'उ' का स्वरागम—ऊष्मन = उसुमा
द्वे—दुवे आदि।

व्यंजन परिवर्तन

व्यंजनों का परिवर्तन शब्दों की स्थिति के अनुसार होता है। प्रायः आदि व्यंजन पालि में सुरक्षित रहते हैं। परिवर्तन मध्य व्यंजन का ही अधिक होता है। मध्य व्यंजनों के विकास की तीन अवस्थाएँ इस प्रकार हैं—

प्रथम अवस्था में अघोष घोष स्पर्श हो जाते हैं।

द्वितीय अवस्था में घोष स्पर्श 'य' ध्वनि में बदल जाते हैं।

तृतीय अवस्था में 'य' ध्वनि का लोप हो जाता है।

आदिव्यंजन (१) संस्कृत के ऊष्म वर्णों में 'ष' 'श' 'स' में से पालि में केवल 'स' शेष है।

(२) कण्ठ्य स्पर्शों के स्थान पर तालव्य स्पर्श मिलते हैं। जैसे—

कुन्द = चुन्द

(३) दन्त्य स्पर्शों की जगह कभी-कभी मूर्धन्य स्पर्श हो जाते हैं—

दहति = डहति

मध्य-व्यंजन (१) शब्द के मध्य में विद्यमान घोष महाप्राण (घ, घ, भ) 'ह' में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे—

रुधिर = रुहिर

(२) कभी-कभी (ऋ के स्थान पर) पालि में घोष महाप्राण व्यंजन सुरक्षित है। जैसे—

दूह = दूध

(३) 'र' के स्थान पर 'ल' हो जाता है।

परिघ = पलिघ

एरंड = एलंद

वर्ण-विपर्यय

शब्द के मध्य स्थित वर्ण परस्पर स्थान परिवर्तन कर लेते हैं। यह वर्ण परिवर्तन प्रायः 'र' के साथ होता है। जैसे—

अरालिक = आलरिक

संयुक्त अक्षर

(१) किसी अन्य व्यंजन वर्ण के साथ 'य' तद्रूप हो जाता है।

जैसे—तस्य = तस्स,

दिव्य = दिब्ब,

लेकिन 'क,' 'ग' और 'व' से संयुक्त होने पर परिवर्तन नहीं होता है।

जैसे—वाक्य, भाग्य,

(२) 'त' से संयुक्त 'य' शब्द के मध्य में होने पर 'च्च' में बदल जाता है।

जैसे—सत्यं = सच्चं

कृत्यं = किच्चं।

लेकिन शब्द के आदि में होने पर त्य' का 'च' होता है।

जैसे—त्याग = चाग,

(३) 'थ' से संयुक्त होने पर 'य' 'च्छ' में बदलता है।

जैसे—मिथ्या = मिच्छा,

(४) 'द' से संयुक्त 'य' 'ज' में परिवर्तित होता है।

जैसे—खाद्यं = खज्जं,

विद्या = विज्जा,

किन्तु शब्द के आदि में आने पर 'द्य' 'ज' में बदलता है।

जैसे—द्युति = जुति।

(५) 'ध' से युक्त 'य' शब्द के मध्य स्थित होने पर ज्झ अथवा 'झ' में बदलता है।

जैसे—मध्य = मज्झ, संध्या = संझा।

(६) शब्द के आदि में आया हुआ 'ध्य' झ में परिवर्तित हो जाता है।

जैसे—ध्यानं = झानं।

(७) 'न' या 'ण' से युक्त 'य' 'ञ्ञ' में परिवर्तित होता है।

जैसे—शून्य = सुञ्ञ, अरण्य = अरञ्ञ।

(८) 'र' वर्ण जब संयुक्त व्यंजन के द्वितीय स्थान पर होता है तब वह तद्रूप हो जाता है।

जैसे—

पत्र = पत्त,

'र' जब 'ह' से युक्त होता है, तब स्वरभक्ति हो जाती है।

जैसे 'ह्र' = हिरी

कभी-कभी 'ह' का लोप भी हो जाता है।

जैसे—ह्रस्व = रस्सो

(९) 'र' जब किसी संयुक्त व्यंजन का प्रथमाक्षर होता है तब वह तदनुरूप हो जाता है।

जैसे कर्म = कम्म, धर्म = धम्म।

(१०) जब, 'ल' किसी अन्य व्यंजन से संयुक्त होता है। ऐसी स्थिति में पालि में उन दोनों वर्णों के मध्य कोई स्वर आ जाता है।

जैसे—क्लेसः किलेस

ग्लान = गिलान,

म्लान = मिलान,

कभी वह उसी वर्ण के अनुरूप हो जाता है। जैसे—शिल्प = शिप्प, अल्प = अप्प।

(११) 'व' अन्य अक्षर से जब संयुक्त होता है तो वह तद्रूप हो जाता है।

जैसे पक्व = पक्क

चत्वार = चत्तार

कभी 'व' अपरिवर्तित रहता है।

जैसे– द्वार, विद्वान, त्वान आदि।

कभी-कभी बीच में अन्य स्वर आ जाता है।

जैसे—द्वे = दुवे, द्वार = दुवार।

(१२) 'च' से युक्त होने पर 'श' 'च्छ' में बदल जाता है।

जैसे—आश्चर्य = अच्छारिय

पश्चिम=पच्छिम,

(१३) 'क्ष' के स्थान पर पालि में 'क्ख' वर्ण हो जाता है।

जैसे—चक्षु = चक्खु,

कभी-कभी 'क्ष' के स्थान पर 'छ' या च्छ होता है।

जैसे—क्षमा = छमा,

ऋक्ष = अच्छ,

(१४) यदि 'ष' वर्ण ट, ठ से संयुक्त होता है तो उसके स्थान पर 'ट्ठ हो जाता है।

जैसे अष्ट = अट्ठ।

पृष्ठ = पिट्ठ

(१५) यदि 'ष' 'प', या 'क', से संयुक्त होता है तो उसके स्थान पर प्फ होता जाता है।

जैसे—पुष्प = पुप्फ

निष्कल = निप्फल,

(१६) 'स,' 'क,' या 'ख' से युक्त होने पर दोनों ही संयुक्त वर्ण 'क्क' या 'क्ख' में बदल जाते हैं।

जैसे—

नमस्कार = नमक्कार

पुरस्कार = पुरक्खार

(१७) 'स,' 'त', या 'थ' से संयुक्त होने पर दोनों 'त्थ' में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे—पुस्तक = पोत्थक, यदि शब्द के आदि में 'स्थ' आता है, वह 'ठ' में परिवर्तित होता है। जैसे स्थानं = ठानं।

किन्तु कभी-कभी वह 'ख' में परिवर्तित हो जाता है।

जैसे—स्थाणु = खाणु

किन्तु 'स्त' कभी-कभी अपरिवर्तित रहता है।

जैसे—मस्त।

'स्थ' के स्थान पर 'ट्ठ' भी मिलता है।

जैसे अस्थि = अट्ठि।

(१८) किसी शब्द के मध्य में स्थित 'प्स' 'च्छ' में बदल जाता है।

जैसे अप्सरा = अच्छरा

जुगुप्सा = जिगच्छा

किन्तु शब्द के आदि होने पर 'स्प, के स्थान पर 'फ' हो जाता है।

जैसे स्पर्श—फस्सो

स्पन्दनं = फन्दनं,

(१९) स्, फ से संयुक्त होने पर 'प्फ' में बदल जाता है।

जैसे—विस्फार = विप्फार

(२०) 'श' 'न' यदि संयुक्त होते हैं तो वे पालि में 'ण्ह' में बदल जाते हैं।

जैसे कृष्ण = कण्ह

तृष्णा = तण्हां,

(२१) 'स्म' पालि में 'म्ह' हो जाता है।

अस्मान = अम्ह

किन्तु 'श्म' यदि शब्द के आदि में होता है तो वह 'म' हो जाता है।

जैसे श्मश्रु = मस्सु,

(२) 'स्म' और 'ष्म' के स्थान पर म्ह हो जाता है।

जैसे ग्रीष्म = गिम्ह।

(२२) स्मृ' धातु का पालि में 'सर होता है।

सरति सुमरति आदि

(२३) 'व' से संयुक्त 'ह' पालि में 'व्ह' हो जाता है।

जैसे जिह्वा = जिव्हा, आह्वाव = आव्हान।

कारक तथा विभक्तियाँ

पालि भाषा में कारक सात होते हैं। कारकों को ही विभत्ति (विभक्ति) कहते हैं। पालि में सम्बोधन कारक को कारक न कहकर 'आलपन' कहते हैं। कारकों को विभक्ति क्रम से इस प्रकार समझा जा सकता है—

कारक	विभत्ति
(१) कर्त्ता	पठमा
(२) कर्म	दुतिया
(३) करण	ततिया

कारक	विभक्ति
(४) सम्प्रदान	चतुत्थी
(५) अपादान	पञ्चमी
(६) सम्बन्ध	छट्ठी
(७) अधिकरण	सत्तमी
(८) सम्बोधन	आलपन

पालि भाषा में विभक्तियों के चिह्न हिन्दी कारकों के समान ही होते हैं जो कि सदा शब्दों से सम्बद्ध रहते हैं।

कर्त्ता कारक—पालि में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग कर्त्ताकारक में होता है क्योंकि कार्य करने वाला ही कर्त्ता होता है "यो करोति सो कत्ता" उदाहरण के लिए—मनुष्य आता है, यहाँ मनुस्सो प्रथमा विभक्ति का रूप है।

कर्मकारक—कर्त्ता के द्वारा जो कुछ किया जाता है, वह कर्म कहलाता है। 'यं करोति तं कम्मं'। जैसे—रथं करोति। कर्म कारक में सामान्यतया द्वितीया विभक्ति होती है (कम्मनि दुतिया), जैसे—'घटं करोति'। इस कारक का प्रयोग समय और स्थान की सूचना के लिए भी होता है। कर्म कारक का किसी उपसर्ग या क्रिया विशेषण के सम्बन्ध से भी प्रयोग होता है। गति, जानना, खाना, पढ़ना, चुराना, करना, सोना आदि के अर्थ में आने वाली धातुओं के साथ विकल्प से द्वितीया-विभक्ति प्रयुक्त होती है।

करण कारक—में तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है, जैसे शरीर से कार्य करता है—'कायेन कम्मं करोति' सह आदि शब्दों के साथ भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है "सहादि योगे" कर्मवाच्य में कर्त्ता को व्यक्त करने के लिए भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है—"कत्तरि च" कारण को सूचित करने के लिए भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है—"हेत्वत्थे च" सप्तमी के अर्थ में भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग मिलता है—"सप्तमी अत्थे च" —जैसे-तेन कालेन। शरीर के अङ्ग विकार को प्रगट करने के लिए भी तृतीया का प्रयोग होता है, जैसे आक्खिणाकाणो। इसके लिए सूत्र है—"येनाङ्ग-विकारो।" किसी विशेषता की अभिव्यक्ति के लिए भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

सम्प्रदान कारक

जिसको कुछ देने की अभिलाषा की जाय, या जो किसी वस्तु की इच्छा करे या जिसको कोई वस्तु चाहिए, वह सम्प्रदान कारक के अन्तर्गत आता है—यस्स दातुकामो रोचते वा धारयते वा तं सम्पदानं। ऐसे स्थलों पर चतुर्थी विभक्ति होती है—उदाहरण के लिए—बुद्ध को भात देता है—"बुद्धस्स भत्तं ददाति।" देवदत्त को लड्डू अच्छे लगते हैं—"देवदत्तस्स मोदकं रोचते।" देवदत्त साहूकार से सौ रुपये चाहता है—सेठिनो सुवण्ण सतं धारयते देवदत्तो ऐसे समस्त स्थलों पर चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग सम्प्रदान कारक में होता है "सम्पदाने चतुत्थी।"

सिलाघ-हनु-ठा-सप-धार-पिह-कुध-दुह-दुस्स उसुय्य धातूनं प्रयोगे—अर्थात् इन धातुओं में भी चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

आरोचन के अर्थ में प्रयुक्त शब्दों के साथ भी इसी विभक्ति का प्रयोग होता है—"आरोचनत्थे।" किसी विशेष वस्तु का निमित्त सूचित करने के लिए भी इसी विभक्ति का प्रयोग होता है—"तदत्थे।" 'तु' प्रत्यय के अर्थ को सूचित करने के लिए—'तुमत्थे', 'अलं' के भाव के सूचनार्थ—"अलं योगे" तथा अना, दर सूचित करने के लिए चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। गतिसूचक तथा नमो आदि के योग में भी चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

अपादान कारक

जहाँ से कोई अलग हो, जिससे कोई भय हो, जिससे कुछ ग्रहण किया जाये वहाँ भी अपादान कारक होता है—"यस्मादपेति भयं आदन्ते वा तद् अपादानं"। पराजय, प्रादुर्भाव, रक्षण सूचक क्रियाओं के साथ पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। इष्ट वस्तु के लिए, गोपन, सामीप्य, स्थान, समय, हेतु (हेतु अत्थे) आदि अर्थों में अपादान कारक तथा पंचमी विभक्ति होती है—

सम्बन्ध कारक

इस कारक का प्रयोग वहाँ होता है, जहाँ स्वामी के साथ अधिकार की भावना हो—"यस्स वा परिग्गहो तं सामो" तथा "सामिस्मिं छट्ठी"। निर्धारण के अर्थ में भी षष्ठी विभक्ति होती है—"निद्धारणे च"। अनादर

या घृणा के अर्थ में, भी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है—"अनादरे च" । करण के अर्थ में, द्वितीया और पंचमी के अर्थ में भी कभी-कभी इस विभक्ति का प्रयोग होता है ।

अधिकरण कारक

आधार को अधिकरण या अवकाश कहते हैं—'यो आधारो तं ओकासं' । अधिकरण के अर्थ में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है—'ओकासे सत्तमी' । काल और भाव के अर्थ में भी सप्तमी विभक्ति होती है । कभी-कभी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग कर्म और करण कारक के अर्थ मे भी प्रयोग होता है । जैसे—

'कुंजरो दन्तेसु हञ्ञते' ।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि पालि भाषा का कारक प्रकरण संस्कृत के कारक प्रकरण से प्रभावित है ।

पालि भाषा के कारक प्रकरण की अन्य सामान्य विशेषताएँ सूत्र रूप में इस प्रकार हैं—

(१) पालि भाषा में द्विवचन नहीं होता है । एक से अधिक को बहुवचन या अनेक वचन कहते हैं ।

(२) पालि में सात विभक्तियाँ और सम्बोधन कारक प्रायः संस्कृत के समान ही है किन्तु चतुर्थी और षष्ठी के रूपों में कोई अन्तर नहीं है । अन्य विभक्तियों के रूपों में भी साम्य मिलता है । पालि के नपुंसकलिंग में प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के बहुवचन के रूपों में साम्य है । तृतीया और पंचमी के बहुवचन रूप समान हैं ।

(३) स्वरान्त पुलिंग संज्ञाओं के रूप कुछ विभक्तियों में समान हैं । उदाहरणार्थ—बुद्धा, बुद्धस्मा, बुद्धे, बुद्धस्मिं ।

(४) स्त्रीलिंग की संज्ञाओं के तृतीया से सप्तमी तक के एक वचन के रूपों में साम्य है ।

(५) पालि में दो प्रकार के शब्द मिलते हैं एक स्वरान्त शब्दों से निर्मित और दूसरे वे जिनके अन्त में संस्कृत में व्यंजन होते हैं ।

पालि भाषा की विभक्तियों के प्रत्यय निम्न हैं—

विभक्ति	एक वचन	बहु वचन
पठमा	सि	यो
दुतिया	अं	यो
ततिया	ना	हि, भि
चतुत्थी	स	नं
पञ्चमी	स्मा,	हि
छट्ठी	स	नं
सत्तमी	स्मि	नं, यो
आलपन	सि (ग)	यो

विशेष—विशिष्ट शब्दों में इन प्रत्ययों के अतिरिक्त प्रत्यय भी प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए—

(१) तृतीया और पंचमी के वहुवचन 'हि' के स्थान पर विकल्प से 'भि' मिलता है। पंचमी के एकवचन 'स्मा' के स्थान पर 'म्हा' और सप्तमी एक वचन 'स्मि' के स्थान में 'म्हि' मिलता है।

(२) पालि में स्वरान्त पद ही है, व्यंजनान्त पदों का अभाव होने के कारण अजन्त और हलन्त का भेद भी नहीं है। संस्कृत के व्यंजनान्त पद पालि में स्वरान्त हो गये हैं, किन्तु उनके रूपों में अनेकरूपता है।

स्वरान्त एवं व्यंजनान्त शब्द :

(१) पालि में अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द के बाद 'सि' प्रत्यय का 'ओ' हो जाता है किन्तु अकारान्त नपुंसकलिङ्ग में 'सि' निग्गहीत होता है अतः वह अन्य रूपों में विलीन रहता है।

(२) पालि में अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द के बाद 'यो' विगलित हो जाता है, अतः 'अ' के स्थान पर 'आ' प्रत्यय से युक्त रूप बनता है, जैसे 'बुद्धा'।

(३) पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग आधार शब्दों का अन्त्य स्वर 'यो' से पूर्व विकल्प से दीर्घ हो जाता है। अनेक वचन से 'यो' लुप्त हो जाता है। नपुंसक-

लिङ्ग के आधार शब्दों के बाद 'यो' प्रत्यय को 'नि' आदेश हो जाता है तथा अन्त्य स्वर दीर्घ हो जाता है। जैसे फल+यो=फलानि।

(४) अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द के पूर्व द्वितीया के अनेक वचन का 'यो' 'ए' में परिवर्तित हो जाता है।

(५) अकारान्त नाम से परे 'ना' विभक्ति का 'एन' आदेश हो जाता है।

(६) अकारान्त शब्दों में 'हि' के स्थान पर 'एहि' हो जाता है।

(७) 'सु' तथा 'हि' विभक्तियों के आने पर नाम के अन्त्य 'अ' का 'ए' हो जाता है।

(८) नाम से परे 'स्मा', 'हि' तथा 'स्मि' विभक्तियों का विकल्प से क्रमशः 'म्हा' 'भि' तथा 'म्हि' आदेश हो जाता है।

(९) अकारान्त शब्दों से परे 'स' विभक्ति का विकल्प से 'आय' आदेश हो जाता है। नाम से परे सामान्यतया 'स' के आने पर बीच में द्वितीय 'स' का आगम हो जाता है।

(१०) 'सु', 'नं' तथा 'हि' विभक्तियों के आने पर, नाम के अन्त्य स्वर का कहीं-कहीं दीर्घ हो जाता है; जैसे—मुनीसु, मुनीनं, मुनीहि।

(११) अकारान्त शब्दों से परे 'स्मा' तथा 'स्मि' विभक्तियों का विकल्प से क्रमशः 'टा' (=आ) तथा टे (=ए) आदेश हो जाता है। किन्तु इकारान्त और उकारान्त पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग के शब्दों के बाद में वह 'नो' तथा 'ना' में बदल जाता है।

(१२) आकारान्त शब्दों के 'स्मि' 'ए' और 'म्हि' तथा स्त्रीलिङ्ग शब्दों में इनके स्थान पर 'यं' हो जाता है।

(१३) 'सु' से पूर्व इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों के अन्त में 'इ' और 'उ' दीर्घ हो जाते हैं, तथा 'अ' के स्थान पर 'ए' परिवर्तित हो जाता है।

(१४) अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के अनन्तर तृतीया विभक्ति से लेकर अन्य विभक्तियों के एक वचन में 'आय' होता है।

(१५) इकारान्त और उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के बाद तृतीया से सप्तमी विभक्ति तक के एक वचन के प्रत्यय 'या' में परिवर्तित हो जाते हैं।

(१६) तीनों लिङ्गों के अकारान्त, इकारान्त, तथा उकारान्त शब्द रूपों से परे ग=सि विभक्ति आने पर उसका अन्त्य स्वर विकल्प से दीर्घ हो जाता है।

(१७) यदि अन्य कोई विधान न किया गया हो तो 'ग' तथा 'सि' विभक्तियों का लोप हो जाता है।

(१८) नपुंसकलिङ्ग अकारान्त नाम से परे 'सि' विभक्ति को 'अं' आदेश हो जाता है।

(१९) नपुंसकलिङ्ग अकारान्त नाम शब्दों से परे, विकल्प से 'पठमा' के 'नि' का 'टा' (आ) तथा 'दुतिया' के 'नि' का 'टे' (ए) आदेश हो जाता है।

(२०) नपुंसकलिङ्ग अकारान्त शब्दों से परे विभक्तियों को 'नि' आदेश हो जाता है।

(२१) 'यो' विभक्ति के लोप होने, अथवा पर में 'नि' होने पर नाम का अन्त्य स्वर दीर्घ हो जाता है।

(२२) 'इ', 'ई' तथा 'उ', 'ऊ' से परे 'स्मा' विभक्ति का विकल्प से 'ना' आदेश हो जाता है। जैसे—दण्डि+स्मा=दण्डिना, मुनि+स्मा=मुनिना।

(२३) यदि आलपन में 'यो' विभक्ति आवे, तो पुल्लिग उकारान्त शब्द के अनन्तर उसका 'वे' तथा 'वो' आदेश हो जाता है; जैसे—हे भिक्खवे, भिक्खवो।

(२४) पुल्लिग उकारान्त शब्द से परे, यदि 'वे', या 'वो' आवे, तो उसके 'उ' का 'अ' हो जाता है; जैसे भिक्खवे, भिक्खवो।

अकारान्त पुल्लिग शब्द

बुद्ध—

विभक्ति	एकवचन	अनेक (बहुवचन)
पठमा	बुद्धो (बुद्धे[1])	बुद्धा
दुतिया	बुद्धं	बुद्धे

१. कहीं-कहीं 'ओ' का 'ए' भी हो जाता है

विभक्ति	एकवचन	अनेक (बहु) वचन
ततिया	बुद्धेन	बुद्धेहि, बुद्धेभि
चतुत्थी	बुद्धाय, बुद्धस्स	बुद्धानं
पञ्चमी	बुद्धा, बुद्धस्मा, बुद्धम्हा,	बुद्धेहि, बुद्धेभि
छट्ठी	बुद्धस्स	बुद्धानं
सत्तमी	बुद्धे, बुद्धम्हि, बुद्धस्मिं	बुद्धेसु
आलपन	बुद्ध, बुद्धा	बुद्धा

—निम्नलिखित अकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप भी 'बुद्ध' शब्द के समान ही होते हैं—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
नर,	मनुष्य	उरग	सर्प,
मनुस्स	,,	यक्ख	यक्ष
पुरिस	,,	देव	देवता
मनुज	,,	सीह	सिंह
सुर	देव	धम्म	धर्म
नाग	सर्प	रुक्ख	वृक्ष आदि ।

अकारान्त नपुसंकलिंग शब्द—फल

	एक वचन	अनेक (बहु) वचन
पठमा	फलं	फला, फलानि
दुतिया	फलं	फले, फलानि
आलपन	फला, फला	फला, फलानि

शेष रूप 'बुद्ध' शब्द के समान होंगे ।

निम्न अकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप भी 'फलं' शब्द के होंगे—

चित्त, पुञ्ञ, पाप, रूप, सोत (कान), घाण (नाक), सुख, दुक्ख कारण, मुख, जल, दान, सील, धन, ञान (ज्ञान), लोचन, मूल, कुल, बल, जाल, हिरञ्ञ (सोना) उदक, भत (भात) गेह, नगर, नयन, हिदय आदि ।

आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—लता

	एकवचन	अनेक (बहु) वचन
पठमा	लता	लता, लतायो
दुतिया	लतं	लता, लतायो
ततिया	लताय	लताहि, लताभि,
चतुत्थी	लताय	लतानं
पञ्चमी	लताय	लताहि, लताभि,
छट्ठी	लताय	लतानं
सत्तमी	लतायं, लताय	लतासु
आलपन	लते	लता, लतायो

निम्न आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप लता के समान ही होंगे :—

अच्छरा, जटा, गाथा, नावा, चन्दिमा, छाया, भरिया, साला, माला, साखा, देवता, माया, सेना, सुरा, वनिता, वीणा आदि।

ओकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—कञ्ञा

	एक वचन	अनेक (बहु) वचन
पठमा	कञ्ञा	कञ्ञा, कञ्ञायो
दुतिया	कञ्ञं	कञ्ञा, कञ्ञायो
ततिया	कञ्ञाय	कञ्ञाहि, कञ्ञाभि
चतुत्थी	कञ्ञाय	कञ्ञानं
पञ्चमी	कञ्ञाय	कञ्ञाहि, कञ्ञाभि
छट्ठी	कञ्ञाय	कञ्ञानं
सत्तमी	कञ्ञायं, कञ्ञाय	कञ्ञासु
आलपन	कञ्ञे	कञ्ञायो

इकारान्त पुंल्लिग शब्द—मुनि (साधु)

	एक वचन	अनेक (हु) ववचन
पठमा	मुनि	मुनी, मुनयो
दुतिया	मुनि	मुनी, मुनयो

विभक्ति	एक वचन	अनेक (बहु) वचन
ततिया	मुनिना,	मुनीहि, मुनीभि
चतुत्थी	मुनिनो, मुनिस्स	मुनीनं
पञ्चमी	मुनिना, मुनिम्हा मुनिस्मा	मुनीहि मुनीभि
छट्ठी	मुनिनो, मुनिस्स	मुनीनं
सत्तमी	मुनिम्हि, मुनिस्मिं	मुनिसु, मुनीसु
आलपन	मुनि, मुनी,	मुनी, मुनयो

निम्न शब्दों के रूप मुनि के समान ही होंगे—पाणि (प्राणी), सालि, वीहि, व्याधि, सन्धि, रासि, दीपि, इसि, मणि, धनि, रवि, कपि, असि, निधि, हरि, कलि, बलि, पति आदि ।

इकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—अग्गि

	एक वचन	अनेक वचन
पठमा	अग्गि	अग्गी
दुतिया	अग्गिं	अग्गी, अग्गयो
ततिया	अग्गिना	अग्गीहि, अग्गीभि
चतुत्थी	अग्गिनो, अग्गिस्स,	अग्गीनं
पंचमी	अग्गिना, अग्गिस्मा अग्गिम्हा,	अग्गीहि अग्गीभि
छट्ठी	अग्गिनो, अग्गिस्स	अग्गीनं
सत्तमी	अग्गिनि, अग्गिस्मिं अग्गिम्हि	अग्गीसु
आलपन	अग्गि	अग्गी, अग्गयो अग्गियो

इकारान्त नपुंसकलिंग शब्द—अट्ठि (हड्डी)

	एक वचन	अनेक (बहु) वचन
पठमा	अट्ठि	अट्ठीनि, अट्ठी

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
दुतिया	अट्ठि	अट्ठीनि, अट्ठी
आलपन	अट्ठि	अठीनि, अट्ठी

शेष रूप 'मुनि' शब्द के समान होते हैं। दधि, वारि अक्खि आदि के रूप भी अट्ठिवत होंगे।

इकारान्त स्त्रीलिंग शब्द रत्ति (रात्रि)

	एक वचन	अनेक वचन
पठमा	रत्ति	रत्ती, रत्तियो, रत्यो,
दुतिया	रत्तिं	रत्ती, रत्तियो, रत्यो,
ततिया	रत्तिया, रत्या,	रत्तीहि, रत्तीभि,
चतुत्थी	रत्तिया, रत्या,	रत्तीनं
पंचमी	रत्तिया, रत्या,	रत्तीहि, रत्तीभि,
छट्ठी	रत्तिया, रत्या,	रत्तीनं
सत्तमी	रत्तियं, रत्यं, रत्या रत्तिं, रत्तो, रत्तिया	रत्तीसु, रत्तिसु
आलपन	रत्ति,	रत्ती, रत्तियो, रत्यो

निम्न शब्दों के रूप भी 'रत्ति' की भाँति ही होंगे—युत्ति, (युक्ति) वुत्ति (खबर), कित्ति (कीर्ति), मुत्ति (मुक्ति) खन्ति (सहनशीलता), सन्ति (शान्ति) सिद्धि, बुद्धि, आदि।

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—इत्थी (स्त्री)

	एक वचन	अनेक वचन
पठमा	इत्थी	इत्थी, इत्थियो
दुतिया	इत्थियं, इत्थिं	इत्थी, इत्थियो
ततिया	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थीभि
चतुत्थी	इत्थिया	इत्थीनं
पंचमी	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थीभि,
छट्ठी	इत्थिया	इत्थीनं

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
सत्तमी	इत्थियं, इत्थिया,	इत्थीसु
आलपन	इत्थि,	इत्थी, इत्थियो,

उकारान्त पुल्लिग शब्द भिक्खु—भिक्षु

पठमा	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खवो
दुतिया	भिक्खुं	भिक्खू, भिक्खवो
ततिया	भिक्खुना	भिक्खूहि, भिक्खूभि
चतुत्थी	भिक्खुनो, भिक्खुस्स,	भिक्खूनं
पंचमी	भिक्खुना, भिक्खुस्मा, भिक्खुम्हा	भिक्खूहि, भिक्खूभि
छट्ठी	भिक्खुनो, भिक्खुस्स,	भिक्खूनं
सत्तमी	भिक्खुस्मिं, भिक्खुम्हि	भिक्खुसु, भिक्खुसु,
आलपन	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खवे, भिक्खवो

निम्न शब्दों के रूप भी भिक्खु की तरह ही होंगे—सेतु, केतु, भानु, राहु, वेणु, मच्चु, मधु, हेतु आदि।

उकारान्त नपुंसकलिंग शब्द—आयु

	एक वचन	बहुवचन
पठमा	आयु	आयूनि, आयू
दुतिया	आयुं	आयूनि, आयू
आलपन	आयु	आयूनि, आयू

शेष रूप भिक्खु शब्द के समान होंगे।

निम्नलिखित शब्दों के रूप भी 'आयु' के समान ही होते हैं—

चक्खु, वसु (धन), धनु (तीर), दारु (लकड़ी), वत्थु (कहानी), अम्बु (पानी) आदि।

उकारान्त नपुंसकलिंग शब्द—चक्खु

	एक वचन	बहु वचन
पठमा	चक्खु	चक्खूनि

विभक्ति	एकवचन	वहुवचन
दुतिया	चक्खुं	चक्खूनि, चक्खू
ततिया	चक्खुना	चक्खूहि, चक्खूभि
चतुत्थी	चक्खुस्स, चक्खुनो,	चक्खूनं
पंचमी	चक्खुना, चक्खुस्मा चक्खुम्हा,	चक्खूहि, चक्खूभि
छट्ठी	चक्खुस्स, चक्खुनो	चक्खूनं
सत्तमी	चक्खुस्मि, चक्खुम्हि	चक्खूसु
आलपन	चक्खु	चक्खूनि, चक्खू

उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—धेनु (=गाय)

	एक वचन	वहु वचन
पठमा	धेनु	धेनू, धेनुयो
दुतिया	धेनुं	धेनू, धेनुयो
ततिया	धेनुया	धेनूहि, धेनुभि
चतुत्थी	धेनुया	धेनूनं
पञ्चमी	धेनुया	धेनूहि, धेनुभि
छट्ठी	धेनुया	धेनूनं
सत्तमी	धेनुयं, धेनुया	धेनूसु
आलपन	धेनु	धेनू, धेनुयो

ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—वधू (=बहू)

	एक वचन	वहु वचन
पठमा	वधू	वधू, वधुयो
दुतिया	वधुं	वधू, वधुयो
ततिया	वधुया	वधूहि, वधूभि
चतुत्थी	वधुया	वधूनं
पञ्चमी	वधुया	वधूहि, वधूभि
छट्ठी	वधुया	वधूनं

विभक्ति	एकवचन	(बहुवचन)
सत्तमी	वधुयं, वधुया	वधूसु
आलपन	वधुः	वधू, वधूयो

उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—मातु

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	माता	मातरो
दुतिया	मातरं	मातरे, मातरो
ततिया	मातुया, मातरा	मातरेहि, मातरेभि, मातूहि, मातूभि
चतुत्थी	मातु, मातुया	मातरानं, मातानं, मातूनं
पञ्चमी	मातुया, मातरा	मातरेहि, मातरेभि, मातूहि, मातूभि
छट्ठी	मातु, मातुया	मातरानं, मातानं, मातूनं
सत्तमी	मातुया, मातरि,	मातरेसु, मातुसु
आलपन	मात, माता	मातरो

उकारान्त पुल्लिग शब्द—पितु (=पिता)

	एक वचन	बहु वचन
पठमा	पिता	पितरो
दुतिया	पितरं	पितरे, पितरो
ततिया	पितरा	पितरेहि, पितरेभि, पितूहि, पितूभि
चतुत्थी	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितान पितूनं
पञ्चमी	पितरा	पितरेहि, पितरेभि, पितूहि, पितूभि
छट्ठी	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितानं, पितूनं
सत्तमी	पितरि	पितरेसु, पितुसु, पितूसू
आलपन	पित, पिता	पितरो

सत्थु=शास्ता, भगवान् बुद्ध

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पठमा	सत्था	सत्थारो
दुतिया	सत्थारं	सत्थारे, सत्थारो
ततिया	सत्थारा	सत्थारेहि, सत्थारेभि, सत्थूहि, सत्थूभि
चतुत्थी	सत्थु, सत्थुनो सत्थुस्स	सत्थारानं, सत्थानं
पञ्चमी	सत्थारा	सत्थारेहि, सत्थारेभि, सत्थूहि, सत्थूभि
छट्ठी	सत्थु, सत्थुनो, सत्थुस्स	सत्थारानं, सत्थानं
सत्तमी	सत्थरि	सत्थारेसु
आलपन	सत्थ, सत्था	सत्थारो

निम्न शब्दों के रूप 'सत्थु' के समान ही होते हैं—

कत्तु, नत्तु, गन्तु, नेतु, भत्तु, सोतु, वत्तु आदि।

ईकारान्त पुल्लिग शब्द—दण्डी

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	दण्डी	दण्ड, दण्डिनो
दुतिया	दण्डिनं, दण्डिं	दण्डी, दण्डिनो; दण्डिने;
ततिया	दण्डिना,	दण्डीहि, दण्डीभि
चतुत्थी	दण्डिनो, दण्डिस्स,	दण्डीनं
पञ्चमी	दण्डिना, दण्डिस्मा दण्डिम्हा	दण्डीहि, दण्डीभि
छट्ठी	दण्डिनो, दण्डिस्स,	दण्डीनं
सत्तमी	दण्डिनि, दण्डिम्हि, दण्डिस्मिं	दण्डिसु दण्डीसु
आलपन	दण्डि, दण्डी	दण्डी, दण्डिनो

निम्न शब्दों के रूप भी दण्डी के समान होंगे—

करी (हाथी), गणी (गणवाला) दन्ती, धम्मी, जटी, चक्की, आदि ।

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—नदी

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	नदी	नदी, नदियो नज्जायो, नज्जो,
दुतिया	नदिं, नदियं, नज्जं	नदी, नदियो, नज्जायो, नज्जो
ततिया	नदिया, नज्जा;	नदीहि, नदीभि
चतुत्थी	नदिया, नज्जा,	नदीनं
पञ्चमी	नदिया, नज्जा,	नदीहि, नदीभि
छट्ठी	नदिया, नज्जा,	नदीनं
सत्तमी	नदिया, नज्जा, नज्जं	नदीसु
आलपन	नदि,	नदी, नदियो, नज्जायो, नज्जो

ओकारान्त पुंल्लिग शब्द—गो (बैल)

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	गो	गावो, गवो
दुतिया	गावुं, गावं, गवं	गावो, गवो
ततिया	गावेन, गवेन, गावा, गवा,	गोहि, गोभि
चतुत्थी	गावस्स, गवस्स, गवं	गवं, गुन्नं गोनं
पञ्चमी	गवा, गावा, गावस्मा, गावम्हा, गवस्मा, गवम्हा	गोहि, गोभि,
छट्ठी	गावस्स, गवस्स, गवं	गवं, गुन्नं, गोनं
सत्तमी	गावे, गवे, गावम्हि गवम्हि, गावस्मि, गवस्मि	गावेसु, गवेसु, गोसु
आलपन	गो	गावो, गवो

टिप्पणी—'गो' शब्द के अतिरिक्त ओकारान्त पुंल्लिग शब्द अन्य नहीं मिलते । 'गो' शब्द के स्त्रीलिंग में भी यह रूप बनते हैं ।

ओकारान्त नपुंसकलिंग शब्द

चित्तगो (=विचित्र गायों वाला)

पठमा	चित्तगु	चित्तगू,	चित्तगूनि
दुतिया	चित्तगुं	चित्तगू,	चित्तगूनि
आलपन	चित्तगु	चित्तगू,	चित्तगूनि

शेष, रूप 'आयु' शब्द के समान ।

व्यंजनान्त शब्द

पालि में व्यंजनान्त पदों का प्रायः अभाव है किन्तु संस्कृत के व्यंजनान्त शब्द पालि में स्वरान्त हो गये हैं। इनके रूप अनियमित हैं। पालि में ये शब्द अकारान्त और आकारान्त होते हुए भी इनके रूप बुद्ध आदि से भिन्न होते हैं।

अत्ता (आत्मा) शब्द

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अत्ता	अत्ता, अत्तानो
दुतिया	'अत्तानं' अत्तं	अत्तानो, अत्ते
ततिया	अत्तेन, अत्तना	अत्तेहि, अत्तेभि अत्तेनहि, पत्तनेभि
चतुत्थी	अत्तनो, अत्तस्स	अत्तानं
पञ्चमी	अत्तना, अत्तस्मा, अत्तम्हा	अत्तेहि, अत्तेभि अत्तेनहि, अत्तेनभि
छुट्ठी	अत्तनो, अत्तस्स	अत्तानं
सत्तमी	अत्तनि, अत्तस्मि अत्तम्हि, अत्ते	अत्तनेसु, अत्तेसु
आलपन	अत्त, अत्ता,	अत्ता, अत्तानो

ब्रह्म (ब्रह्मा) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	ब्रह्मा	ब्रह्मा, ब्रह्मानो
दुतिया	ब्रह्मानं, ब्रह्मं	ब्रह्मानो

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
ततिया	ब्रह्मना ब्रह्मुना	ब्रह्मेहि, ब्रह्मेभि ब्रह्मूहि ब्रह्मूभि
चतुत्थी	ब्रह्मुनो, ब्रह्मस्स	ब्रह्मानं ब्रह्मूनं
पञ्चमी	ब्रह्मना, ब्रह्मुना	ब्रह्मेहि, ब्रह्मेभि ब्रह्मूहि, ब्रह्मूभि
छट्ठी	ब्रह्मुनो, ब्रह्मस्स	ब्रह्मानं ब्रह्मूनं
सत्तमी	ब्रह्मे, ब्रह्मानि ब्रह्मस्मिं, ब्रह्मम्हि	ब्रह्मेसु
आलपन	ब्रह्मे	ब्रह्मा, ब्रह्मानो

पुम (मनुष्य) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	पुमा, पुमो	पुमो, पुमानो,
दुतिया	पुमानं, पुमं	पुमानो, पुमाने, पुमे
ततिया	पुमाना, पुमुना, पुमेन	पुमानेहि, पुमानेभि पुमेहि, पुमेभि
चतुत्थी	पुमुनो पुमस्स	पुमानं
पंचमी	पुमाना, पुमुना, पुमा पुमुस्मा, पुमम्हा	पुमानेहि, पुमानेभि पुमेहि, पुमेभि
छट्ठी	पुमुनो, पुमस्स	पुमानं
सत्तमी	पुमाने, पुमे पुमस्मि, पुमम्हि	पुमासु पुमानेसु, पुमेसु
आलपन	पुमं, पुम	पुमानो, पुमा

सा (कुत्ता)

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	सा	सा, सानो
दुतिया	सं, सानं	से, साने
ततिया	सेन, साना,	सेहि, सेभि सानेहि, सानेभि

विभक्ति	एकवचन	(बहुवचन)
चतुत्थी	सस्स, साय, सानस्स	सानं
पञ्चमी	सा, सस्सा, सम्हा, साना	सेहि, सेभि सानेहि, सानेभि
छट्ठी	सस्स, सानस्स	सानं
सत्तमी	से, सस्मिं, सम्हिसाने,	सासु
आलपन	स, सान	सा, सानो

पुल्लिग-—राज (राजा)

	एकवचन	अनेक (बहु) वचन
पठमा	राजा	राजा, राजानो
दुतिया	राजानं, राजं,	राजानो
ततिया	रञ्ञा, राजेन, राजिना	राजूहि, राजूभि, राजेहि, राजेभि
चतुत्थी	रञ्ञो, राजिनो, राजस्स, रञ्ञस्स	रञ्ञं, राजूनं राजानं
पञ्चमी	रञ्ञा, राजस्मा राजम्हा	राजूहि, राजूभि, राजेहि, राजेभि
छट्ठी	रञ्ञो, रञ्ञस्स राजिनो, राजस्स	रञ्ञं, राजूनं, राजानं
सत्तमी	रञ्ञे, राजिनि राजस्मिं, राजम्हि	राजुसु, राजेसु
आलपन	राज, राजा	राजानो, राजा

गच्छन्त शब्द (गच्छत्) पुल्लिग

विभक्ति	एकवचन	अनेक (बहु) वचन
पठमा	गच्छं, गच्छन्तो	गच्छन्तो, गच्छन्त्या
दुतिया	गच्छन्तं	गच्छन्ते
ततिया	गच्छत, गच्छन्तेन	गच्छेन्तेहि, गच्छन्तेभि

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
चतुत्थी	गच्छतो, गच्छन्तस्स	गच्छन्तं, गच्छन्तानं
पंचमी	गच्छता, गच्छन्ता गच्छन्तस्मा, गच्छन्तम्हा,	गच्छन्तेहि, गच्छन्तेभि
छट्ठी	गच्छतो, गच्छन्तस्स	गच्छन्तं, गच्छन्तानं
सत्तमी	गच्छति, गच्छन्ते गच्छन्तस्मि, गच्छन्तम्हि	गच्छन्तेसु
आलपन	गच्छं, गच्छ, गच्छा,	गच्छन्ता, गच्छन्तो

युव (युवक) शब्द

विभक्ति	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	युवा (यूनो)	युवा, युवानो, युवाना
दुतिया	युवानं, युवं	युवाने, युवे
ततिया	युवाना, युवानेन, युवेन	युवानेहि, युवानेभि, युवेहि, युवेभि
चतुत्थी	युवानस्स, युवस्स, युविनो	युवानानं, युवानं
पंचमी	युवाना, युवानस्मा युवानम्हा	युवानेभि, युवानेहि युवेभि, युवेहि
छट्ठी	युवानस्स, युवस्स, युविनो	युवानानं, युवानं
सत्तमी	युवाने, युवे, युवानस्मि युवानम्हि, युवस्मि, युवम्हि	युवानेसु, युवासु, युवेसु
आलपन	युव, युवा, युवान, युवाना,	युवानो, युवाना

'मघव' (= इन्द्र) शब्द के रूप भी 'युव' शब्दवत् ही होते हैं।

सर्वनाम शब्द—

जिस प्रकार संस्कृत में सर्वनाम के रूपों में यत्र-तत्र अन्तर रहता है उसी प्रकार पालि में भी रूपों में अन्तर मिलता है। पालि सर्वनाम शब्दों में भी संस्कृत का अनुकरण करती हुई दिखलाई पड़ती है, यहाँ हम एक दो शब्दों के

रूपों को ही (विस्तार के भय से) लिखेंगे। पाठक अधिक जानकारी के लिए पालि प्रवोध का अध्ययन करें—

पुल्लिग शब्द सब्ब (सर्व)

विभक्ति	एकवचन	अनेकवचन
पठमा	सब्बो	सब्बे
दुतिया	सब्बं	सब्बे
ततीया	सब्बेन	सब्बेहि, सब्बेभि
चतुत्थी	सब्बस्स	सब्बेस, सब्बेसानं
पंचमी	सब्बस्मा सब्बम्हा	सब्बेहि सब्बेभि
छट्ठी	सब्बस्स	सब्बेसं सब्बेसानं
सत्तमी	सब्बस्मि, सब्बम्हि	सब्बेसु
आलपन	सब्ब, सब्बा	सब्बे

स्त्रीलिंग—सब्ब (सर्व)

	एक वचन	अनेक वचन
पठमा	सब्बा	सब्बा, सब्बयो
दुतिया	सब्बं	सब्बा, सब्बायो
ततिया	सब्बाय	सब्बाभि, सब्बाहि
चतुत्थी	सब्बस्सा, सब्बाय,	सब्बासं, सब्बासानं
पंचमी	सब्बाय	सब्बाभि, सब्बाहि
छट्ठी	सब्बस्सा, सब्बाय	सब्बासं, सब्बासानं
सत्तमी	सब्बस्सं, सब्बायं	सब्बासु
आलपन	सब्बे	सब्बा, सब्बायो

नपुंसकलिंग

पठमा	सब्बं	सब्बानि
दुतिया	सब्बं	सब्बे, सब्बानि
आलपन	सब्ब, सब्बा	सब्बानि

शेष रूप पुल्लिङ्ग के समान

अम्ह शब्द (अम्ह = मैं)

	एक वचन	अनेक वचन
पठमा	अहं	मयं, अस्मा, अम्हे, नो
दुतिया	मं, ममं,	अम्हं, अम्हाकं, अम्हे, नो
ततिया	मया, मे	अम्हेहि, अम्हेभि, नो
चतुत्थी	मम ममं, मय्हं,, अम्हं, मे	अस्माकं, अम्हाकं, अम्हं अम्हे, नो
पंचमी	मया	अम्हेहि, अम्हेभि,
छट्ठी	मम, ममं मय्हं, अम्हं, मे,	अस्माकं, अम्हाकं, अम्हं, अम्हे, नो
सत्तमी	मयि,	अस्मासु, अम्हेसु

तुम्ह शब्द (तू = तुम्ह)

	एक वचन	अनेक वचन
पठमा	त्वं, तुवं	तुम्हे, वो
दुतिया	त्वं, तुवं, तवं, तं	तुम्हं, तुम्हाकं, तुम्हे, वो
ततिया	त्वया, तया, ते	तुम्हेहि, तुम्हेभि, वो
चतुत्थी	तव, तुय्हं, तुम्हं, ते,	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
पंचमी	त्वाय, तया, त्वम्हा	तुम्हेहि, तुम्हेभि
छट्ठी	तव, तुय्हं, तुम्हं, ते,	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
सत्तमी	त्वयि, तयि,	तुम्हेसु

सो (तद् = वह)

	एक वचन	अनेक वचन
पठमा	सो	ते, ने
दुतिया	तं, नं	ते, ने
ततिया	तेन, नेन	तेभि, तेहि, नेभि, नेहि
चतुत्थी	तस्स नस्स	तेसं, तेसानं, नेसं, नेसानं

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पंचमी	तस्मा, तम्हा नस्मा, नम्हा	तेभि, तेहि, नेभि, नेहि
छट्ठी	तस्स, नस्स,	तेसं, तेसानं, नेसं, नेसानं
सत्तमी	तस्मि, तम्हि नस्मि, नम्हि	तेसु, नेसु

सा (तद=वह) स्त्रीलिंग

पठमा	सा	ता, तायो
दुतिया	तं, नं	ता, तायो
ततिया	ताय, नाय,	ताभि, ताहि, नाभि, नाहि
चतुत्थी	तिस्साय, तिस्सा, तस्या, ताय	तासं, तासानं
पंचमी	ताय, ताय	ताभि, ताहि, नाहि
छट्ठी	तिस्साय, तिस्सा, तस्सा, ताय	तासं, तासानं
सत्तमी	तिस्सं, तस्सं, तायं,	तासु

सा (यद्=वह) नपुंसकलिंग

पठमा	तं, नं	ते, तानि, ने
दुतिया	तं, नं	ते, तानि ने

शेष रूप पुलिङ्ग के समान

या (तद्=यह) पुल्लिंग

	एक वचन	बहुवचन
पठमा	यो	ये
दुतिया	यं	ये
ततिया	येन	येभि, येहि
चतुत्थी	यस्स	येसं, येसानं
पंचमी	यम्हा, यस्सा,	येभि, येहि,
छट्ठी	यस्स,	येसं येसानं,
सत्तमी	यम्हि, यस्मि	येसु

या (यद्=यह) स्त्रीलिंग

पठमा	या	या, यायो
दुतिया	यं	या, यायो
ततिया	याय	याभि, याहि
चतुत्थी	यस्सा, याय	यासं, यासनं
पंचमी	याय	याभि, याहि
छट्ठी	यस्सा, याय,	यास, यासानं
सत्तमी	यस्सं, यायं	यासु

या (यद्) नपुंसकलिंग

पठमा	यं	ये, यानि
दुतिया	यं	ये, यानि

शेष पुल्लिङ्ग के समान

पुल्लिग शब्द किं=(कौन)

सभी विभक्तियों में 'किं' शब्द का 'क' आदेश हो जाता है।

	एक वचन	बहुवचन
पठमा	को	के
दुतिया	कं	के
ततिया	केन	केहि, केभि
चतुत्थी	कस्स, किस्स	केसं, केसानं
पंचमी	कम्हा, कस्मा, किस्मामे	केहि, केभि
छट्ठी	कस्स, किस्स	केसं, केसानं
सत्तमी	कम्हि, किम्हि, कस्मिं, किस्मिं	केसु

नपुंसकलिंग : किं शब्द

पठमा	किं, कं	के, कानि
दुतिया	किं, कं	के, कानि

शेष रूप पुल्लिग के समान

स्त्रीलिंग

पठमा	का	का, कायो
दुतिया	कं	का, कायो
ततिया	काय	काहि, काभि
चतुत्थी	कस्सा, काय	कासं, कासानं
पंचमी	काय	काहि, काभि,
छट्ठी	कस्सा, काय	कासं, कासानं
सत्तमी	कस्सं, कायं	कासु

'य'(=जो) शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में 'किं' के समान ही होंगे।

पुल्लिग=सर्वनाम शब्द

एत (=यह)

	एक वचन	वहु वचन
पठमा	एसो	एते
दुतिया	एतं, एनं	एते, एने
ततिया	एतेन	एतेहि, एतेभि
चतुत्थी	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
पञ्चमी	एतम्हा, एतस्मा	एतेहि, एतेभि
छट्ठी	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
सत्तमी	एतम्हि, एतस्मिं	एतेसु

नपुंसकलिंग

पठमा	एतं	एते, एतानि
दुतिया	एतं	एते, एतानि

शेष रूप पुल्लिङ्ग के समान ही होंगे।

स्त्रीलिंग

पठमा	एसा	एता, एतायो
दुतिया	एतं	एता, एतायो

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
ततिया	एताय	एताहि, एताभि
चतुत्थी	एतिस्साय, एतिस्सा एताय	एतासं, एतासानं
पञ्चमी	एताय	एताहि, एताभि
छट्ठी	एतिस्साय, एतिस्सा एताय	एतासं, एतासानं
सत्तमी	एतिस्सं, एतस्सं, एतासं	एतासु

अमु (=वह) पुल्लिंग

	एक वचन	बहु वचन
पठमा	असु, अमुको	अमू, अमुयो
दुतिया	अमुं	अमू, अमुयो
ततिया	अमुना	अमूहि, अमूभि
चतुत्थी	अमुस्स	अमूसं, अमूसानं
पञ्चमी	अमुना, अमुम्हा, अमुस्सा	अमूहि, अमूभि
छट्ठी	अमुस्स	अमूसं, अमूसानं
सत्तमी	अमुम्हि, अमुस्मिं	अमूसु

नपुंसकलिंग

पठमा	अदुं, अमुं	अमू, अमूनि
दुतिया	अदुं, अमुं	अमू, अमूनि

स्त्रीलिंग

पठमा	असु, अमु	अमू, अमुयो
दुतिया	अमुं	अमू, अमुयो
ततिया	अमुया	अमूहि, अमूभि
चतुत्थी	अमुस्सा, अमुया	अमूसं, अमूसानं
पञ्चमी	अमुया	अमूहि, अमूभि

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
छट्ठी	अमुस्सा, अमुया	अमूसं, अमूसानं
सत्तमी	अमुस्सं, अमुयं	अमूसु

इम (यह) पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
पठमा	अयं	इमे
दुतिया	इमं	इमे
ततिया	अनेन, इमिना,	एभि, एहि, इमेभि, इमेहि
चतुत्थी	अस्स, इमस्स	एसं, एसानं इमेसं, इमेसानं
पञ्चमी	अस्मा, इमस्सा, इमम्हा	एभि, एहि, इमेभि इमेहि
छट्ठी	अस्स, इमस्स	एसं, एसानं इमेसं, इमेसानं
सत्तमी	अस्मिं, इमस्मि, इमम्हि	एसु, इमेसु

स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	अयं	इमा, इमायो
दुतिया	इमं	इमा, इमायो
ततिया	इमाय	इमाभि, इमाहि
चतुर्थी	अस्साय, अस्सा, इमिस्साय, इमिस्सा इमाय	इमासं इमासानं
पञ्चमी	इमाय	इमाभि, इमाहि,
छट्ठी	अस्साय, अस्सा, इमिस्साय, इमिस्सा, इमाय	इमासं, इमाह
सत्तमी	अस्सं, इमिस्स, इमाय	इमासु

नपुंसकलिंग

पठमा	इदं, इमं,	इमे, इमानि
दुतिया	इदं इमं,	इमे, इमानि

शेष रूप पुंल्लिग के समान।

क्रिया प्रकरण

क्रिया के अर्थ को प्रकट करने वाले शब्द को 'धातु' कहा जाता है, जैसे भू, पठ, गम आदि।

सर्वनाम और संज्ञा में जुड़ने वाले पर-प्रत्यय क्रिया-प्रत्ययों से भिन्न होते हैं क्रिया-प्रत्यय पुरुष वाचक प्रत्यय होते हैं, ये प्रत्यय या तो धातु से जुड़ते हैं या उस आधार से सम्बद्ध होते हैं, जो धातु में रूपात्मक प्रत्ययों से संयुक्त होते हैं। एक बात यहाँ विशेष ध्यान देने की यह है कि धातु या शब्द (प्रकृति) का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता है उनके साथ किसी प्रत्यय का जुड़ना आवश्यक है।

संस्कृत में दस गण हैं किन्तु पालि में गणों की संख्या नौ है। इन्हीं नौ गणों में समस्त धातुओं का समाहार हो जाता है। इन गणों के नाम निम्न हैं—

१. भूवादिगण,	१. पठ—पठ पठति=पढ़ता है। पच-पचति पकाता है।
२. रुधादिगण,	२. रुध—रुन्धति=रोकता है। मुच—मुञ्चति=छोड़ता है।
३. दिवादिगण,	३. दिव—दिब्बति=खेलता है। भिद=भिञ्जति=टूटता है।
४. स्वादिगण,	४. स्वादि=सु: सुणोति=सुनता है।
५. तुदादिगण,	५. तुद=तुदति=दु:खता है।
६. ज्यादिगण,	६. जि—जिनाति=जीतता है।
७. चुरादिगण,	७. चुर=चोरेति: चोरी करता है।
८. क्र्यादिगण,	८. की=किणाति=खरीदता है।
९. तनादिगण,	९. तन=तनोति=फैलाता है।

सभी कालों में धातु के परस्स पद तथा अत्तनोपद दो प्रकार के रूप होते हैं। किसी भी स्थान पर विकल्प से परस्सपद या अत्तनोपद के रूप प्रयुक्त हो सकते हैं। लेकिन व्यवहार में अत्तनोपद का प्रयोग बहुत कम होता है अतः इसके रूप कम ही मिलते हैं।

क्रियाओं में तीन पुरुष-उत्तम, मध्यम और प्रथम पुरुष होते हैं तथा पालि में वचन दो—एकवचन और अनेक वचन (बहुवचन) होते हैं।

संस्कृत में धातु लकार दस हैं किन्तु पालि के आठ—(१) वत्तमावा, (२) पंचमी, (३) सत्तमी, (४) परोक्खा, (५) हीयत्तनी, (६) अज्जत्तनी, (७) भविस्सन्ती और (७) कालातिपत्ति।

(१) वत्तमाना का प्रयोग वर्त्तमान काल में होता है।

(२) पंचमी का प्रयोग आज्ञा और आशीर्वाद में होता है।

(३) सत्तमी का प्रयोग अनुमति और निर्णय परक अर्थों में होता है।

(४) परोक्खा का प्रयोग जिसे कर्त्ता ने न देखा है, ऐसे काल का सूचक है। यह पूर्णतः भूतकाल है।

(५) हीयत्तनी-कल से पूर्व का सूचक है।

(६) अज्जत्तनी का प्रयोग आज से पूर्व की घटनाओं के लिए होता है।

(७) भविस्सन्ति का प्रयोग भविष्यकाल के लिए होता है।

(८) कालातिपत्ति—भूतकाल से आज तक निरन्तर चलने वाली क्रियाओं के लिए कालातिपत्ति का प्रयोग होता है।

धातुप्रत्यय—पालि में प्रयुक्त होने वाले धातु प्रत्यय निम्न हैं—

वत्तमाना-वर्त्तमानकाल

परस्स पद—

	एकवचन	अनेक वचन
पठम पुरिस	ति	अन्ति
मज्झिम पुरिस	सि	थ
उत्तम पुरिस	मि	म

अत्तनोपद

प० पु०	ते	अन्ते
म० पु०	से	व्हे
उ० पु०	ए	म्हे

पंचमी—लोट्‌लकार (Imperative)

परस्सपद—

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	तु	अन्तु
म० पु०	हि	थ
उ० पु०	मि	म

अत्तनोपद

प० पु०	तं	अन्त
म० पु०	स्सु	व्हो
उ० पु०	ए	आमसे

सत्तमी—विधि लिंग (Optative)

परस्सपद

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	एय्य	एय्युम
म० पु०	एय्यासि	एय्याथ
उ० पु०	एय्यामि	एय्याम

अत्तनोपद—

प्र० पु०	एथ	एरं
म० पु०	एथो	एय्यावहो
उ० पु०	एय्यं	एय्याम्हे

परोक्खाः लिट्‌लकार (Past Tense)

परस्सपद—

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	अ	उ

म० पु०	ए	त्थ
उ० पु०	अ	म्ह

अत्तनोपद—

प० पु०	त्थ	रे
म० पु०	त्थो	व्हो
उ० पु०	इ	म्हे

हीयतनी लङ्‌लकार (Imperfect)

परस्सपद—

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	आ, अ,	ऊ, उं
म० पु०	आ, ओ	त्थ
उ० पु०	अ, अं	म्हा

अत्तनोपद—

प० पु०	त्थ, थ	त्थुं
म० पु०	से	व्हं
उ० पु०	इं	म्हसे

अज्जतनी, लुङ्‌लकार (Aosist)

परस्सपद—

प० पु०	ई, इ,	उं, इंसु
म० पु०	इ	इत्थ
उ० पु०	इं	इम्हा, इम्ह

अत्तनोपद—

प० पु०	आ,	ऊ
म० पु०	से	व्हं
उ० पु०	अ	म्हे

भविस्सन्ती-लृट्लकार (Future)

परस्सपद

	एक वचन	वहु वचन
प० पु०	स्सति	स्सन्ति
म० पु०	स्ससि	स्सथ
उ० पु०	स्सामि	स्साम,

अत्तनोपद—

	एकवचन	वहु वचन
प० पु०	स्सते	स्संते
म० पु०	स्ससे	स्सव्हे
उ० पु०	स्सं	स्साम्हे

कालातिपत्ति : लृङ् (Conditional)

परस्सपद—

प० पु०	स्सा,	स्संसु
म० पु०	स्से	स्सथ
उ० पु०	स्सं	स्सम्हा

अत्तनोपद—

प० पु०	स्सथ	स्सिसु
म० पु०	स्से	स्सव्हे
उ० पु०	स्सं	स्साम्हसे

प्रथमगण भूवादि

भूधातु, लट्लकार वर्तमाना (Present Tense)

परस्मैपद

प्रथम पुरुष	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	भवति	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवाम

आत्मनेपद

प० पु०	भवते	भवन्ते
म० पु०	भवसे	भवव्हे
उ० पु०	भवे	भवाम्हे

लोट्‌लकार पंचमी (Imperative)

परस्मैपद

प० पु०	भवतु, होतु	भवन्तु, होन्तु
म० पु०	भव, भवाहि, होहि,	भवथ, होथ
उ० पु०	भवामि, होमि,	भवाम, होम

आत्मनेपद

प० पु०	भवतं	भवन्तं
म० पु०	भवस्सु	भवव्हो
उ० पु०	भवे	भवामसे

विधिलिंग सत्तमी (Optative)

परस्मैपद

प० पु०	भवेय्य, भवे, हेय	भवेय्यु, हेयु
म० पु०	भवेय्यासि, भवे, हेय्यासि,	भवेय्याथ, हेय्याथ
उ० पु०	भवेय्यामि, भवे, हेय्यामि	भवेय्याम, हेय्याम

आत्मनेपद—

प० पु०	भवेथ	भवेरं
म० पु०	भवेथो	भवेय्यव्हो
उ० पु०	भवेय्यं	भवेय्याम्हे

लिट् परोक्खा परोक्षभूत—

परस्मैपद

प० पु०	बभूव	बभूवु
म० पु०	बभूवे	बभूवित्थ
उ० पु०	बभूव	बभूविम्ह

आत्मनेपद—

प० पु०	बभूवित्थ	बभूविरे
म० पु०	बभूवित्थो	बभूविव्हो
उ० पु०	बभूवि	बभूविम्हे

लङ्ग् हीयत्तनो (Pas:erfect)—

परस्मैपद

प० पु०	अभवा, अभूव, अहुव	अभवुं, अहुवु, अहुवू
म० पु०	अभवो, अहुवो,	अभवत्थ, अहुवत्थ
उ० पु०	अभवं, अभव, अहुवं	अभवम्ह, अहुवम्हा

आत्मनेपद—

प० पु०	अभवत्थ	अभवत्थुं
म० पु०	अभवसे	अभवव्हं
उ० पु०	अभविं	अभवाम्हसे

लुङ्ग्लकार अत्तनी—

परस्मैपद

प० पु०	अभवि, अभवी,	अभवुं, अभविंसु
म० पु०	अभवो	अभवित्थ
उ० पु०	अभविं	अभविम्हा

आत्मनेपद—

प० पु०	अभवा	अभवू
म० पु०	अभव से	अभविह्वं
उ० पु०	अभवं	अभविम्हे

पालिभाषा में भू धातु के स्थान पर विकल्प से 'हु' धातु के रूप भी मिलते हैं तथा लुङ् परस्मैपद में 'हु' धातु से निर्मित रूपों का ही प्रचुर प्रयोग होता है—

प० पु०	अहोसि, अहू	अहेसुं, अहुवुं
म० पु०	अहोसि	अहोसित्थ
उ० पु०	अहोसिं, अहुं	अहोसिम्हा, अहुम्ह,

लृट्लकार (Future) भविस्सन्ती

परस्मैपद—

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	भविस्सति	भविस्सन्ति
म० पु०	भविस्ससि	भविस्सथ
उ० पु०	भविस्सामि	भविस्साम

आत्मनेपद—

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	भविस्सते	भविस्सन्ते
म० पु०	भविस्ससे	भविस्ससे
उ० पु०	भविस्सं	भविस्साम्हे

कालातिपत्ति लृङ्लकार

परस्मेपद—

प० पु०	अभाविस्सा, अभविस्स	अभिवस्संसु
म० पु०	अभविस्से, अभविस्स	अभविस्सथ
उ० पु०	अभविस्सं	अभाविस्सम्हा, अभविस्सम्हा

आत्मनेपद—

प० पु०	अभविस्सथ	अभविसिसु
म० पु०	अभविस्से	अविस्सव्हे
उ० पु०	अभविस्सं	अभविस्साम्हसे

एध (एध्) वृद्धि

वर्त्तमाना—

प० पु०	एधति	एधन्ति
म० पु०	एधसि	एधथ
उ० पु०	एधामि	एधाम

हीय्यतनी—

प० पु०	एधि	एधिसु, एधुं

म० पु०	एधि	एधित्थ
उ० पु०	एधिं	एधिम्ह

भविस्सन्ती—

प० पु०	एधिस्सति	एधिस्सन्ति
म० पु०	एधिस्ससि	एधिस्सथ
उ० पु०	एधिस्सामि	एधिस्साम

परोक्खा—

प० पु०	एधतु	एधन्ति
म० पु०	एध, एधहि	एधथ
उ० पु०	एधामि	एधाम

सत्तमी—

प० पु०	एधे, रधेय्य	एधेय्युं
म० पु०	एधेय्यासि	एधेय्याथ
उ० पु०	एधेय्यामि	एधेय्याम

कालातिपत्ति

प० पु०	एधिस्स	एधिस्ससु
म० पु०	एधिस्स	एधिस्सथ
उ० पु०	एधिस्सं	एधिस्सम्ह

आत्मनेपद (अत्तनोपद)

वर्त्तमान

प० पु०	एधते	एधन्ते
म० पु०	धसे	एधव्हे
उ० पु०	एधे	एधम्हे

हीय्यत्तनी

एधित्थ	एधुं
एधसे	एधव्हे
एधिं	एधम्हसे

भविस्सन्ती

प० पु०	एभिस्सते	एधिस्सन्ते
म० पु०	एधिस्ससे	एधिस्सव्हे
उ० पु०	एधिस्सं	एधिस्सम्हे

सत्तमी

प० पु०	एधेथ	एधेरं
म० पु०	एधेथो	एधेय्यव्हो
उ० पु०	एधेय्यं, एधे	एधेय्याम्हे

कालातिपत्ति

प० पु०	एधिस्सथ	एधिस्संसु
म० पु०	एधिस्ससे	एधिस्सव्हे
उ० पु०	एधिस्सं	एधिस्साम्हसे

आज्ञार्थ पंचमी

एधतं	एधन्तं
एधस्सु	एधव्हो
एधे	एधामसे

परोक्ख

प० पु०	एधांचकर	एधांचकर
म० पु०	एधांचकरे	एधांचकरित्थ
उ० पु०	एधांचकर	एधांचकरिम्ह
प० पु०	एधांचकरित्थ	एधांचकरिरे
म० पु०	एधांचकरित्थो	एधांचकरिव्हो
उ० पु०	एधांचकरि	एधांचकरिम्हे

ठा (खड़ा होना) परस्सपद

वत्तमाना—वर्त्तमानकाल

एक वचन	अनेक वचन
तिट्ठति, ठाति	तिट्ठन्ति, ठन्ति,

	तिट्ठसि, ठासि	तिट्ठथ, ठाथ,
	तिट्ठामि, ठामि	तिट्ठाम, ठाम

पंचमी—आज्ञा

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	तिट्ठतु, ठातु	तिट्ठन्तु, ठन्तु
म० पु०	तिट्ठ, तिट्ठाहि, ठाहि	तिट्ठथ, ठाथ
उ० पु०	तिट्ठामि, ठामि	तिट्ठाम, ठाम

सत्तमी—(विधि)

प० पु०	तिट्ठेय्य	तिट्ठेयुं
म० पु०	तिट्ठेयासि	तिट्ठेय्याथ
उ० पु०	तिट्ठेय्यामि	तिट्ठेय्याम

भविस्सन्ती—भविष्य

प० पु०	ठस्सति, तिट्ठिस्सति	ठस्सन्ति, तिट्ठिस्सन्ति
म० पु०	ठस्ससि, तिट्ठससि	ठस्सथ, तिट्ठिस्सथ
उ० पु०	ठस्सामि, तिट्ठिस्मालि	ठस्साम, तिट्ठिस्साम

अज्जत्तनी—लुङ्

प० पु०	अट्ठासि	अट्ठंसु
म० पु०	अट्ठासि	अट्ठासित्थ
उ० पु०	अट्ठासि	अट्ठासिम्ह, अट्ठासिम्हा

नम धातु (नमस्कार करना)

परस्सपद—वत्तमान काल

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	नमति	नमन्ति
म० पु०	नमसि	नमथ
उ० पु०	नमामि	नमाम

आज्ञार्थ—पंचमी

प० पु०	नमतु	नमन्तु
म० पु०	नम, नमाहि	नमथ
उ० पु०	नमामि	नमाम

भूतकाल—हीय्यत्तनी

अनमिं, नमिं	अनमिंसु, अनमुं, नमुं नमिंसु
अनमि, नमि	अनमित्थ, नमित्थ
अनमिं, नमिं	अनमिम्ह, नमिम्ह

सत्तमी

नमे, नमेय्य,	नमेय्युं
नमेय्यासि	नमेय्याथ
नमेय्यामि	नमेय्याम

भविस्सन्ती

नमिस्सति	नमिस्सन्ति
नमिस्ससि	नमिस्सथ
नमिस्सामि	नमिस्साम

कालातिपत्ति

अनमिस्स	अनमिस्संसु
अनमिस्स	अनमिस्सथ
अनमिस्सं	अनमिस्सम्ह

परोक्खभूत

ननम	ननमु
ननमे	ननमित्थ
ननम	ननमिम्ह

नी धातु (ले जाना)

वत्तमाना

	एकवचन	अनेक वचन
	नेति, नयति	नेन्ति, नयन्ति
	नेसि, नयसि	नेथ, नयथ
	नेमि, नयामि	नेम, नयाम

भविस्सन्ती

	नेस्सति	नेस्सन्ति
	नेस्ससि	नेस्सथ
	नेस्सामि	नेस्साम

हीयत्तनी

	नयि	नयिंसु
	नयि	नयित्थ
	नयिं	नयिम्हा

सत्तमी

	नेय्य,	नेय्युं
	नेय्यासि	नेय्याथ
	नेय्यामि	नेय्याम

पंचमी

	नयतु	नयन्तु
	नय, नयाहि	नयथ
	नयामि	नयाम

या धातु (जाना)

वत्तमाना

	याति	यन्ति
	यासि	याथ
	यामि	याम

भविस्सन्ती

यास्सति	यास्सन्ति
यास्ससि	यास्सथ
यास्सामि	यास्साम

हीयत्तनी

यायि	यायिसु
यायि	यायित्थ
यायिं	यायिम्हा

सत्तमी

यायेय्य	यायेय्युं
यायेय्यसि	यायेय्याथ
यायेय्यामि	यायेय्याम

पंचमी

यातु	यन्तु
याहि	याथ
यामि	याम

पच धातु (पकाना)

वत्तमाना

एक वचन	अनेक (बहु) वचन
पचति	पचन्ति
पचसि	पचथ
पचामि	पचाम

भविस्सन्ती

पचिस्सति	पचिस्सन्ति
पचिस्ससि	पचिस्सथ
पचिस्सामि	पचिस्साम

हीयत्तनी

अपची, पची, अपचि, पचि	अपचु, पचु, अपचिंसु अपचंसु, पचसु, पचिंसु
अपचो, पचो, अपचि, पचि	अपचित्थ, अपचुत्थ, पचित्थ, पचुत्थ
अपचिं, पचिं	अपचिम्ह, पचिम्ह, अपचिम्हा, पचिम्हा, अपचुम्हा, पचुम्हा

सत्तमी

पचे, पचेय्य	पचेय्युं पचुं
पचे, पचेय्यासि	पचेय्याथ
पचे, पचेय्यामि	पचेमु, पचेय्याम, पचेय्यामु

पंचमी

पचतु	पचन्तु
पच, पचाहि	पचथ
पचामि	पचाम

अज्जत्तनी

पचा, अपचा, अपच	अपचु, अपचू
अपचो	अपचित्थ, अपचुत्थ
अपच	अपचुम्हा, अपचिम्हा, अपचिम्ह

परोक्खभूत

पपच	पपचु
पपचे	पपचित्थ
पपच	पपचिम्ह

कालातिपत्ति

अपचिस्सा	अपचिस्ससु
अपचिस्से	अपचिस्सथ
अपचिस्सं	अपचिस्सम्हा

पा धातु (पीना)

वत्तमाना:

(१) 'पा' धातु को विकल्प से 'पिव' आदेश होता है और विकल्प से 'व' को 'ब' भी हो जाता है—

एकवचन	अनेक वचन
पिवति, पिबति, पाति	पिवन्ति, पिबन्ति, पान्ति

आदि बनते हैं। शेष रूप भी इसी प्रकार चलते हैं।

(२) 'दिश' धातु के स्थान पर विकल्प से 'पस्स', दिस्स और दक्ख आदेश होता है—

एकवचन	अनेक वचन
पस्सति, दिस्सति; दक्खपि	पस्सन्ति, दिस्सन्ति, दक्खन्ति

शेष रूप इसी प्रकार बनते हैं।

(३) 'गम' धातु के स्थान पर विकल्प से 'गच्छ' और 'घम्म' आदेश होते हैं—

एकवचन	अनेक वचन
गच्छति, घम्मति, गमेति	गच्छन्ति, घम्मन्ति, गमेन्ति

शेष रूप इसी प्रकार।

(४) 'वद' धातु के स्थान पर विकल्प से 'वज्ज' आदेश होता है—

एकवचन	अनेक वचन
वज्जति, वज्जेति,	वज्जन्ति, वज्जेन्ति,
वदति, वदेति	वदति, वदेन्ति

(५) 'जि' जीना—

जयति, जेति	जयन्ति, जेन्ति

शेष रूप पूर्ववत—

भूवादि गण के अन्तर्गत आने वाली शेष निम्न धातुएँ हैं। इन धातुओं का

अर्थ तथा पालि में निर्मित लट लकार के प्रथम पुरुष के रूप भी दिये जा रहे हैं शेष रूप उसी प्रकार देखे जा सकते हैं—

			एकवचन	अनेक वचन
(१) इक्ख	(ईक्ष)	देखना	इक्खति,	इक्खन्ति
(२) एघ	(एघ्)	वृद्धि	एघति,	एघन्ति
(३) कंख	(काङ्क्ष)	चाहना	कंखति,	कंखन्ति
(४) कड्ढ	(कृष)	खींचना	कड्ढति,	कड्ढन्ति
(५) कन्द	(क्रन्द्)	रोना	कन्दन्ति,	कन्दन्ति
(६) कम्प	(कम्प्)	काँपना	कम्पति,	कम्पन्ति
(७) कस	(कृष)	हल जोतना,	कसति,	कसन्ति
(८) कीळ	(क्रीड्)	खेलना,	कीडति,	कीडन्ति
(९) खण	(खन्)	खोदना,	खणति,	खणन्ति
(१०) खाद	(खाद्)	खाना,	खादति,	खादन्ति
(११) खेल	(खेल)	खेलना,	खेलति,	खेलन्ति
(१२) गाह	(गाह्)	प्रवेश करना,	गाहति	
(१३) चर	(चर्)	भ्रमण करना,	चरति	
(१४) चिक्ख	(चिक्ष)	कहना,	चिक्खति	
(१५) जम्भ	(जभ्, (जृम्भ)	जम्भाई लेना,	जम्भति	
(१६) जि-जय	(जि, जय)	जीतना,	जयति	
(१७) जीव	(जीव्)	जीना,	जीवति	
(१८) तप्प	(तृप्)	सन्तुष्ट होना	तप्पति	
(१९) तर	(तृ)	तरना, पार करना,	तरति	
(२०) सर	(त्रस्)	सताना,	तसति	
(२१) दह	(दह्)	जलाना,	दहति	
(२२) दिस	(दिश्, द्विष)	बताना, द्वेष करना	दिसति	

(२३) दूध		पीड़ा देना,	दूभति
(२४) धाव		दौड़ना,	धावति
(२५) धोव		धोना,	धोवति
(२६) निन्द	(निन्द्)	निन्दा करना,	निन्दति
(२७) नन्द		आनन्द	नन्दति
(२८) पठ	(पठ्)	पढ़ना, उच्चारण करना	पठति
(२९) पत	(पत्)	गिरना,	पतति
(३०) बुध	(बुध्, बोध्)	जानना,	बोधति
(३१) भज	(भज्)	सेवा करना,	भजति
(३२) मुद्-मोद	(मुद्-मोद्)	आनन्द,	मोदति
(३३) भण	(भण्)	कहना,	भणति
(३४) भम	(भ्रम)	घूमना,	भमति
(३५) भर	(भृ)	पालना-करना, भरण करना	भरति
(३६) भास	(भाष्)	बोलना,	भासति
(३७) भिक्ख	(भिक्ष)	भीख माँगना,	भिक्खति
(३८) यत	(यत्)	यत्न करना,	यतति
(३९) याच	(याच्)	माँगना,	याचति
(४०) रक्ख	(रक्ष)	रक्षा करना,	रक्खति
(४१) रंज	(रञ्ज्)	रंगना,	रंजति
(४२) रम	(रम्)	रमना, खेलना,	रमति
(४३) रभ	(रभ्)	प्रारम्भ करना,	रभति
(४४) रुद	(रुद्)	रोना,	रुदति, रोदति,
रुह	(रुह्)	उगना	रोहति
रुच	(रुच्)	पसन्द आना	रोचति, रुच्चति

वन्द (वन्द्)	वन्दना करना,	वन्दति
वस (वस्)	रहना	वसति
वद (वद्)	बोलना	वदति
वह (वह्)	ले जाना	वहति
हर् (हृ, हर्)	ले जाना	हरति
हंस (हस्)	हँसना	हंसति

द्वितीय गण

द्वितीय गण के अन्तर्गत निम्न प्रमुख धातुएँ हैं। जिनका अर्थ एवं वर्त्तमान काल के प्रथम पुरुष के रूप दिये जा रहे हैं—

		एक वचन	अनेक वचन
(१) अस (अस्)	होना,	अत्थि	सन्ति
(२) इ	जाना	एति	एन्ति
(३) ब्रू	बोलना	ब्रूति, ब्रवीति	ब्रुवन्ति
(४) या	जाना	याति	यान्ति
(५) वा	हवा वहना	वाति	वान्ति
(६) सुप (स्वप्)	सोना	सुपति	सुपन्ति
(७) जागर, जागृ	जागना	जागरति	जागरन्ति
(८) सिना		सिनाति	सिनन्ति
न्हा वहा (स्ना)	स्नान करना	न्हायति	न्हायन्ति
(९) रुद	रोना	रोदति	रोदन्ति
(१०) हन	मारना	हन्ति	हनन्ति

अस धातु

वतमाना

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	अत्थि	सन्ति
म० पु०	असि	अत्थ
उ० पु०	अस्मि, अम्हि	अस्म, अम्ह

आज्ञार्थ : पंचमी

अत्थु	सन्तु
आहि	अत्थ
अस्मि, अम्हि	अस्म, अम्ह

भूतकाल हीयत्तनी

आसि	आसिसु, आंसु
आसि	आसित्थ
आसिं	आसिम्ह

सत्तम

	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	अस्स, सिया	अस्सु, सियु
म० पु०	अस्स, सिया	अस्सथ
उ० पु०	अस्सं	अस्सम

अस धातु के भविष्य एवं कालातिपति में रूप नहीं होते हैं।

इ—जाना

	वत्तमाना		आज्ञार्थ	
	एकवचन	अनेकवचन	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	एति	एन्ति	एतु	एन्तु
म० पु०	एसि	एथ	ए, एहि	एथ
उ० पु०	एमि	एम	एमि	एम

भविस्सन्ती

एस्सति	एस्सन्ति
एस्ससि	एस्सथ
एस्सामि	एस्साम

कालातिपति

इ धातु के हीयत्तनी, तथा सत्तमी में रूप नहीं बनते हैं।

ब्रू—बोलना

वत्तमाना

	एकवचन	अनेकवचन
	ब्रूति, ब्रवीति	ब्रुवन्ति
	ब्रूसि, ब्रवीसि	ब्रूथ, ब्रवीथ
	ब्रूमि, ब्रवीमि	ब्रूम, ब्रवीम

पंचमी

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	ब्रूतु, ब्रवीतु	ब्रूवन्तु
म० पु०	ब्रू, ब्रूहि, ब्रवी, ब्रवीहि	ब्रूथ, ब्रवीथ
उ० पु०	ब्रूमि, ब्रवीमि	ब्रूम, ब्रवीम

हीयत्तनी

प० पु०	अब्रंवि, आह	अब्रविंसु, आँहसु, आहु
म० पु०	अब्रवि	अब्रवित्थ
उ० पु०	अब्रविं	अब्रविम्ह

परोक्खभूत

प० पु०	उवाच	उवाचु
म० पु०	उवाचे	उवाचित्थ
उ० पु०	उवाच	उवाचिम्ह

सत्तमी / भविस्सन्ती

	सत्तमी एकवचन	सत्तमी अनेकवचन	भविस्सन्ती एकवचन	भविस्सन्ती अनेक वचन
प० पु०	ब्रूवे	ब्रवेय्युं	ब्रविस्सति	ब्रविस्सन्ति
म० पु०	ब्रुवेय्यासि	ब्रुवेय्याथ	ब्राविस्ससि	ब्रविस्सथ
उ० पु०	ब्रुवेय्यामि	ब्रुवेय्याम	ब्रुविस्सामि	ब्रविस्साम

कालातिपत्ति

एकवचन	अनेकवचन
अब्रविस्स	अब्रविस्संसु
अब्रविस्स	अब्रविस्सथ
अब्रविस्सं	अब्रंविस्सम्ह

धातु या—जाना

वत्तमाना—वर्तमान			पंचमी—आज्ञार्थ	
	एकवचन	अनेकवचन	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	याति	यन्ति	यातु	यान्तु
म० पु०	यासि	याथ	या, याहि	याथ
उ० पु०	यामि	याम	यामि	याम
	हीय्यत्तनी-भूतकाल		परोक्खभूत-परोक्षभूत	
प० पु०	यायि	यायिसु, यायुं	यय	ययु
म० पु०	यायि	यायित्थ	यये	ययित्थ
उ० पु०	यायिं	यायिम्ह	यय	ययिम्ह

सत्तमी—विध्यर्थ

	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	याये, यायेय्य	यायेय्युं
म० पु०	यायेय्यासि	यायेय्याथ
उ० पु०	यायेय्यामि	यायेय्याम

भविस्सन्ती-भविष्यकाल

प० पु०	यास्सति	यास्सन्ति
म० पु०	यास्ससि	यास्सथ
उ० पु०	यास्सामि	यास्साम

कालातिपत्ति-संकेतार्थ

प० पु०	यायिस्स	यायिस्संसु
म० पु०	यायिस्स	यायिस्सथ
उ० पु०	यायिस्सं	यायिस्सम्ह

वा—हवा बहाना

वत्तमाना-वर्तमानकाल			आज्ञार्थ-पंचमी	
	एकवचन	अनेकवचन	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	वाति	वान्ति	वातु	वान्तु
म० पु०	वासि	वाथ	वा, वाहि	वाथ
उ० पु०	वामि	वामि	वाम	वाम

होय्यत्तनी भूतकाल — परोक्खभूत-परोक्षभूत

प० पु०	वायि	वायिंसु, वायुं	वव	ववु
म० पु०	वायि	वायित्थ	ववे	ववित्थ
उ० पु०	वायिं	वायिम्ह	वव	वविम्ह

सत्तमी-विध्यर्थ

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	वाये, वायेय्य	वायेय्यु
म० पु०	वायेय्यासि	वायेय्याथ
उ० पु०	वायेय्यामि	वायेय्याम

भविस्सन्ती-भविष्यकाल

प० पु०	वायिस्सति	वायिस्सन्ति
म० पु०	वायिस्ससि	वायिस्सथ
उ० पु०	वायिस्सामि	वायिस्साम

कालातिपत्ति-संकेतार्थ

प० पु०	वायिस्स	वायिस्संसु
म० पु०	वायिस्स	वायिस्सथ
उ० पु०	वायिस्सं	वायिस्सम्ह

सुप-सोना

वत्तमाना वर्तमान — पंचमी आज्ञार्थ

	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	सुपति	सुपन्ति	सुपतु	सुपन्तु
म० पु०	सुपसि	सुपथ	सुप, सुपाहि	सुपथ
उ० पु०	सुपामि	सुपाम	सुपामि	सुपाम

भविस्सन्ती

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	सुपिस्सति	सुपिस्सन्ति
म० पु०	सुपिस्ससि	सुपिस्सथ
उ० पु०	सुपिस्सामि	सुपिस्साम

शेष रूप प्रत्ययों को जोड़कर बना लें।

सिना—स्नान करना

	वर्तमान काल		पंचमी आज्ञार्थ	
	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	सिनाति	सिनन्ति	सिनातु	सिनन्तु
म० पु०	सिनासि	सिनाथ	सिना, सिनाहि,	सिनाथ
उ० पु०	सिनामि	सिनाम	सिनामि	सिनाम

भविस्सन्ती : भविष्य काल

	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	सिनिस्सति	सिनिस्सन्ति
म० पु०	सिनिस्ससि	सिनिस्सथ
उ० पु०	सिनिस्सामि	सिनिस्साम

न्हा एवं नहा धातु—स्नान करना

	वत्तमाना		वर्तमान	
	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	न्हायति	न्हायन्ति	नहायति	नहायन्ति
म० पु०	न्हायसि	न्हायथ	नहायसि	नहायथ
उ० पु०	न्हायामि	न्हायाम	नहायामि	नहायाम

शेष रूप इसी प्रकार चलेंगे।

हु—होना

	वत्तमाना-वर्तमान		पंचमी-आज्ञार्थ	
	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	होति	होन्ति	होतु	होन्तु
म० पु०	होसि	होथ	हो, होहि	होथ
उ० पु०	होमि	होम	होमि	होम

भविस्सन्ती-भविष्यकाल

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	हेस्सति हेहिस्सति होहिस्सति होहिति हेहिति	हेस्सन्ति हेहिस्सन्ति होहिस्सन्ति होहिन्त हेहिन्ति
म० पु०	हेस्ससि, हेहिस्ससि होहिस्ससि, होहिसि हेहिसि	हेस्सथ, हेहिस्सथ होहिस्सथ, होहिथ हेहिथ
उ० पु०	हेस्सामि, हेस्स, हेहिस्सामि, होहिस्सामि, होहिमि, हेहिमि	हेस्साम, हेहिस्साम, होहिस्साम, होहिम हेहिम

रुद=रोना

वत्तमाना-वर्तमान काल

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	रोदति,	रोदन्ति
म० पु०	रोदसि,	रोदथ
उ० पु०	रोदामि	रोदाम

पंचमी आज्ञार्थ

एक वचन	अनेक वचन
रोदतु	रोदन्तु
रोद, रोदाहि	रोदथ
रोदामि	रोदाम

हीय्यत्तनी-भूत काल

	एक वचन	अनेकवचन
प० पु०	अरोदि	अरोदिसु, अरोदु
म० पु०	अरोदि	अरोदित्थ
उ० पु०	अरोदिं	अरोदिम्ह

परोक्खभूत-परोक्षभूत

एक वचन	अनेक वचन
रुरोद	रुरोदु
रुरोदे	रुरोदित्थ
रुरोद	रुरोदिम्ह

सत्तमी विध्यर्थ

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	रोदे, रोदेय्य,	रोदेय्यु
म० पु०	रोदेय्यासि	रोदेय्याथ
उ० पु०	रोदेय्यामि	रोदेय्याम

भविस्सन्ती-भविष्यकाल

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	रोदिस्सति	रोदिस्सन्ति
म० पु०	रोदिस्ससि	रोदिस्सथ
उ० पु०	रोदिस्सामि	रोदिस्साम

कालातिपत्ति-संकेतार्थ

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	अरोदिस्स	अरोदिस्संसु
म० पु०	अरोदिस्स	अरोदिस्सथ
उ० पु०	अरोदिस्सं	अरोदिस्सम्ह

हन—मारना

वर्त्तमाना—वर्तमानकाल

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	हनति, हन्ति	हनन्ति
म० पु०	हनसि (हनासि)	हनथ
उ० पु०	हनामि	हनाम

विकल्प से वध आदेश होने पर—

प० पु०	वधति	वधन्ति
म० पु०	वधसि	वधथ
उ० पु०	वधामि	वधाम

वच—धातु

वचति, वत्ति	वचन्ति
वचसि	वचथ
वचामि	वचाम

दुह

दुहति, दोहति,	दुहन्ति, दोहन्ति
दुहसि, दोहसि	दुहथ, दोहथ
दुहामि, दोहामि	दुहाम, दोहाम

विद—धातु

विदति	विदन्ति
विदसि	विदथ
विदामि	विदाम

टिप्पणी—

हन, वध, वच, दुह, आदि धातुओं के शेष रूप अन्य धातुओं के समान ही शेष लकारों में चलेंगे।

दा धातु—परस्सपद

वत्तमाना—लट्

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	ददाति, देति	ददन्ति, देन्ति
म० प्र०	ददासि, देसि	ददाथ, देथ
उ० प्र०	ददामि, देमि, दम्मि	ददाम, देम, दम्म

पंचमी—लोट्

प० पु०	ददातु, देतु	ददन्तु, देन्तु
म० पु०	देहि, ददाहि दे, दद,	ददाथ, देथ
उ० पु०	ददामि, देमि	ददाम, देम,

सत्तमी—लिङ्

प० पु०	ददेय्य, ददे, दज्जा,	ददेय्युं, दज्जु
म० पु०	ददेय्यासि	ददेय्याथ
उ० पु०	ददेय्यामि, दज्जं	ददेय्याम

भविस्सन्ती—

प० पु०	ददिस्सति दस्सति	ददिस्सन्ति, दस्सन्ति
म० पु०	ददिस्ससि, ददिस्सति	ददिस्सथ, ददिस्सथ
उ० पु०	ददिस्सामि, दस्सामि	ददिस्साम, दस्साम

अज्जत्तनी—लुङ्

प० पु०	अदासि	अदासुं, अदंसु
म० पु०	अदासि	अदासित्थ
उ० पु०	अदासिं	अदासिम्हा, अदासिम्हा,

कालातिपत्ति—संकेतार्थ

प० पु०	अददिस्स	अददिस्संसु
म० पु०	अददिस्स	अददिस्सथ
उ० पु०	अददिस्सं	अददिस्सम्ह

भूतकाल—हीयत्तनी

प० पु०	अददि, अदासि अदा	अददिसु, अदयुं, अदसुं
म० पु०	अददि, अदासि	अददित्थ, अदासित्थ
उ० पु०	अदासिं, अददिं	अददिम्ह, अदासिम्ह

हा, त्यागना

वत्तमाना—वर्तमानकाल			पंचमी—आज्ञार्थ	
	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	जहाति	जहन्ति	जहातु	जहन्तु
म० पु०	जहासि	जहाथ	जह, जहाहि	जहाथ
उ० पु०	जहासि	जहाम	जहामि	जहाम

हीयत्तनी—भूतकाल			परोक्खभूत—परोक्षभूत	
	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	अजहि	अजहिसु, अजहुं	जह	जहु
म० पु०	अजहि	अजहित्थ	जहे	जहित्थ
उ० पु०	अजहिं	अजहिम्ह	जह	जहिम्ह

सत्तमी—विध्यर्थ

प० पु०	जहे, जहेय्य	जहेय्युं	जहिस्सति	जहिस्सन्ति
म० पु०	जहेय्यासि	जहेय्याथ	जहिस्ससि	जहिस्सथ
उ० पु०	जहेय्यामि	जहेय्याम	जहिस्सामि	जहिस्साम

(दाहिनी ओर: भविस्सन्ती— भविष्यकाल)

कालातिपत्ति : संकेतार्थ

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	अजहिस्स	अजहिस्संसु
म० पु०	अजहिस्स	अजहिस्सथ
उ० पु०	अजहिस्सं	अजहिस्सम्ह

'हु' यज्ञ करना

वत्तमाना : वर्तमानकाल — पंचमी : आज्ञार्थ

	एकवचन	अनेक वचन	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	जुहोति	जुहोन्ति	जुहोतु	जुहोन्तु
म० पु०	जुहोसि	जुहोथ	जुहो,	जुहोथ
			जुहोहि	
उ० पु०	जुहोमि	जुहोम	जुहोमि	जुहोम

ह्मीयत्तनी : भूतकाल — परोक्खभूत : परोक्षभूत

प० पु०	अजुहि	अजुहिसु,	जुहव	जुहवु
		अजुहुं	जुहये	जुहवित्थ
म० पु०	अजुहि	अजुहित्थ	जुहव	जुहविम्ह
उ० पु०	अजुहिं	अजुहिम्ह		

सत्तमी : विध्यर्थ

प्र० पु०	जुहे, जुहेय्य	जुहेय्युं
म० पु०	जुहेय्यासि	जुहेय्याथ
उ० पु०	जुहेय्यामि	जुहेय्याम

भविस्सन्ती : भविष्यकाल

प० पु०	जुहिस्सति	जुहिस्सन्ति
म० पु०	जुहिस्ससि	जुहिस्सथ
उ० पु०	जुहिस्सामि	जुहिस्साम

कालातिपत्ति : संकेतार्थ

प० पु०	अजुहिस्स	अजुहिस्संसु
म० पु०	अजुहिस्स	अजुहिस्सथ
उ० पु०	अजुहिस्सं	अजुहिस्सम्ह

धा-धातु

वत्तमाना : वर्तमान काल

प० पु०	दधाति, धेति	दधन्ति, धेन्ति
म० पु०	दधासि, धेसि	दधाथ, धेथ
उ० पु०	दधामि, धेमि	दधाम, धेम

शेष लकरों में रूप पूर्ववत् होंगे।

तृतीय गण (दिवादि)

चतुर्थ गण में निम्न धातुओं का समावेश होता है—

धातु	अर्थ	रूप
(१) कुप (कुप्) कुध (क्रुध्)	क्रुद्ध होना,	कुप्पति, कुप्पन्ति कुज्झति, कुज्झन्ति
(२) मुह	मूर्च्छित होना,	मुह्यति, मुह्यन्ति
(३) जन	उत्पन्न करना,	जायति, जायन्ति जायते, जायन्ते
(४) सम (शम्)	शान्त होना	सम्मति, सम्मन्ति
(५) सम (श्रम्)	थकना	
(६) नत (नृत्)	नाचना	नच्चति, नच्चन्ति
(७) नस (नश्)	नाश होना,	नस्सति, नस्सन्ति
(८) तुस (तुष्)	सन्तुष्ट होना,	तुस्सति, तुस्सन्ति
(९) सुस (शुष्)	सूखना,	सुस्सति, सुस्सन्ति
(१०) युध	युद्ध करना,	युज्झति, युज्झन्ति

धातु	अर्थ	रूप
(११) लुभ	लोभ करना,	लुब्भति, लुब्भन्ति
(१२) मद	पागल होना,	मज्जति, मज्जन्ति
(१३) सिव	सीना,	सिब्बति, सिब्बन्ति
(१४) दिव	जूआ खेलना,	दिब्बति, दिब्बन्ति
(१५) बुध	जानना,	बुज्झति, बुज्झन्ति
(१६) विध	मार डालना,	विज्झति, विज्झन्ति
(१७) मन	मानना,	मञ्ञति, मञ्ञन्ति

कुप—क्रोध करना

	वत्तमाना-वर्तमान काल		पंचमी आज्ञार्थ	
	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	कुज्झति	कुज्झन्ति	कुज्झतु	कुज्झन्तु
म० पु०	कुज्झसि	कुज्झथ	कुज्झ, कुज्झाहि	कुज्झथ
उ० पु०	कुज्झामि	कुज्झाम	कुज्झामि	कुज्झाम

	हीयत्तनी भूतकाल		परोक्खभूत=परोक्ष	
प० पु०	अकुज्झि	अकुज्झिंसु, अकुज्झिु	चुकुज्झ	चुकुज्झु
म० पु०	अकुज्झि	अकुज्झित्थ	चुकुज्झे	चुकुज्झित्थ
उ० प्र०	अकुज्झिं	अकुज्झिम्ह	चुकुज्झ	चुकुज्झिम्ह

सत्तमी विध्यर्थ—

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	कुज्झे, कुज्झेय्य	कुज्झेय्यु
म० पु०	कुज्झेय्यासि	कुज्झेय्याथ
उ० पु०	कुज्झेय्यामि	कुज्झेय्याम

भविस्सन्ती भविष्यकाल—

प० पु०	कुज्झिस्सति	कुज्झिस्सन्ति
म० पु०	कुज्झिस्ससि	कुज्जिस्सथ
उ० पु०	कुज्झिस्सामि	कुज्झिस्झिस्साम

कालातिपत्ति संकेतार्थ—

प० पु०	अकुज्झिस्स	अकुज्झिस्संसु
म० पु०	अकुज्झिस्स	अकुज्झिस्सथ
उ० पु०	अकुज्झिस्सं	अकुज्झिस्सम्ह

कुप—क्रोध करना

	वत्तमाना वर्तमान काल		पंचमी आज्ञार्थ	
	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	कुप्पति	कुप्पन्ति	कुप्पतु	कुप्पन्तु
म० पु०	कुप्पसि	कुप्पथ	कुप्प, कुप्पाहि	कुप्पथ
उ० पु०	कुप्पामि	कुप्पाम	कुप्पाम	कुप्पाम

हीय्यत्तनी : भूतकाल—

प० पु०	अकुप्ति	अकुप्पिंस, अकुप्पु
म० पु०	अकुप्पि	अकुप्पित्थ
उ० पु०	अकुप्पिं	अकुप्पिम्ह

परोक्खभूत : परोक्षभूत—

प० पु०	चुकुप्पु	चुकुप्प
म० पु०	चुकुप्पे	चुकुप्पित्थ
उ० पु०	चुकुप्प	चुकुप्पिम्ह

	सत्तमी विध्यर्थ		भविस्सन्ती भविष्यकाल	
प० पु०	कुप्पे, कुप्पेय्य	कुप्पेय्यु	कुप्पिस्सति	कुप्पिस्सन्ति
म० पु०	कुप्पेय्यासि	कुप्पेय्याथ	कुप्पिस्ससि	कुप्पिस्सथ
उ० पु०	कुप्पेय्यामि	कुप्पेय्याम	कुप्पिस्सामि	कुप्पिस्साम

कालातिपत्ति : संकेतार्थ—

प० पु०	अकुप्पिस्स	अकुप्पिस्संसु
म० पु०	अकुप्पिस्स	अकुप्पिस्सथ
उ० पु०	अकुप्पिस्सं	अकुप्पिस्सम्ह

चतुर्थ गण स्वादि

पंचम गण के अन्तर्गत निम्न धातुएँ परिगणित की जाती हैं :—

(१) प+आप (प्र+आप)	प्राप्त होना,	पप्पोति, पप्पोन्ति
(२) सु (श्रु)	सुनना	सुणोति सुणोन्ति
(३) सक (शक्)	समर्थ होना,	सक्कोति सक्कोन्ति
(४) हि	गमन करना, जाना	हिणोति हिणोन्ति हिणाति
(५) वु (वृ)	वरण करना, ढँकना,	वुणोति वुणाति
(६) खी	क्षय होना	खिणोति खिणोन्ति खिणाति खिणान्ति
(७) गि	शब्द करना	गिणोति गिणोन्ति

टिप्पणी—पंचमगण की धातुओं के अनन्तर प्रायः 'णु' विकरण होता है किन्तु किसी-किसी धातु से 'ण' तथा 'उणा' प्रत्यय भी होते हैं।' गुण होकर 'णु' के स्थान पर 'णो' हो जाता है।

प+आप

	वत्तमाना : वर्तमान काल		पंचमी आज्ञार्थ	
	एक वचन	अनेक वचन	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	पप्पोति	पप्पोन्ति	पप्पोतु	पप्पोन्तु
म० पु०	पप्पोसि	पप्पोथ	पप्पो, पप्पोहि	पप्पोथ
उ० पु०	पप्पोमि	पप्पोम	पप्पोमि	पप्पोम

अथवा

प० पु०	पापुणाति	पापुणन्ति	पापुणातु	पापुणन्तु
म० पु०	पापुणासि	पापुणाथ	पापुण, पापुणाहि	पापुणाथ
उ० पु०	पापुणामि	पापुणाम	पापुणामि	पापुणाम

हीय्यत्तनी-भूतकाल

	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	पापुणि	पापुणिसु पापुणु
म० पु०	पापुणि	पापुणित्थ
उ० पु०	पापुणिं	पापुणिम्ह

परोक्खभूत-परोक्षभूत

	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	पाप	पापु
म० पु०	पापे	पापित्थ
उ० पु०	पाप	पापिम्ह

सत्तमी-विध्यर्थ

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	पापुणे, पापुणेय्य	पापुणेय्यु
म० प्र०	पापुणेय्यासि	पापुणेय्याथ
उ० पु०	पापुणेय्यामि	पापुणेय्याम

भविस्सन्ती—भविष्यकाल

प० पु०	पापुणिस्सति	पापुणिस्सन्ति
म० पु०	पापुणिस्ससि	पापुणिस्सथ
उ० पु०	पापुणिस्सामि	पापुणिस्साम

कालातिपत्ति—संकेतार्थ

प० पु०	पापुणिस्स	पापुणिस्संसु
म० पु०	पापुणिस्स	पापुणिस्सथ
उ० पु०	पापुणिस्सं	पापुणिस्सम्ह

सु (श्रु)

वत्तमाना—वर्तमानकाल

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	सुणोति	सुणोन्ति
	सुणाति	सुणान्ति
म० पु०	सुणोसि, सुणासि	सुणोथ, सुणाथ
उ० पु०	सुणोमि, सुणामि	सुणोम, सुणाम

पंचमी—आज्ञार्थ

सुणोतु	सुणोन्तु	प० पु०	सुणातु	सुणन्तु
सुणो, सुणोहि	सुणोथ	म० पु०	सुण, सुणाहि	सुणाथ
सुणोमि	सुणोम	उ० पु०	सुणामि	सुणाम

भूतकाल—हीयत्तनी

असुणि	असुणिसु असुणु	प० पु०	अस्सोसि	अस्सोसिसु
असुणि	असुणित्थ	म० पु०	अस्सोसि	अस्सोसित्थ
असुणि	असुणिम्ह	उ० पु०	अस्सोसि	अस्सोसिम्ह

भविस्सन्ती—भविष्यकाल

सुणिस्सति	सुणिस्सन्ति	प० पु०	सोस्सति	सोस्सन्ति
सुणिस्ससि	सुणिस्सथ	म० पु०	सोस्ससि	सोस्सथ
सुणिस्सामि	सुणिस्साम	उ० पु०	सोस्सामि	सोस्साम

विध्यर्थ—सत्तमी **कालातिपत्ति**

एकवचन	अनेक वचन		एक वचन	अनेक वचन
सुणे, सुणेय्य,	सुणेय्यु	प० पु०	असुणिस्स	असुणिस्संसु
सुणेय्यासि	सुणेय्याथ	म० पु०	असुणिस्स	असुणिस्सथ
सुणेय्यामि	सुणेय्याम	उ० पु०	असुणिस्सं	असुणिस्सम्ह

परोक्खभूत-परोक्षभूत

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	सुसुव, (सुस्सव)	सुसुवु (सुस्सवु)
म० पु०	सुसुवे (सुस्सवे)	सुसुवित्थ (सुस्सवित्थ)
उ० पु०	सुसुव (सुस्सव)	सुसुविम्ह (सुस्सविम्ह)

पंचम गण (तुदादिगण)

इस गण के अन्तर्गत निम्न धातुएं हैं :—

(१) इस (इष) इच्छा करना इच्छति इच्छन्ति

(२) पुच्छ	(पृच्छ्)	पूँछना	पुच्छति	पुच्छन्ति
(३) मर	(मृ)	मरना	मरति	मरन्ति
(४) तुद	(तुद)	कष्ट देना	तुदति	तुदन्ति
(५) दिस	(दश्)	दिखलाना	दिसति	दिसन्ति
(६) लिख	(लिख्)	लिखना	लिखति	लिखन्ति
(७) खिप	(क्षिप्)	फेंकना	खिपति	खिपन्ति
(८) विस	(विष्)	प्रविष्ट होना,	विसति	विसन्ति
(९) गिल	निगलना		गिलति	गिलन्ति
(१०) नुद	प्रेरित करना		नुदति	नुदन्ति
(११) फुर	फड़कना		फुरति	फुरन्ति
(१२) फुस	छूना		फुसति	फुसन्ति
(१३) मुस	चुराना		मुसति	मुसन्ति
(१४) विद	जानना		विदति	विदन्ति
(१५) सुप	सोना		सुपति	सुपन्ति

इस—इच्छा करना

	वत्तमाना—वर्त्तमानकाल		पंचमी—आज्ञार्थ	
	एकवचन	अनेकवचन	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	इच्छति	इच्छन्ति	इच्छतु	इच्छन्तु
म० पु०	इच्छसि	इच्छथ	इच्छ, इच्छाहि	इच्छथ
उ० पु०	इच्छामि	इच्छाम	इच्छामि	इच्छाम

	हीयत्तनी—भूतकाल		परोक्खभूत—परोक्षभूत	
प० पु०	इच्छि	इच्छिसु, इच्छुं	इयेस	इयेसु
म० पु०	इच्छि	इच्छित्थ	इयेसे	इयेसित्थ
उ० पु०	इच्छि	इच्छिम्ह	इयेस	इयेसिम्ह

सत्तमी—विध्यर्थ

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	इच्छे, इच्छेय्य	इच्छेय्युं
म० पु०	इच्छेय्यासि	इच्छेय्याथ
उ० पु०	इच्छेय्यामि	इच्छेय्याम

भविस्सन्ती—भविष्यकाल

	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	इच्छिस्सति	इच्छिस्सन्ति
म० पु०	इच्छिस्ससि	इच्छिस्सथ
उ० पु०	इच्छिस्सामि	इच्छिस्साम

कालातिपत्ति—संकेतार्थ

प० पु०	इच्छिस्स	इच्छिस्संसु
म० पु०	इच्छिस्स	इच्छिस्सथ
उ० पु०	इच्छिस्सं	इच्छिस्सम्ह

षष्ठ गण (रुधादि)

इस गण के अन्तर्गत पालि में निम्न धातुएँ आती हैं :—

छिद (छिद्)	छेदना, काटना	छिन्दति	छिन्दन्ति
इन्ध	जलाना	इन्धति	इन्धन्ति
भिद्	तोड़ना	भिन्दति	भिन्दन्ति
रुध	रोकना	रुन्धति	रुन्धन्ति
भुज	खाना	भुञ्जति	भुञ्जन्ति
पिस	चूर्ण करना	पिंसति	पिंसन्ति
युज	जोड़ना	युञ्जति	युञ्जन्ति
कत	काटना	कन्तति	कन्तन्ति
गह	पकड़ना	गण्हति	गण्हन्ति
बध	बाँधना	बन्धति	बन्धन्ति
मुच	छोड़ना	मुञ्चति	मुञ्चन्ति

लिप	लेपना	लिम्पति	लिम्पन्ति
सिच	सींचना	सिञ्चति	सिञ्चन्ति
हिंस	हिंसा करना	हिंसति	हिंसन्ति

छिद धातु

वत्तमाना—वर्तमान काल

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	छिन्दति	छिन्दन्ति
म० पु०	छिन्दसि	छिन्दथ
उ० पु०	छिन्दामि	छिन्दाम

पंचमी—आज्ञार्थ

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	छिन्दतु	छिन्दतु
म० पु०	छिन्द, छिन्दाहि	छिन्दथ
उ० पु०	छिन्दामि	छिन्दाम

हीय्यत्तनी—भूतकाल

	एक वचन	अनेक वचन
प० पु०	अच्छिन्दि	अच्छिन्दिसु, अच्छिन्दु
म० पु०	अच्छिन्दि	अच्छिन्दथ
उ० पु०	अच्छिन्दि	अच्छिन्दिम्ह

परोक्खभूत—परोक्षभूत

प० पु०	चिच्छेद	चिच्छेदु
म० पु०	चिच्छेदे	चिच्छेदित्थ
उ० पु०	चिच्छेद	चिच्छेदिम्ह

सत्तमी—विध्यर्थ

प० पु०	छिन्दे, छिन्देय्य	छिन्देय्युं
म० पु०	छिन्देय्यासि	छिन्देय्याथ
उ० पु०	छिन्देय्यामि	छिन्देय्याम

भविस्सन्ती—भविष्यकाल

प० पु०	छिन्दिस्सति	छिन्दिस्सन्ति
म० पु०	छिन्दिस्ससि	छिन्दिस्सथ
उ० पु०	छिन्दिस्सामि	छिन्दिस्साम

कालातिपत्ति—संकेतार्थ

प० पु०	अच्छिन्दिस्स	अच्छिन्दिस्संसु
म० पु०	अच्छिन्दिस्स	अच्छिन्दिस्सथ
उ० पु०	अच्छिन्दिस्सं	अच्छिन्दिस्सम्ह

सप्तम गण (तनादि)

इस गण के अन्तर्गत निम्न धातुएँ आती हैं—

(१) तन	फैलाना	तनोति तनुति	तनोन्ति
(२) सक	सकना	सक्कोति	सक्कोन्ति
(३) वन	माँगना	वनोति	वनोन्ति
(४) मन	जानना	मनोति	मनोन्ति
(५) आप	पाना	अप्पोति	अप्पोन्ति
(६) कर	करना	करोति	करोन्ति

टिप्पणी—तनादि गण की धातुओं में आत्मनेपद में 'उ' प्रत्यय होता है। 'उ' गुण होने पर 'ओ' हो जाता है। किन्तु परस्मै पद में 'ओ' प्रत्यय (विकरण) का कहीं-कहीं विकल्प से 'उ' आदेश होता है।

'कर' धातु के रूप

वत्तमाना : वर्तमानकाल — आत्मनेपद

	एक वचन	अनेक वचन	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	करोति	करोन्ति	कुरुते	कुब्बन्ते
म० पु०	करोसि	करोथ	कुरुसे	कुरुव्हे
उ० पु०	करोमि	करोम	कुब्बे	कुरुम्हे

पंचमी : आज्ञार्थ

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	कुरुतु, करोतु	करोन्तु, कुब्बन्तु
म० पु०	करो, कुरु करोहि	करोथ
उ० पु०	करोमि	करोम

अत्तनोपद—आत्मनेपद

प० पु०	कुरुतं	कुब्बन्तं
म० पु०	कुरुस्सु, करस्सु	कुरुव्हो
उ० पु०	कुब्बे	कुब्बामसे

हीय्यत्तनी भूतकाल

परस्मैपद			आत्मनेपद	
	एकवचन	अनेक वचन	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	अकरि	अकरिंसु, अकरुं	अकरित्थ	अकरुं
म० पु०	अकरि	अकरित्थ	अकरसे	अकरव्हे
उ० पु०	अकरिं	अकरिम्ह	अकरिं	अकरम्हसे

अथवा

परस्मैपद			आत्मनेपद	
प० पु०	अकासि, अका	अकंसु	अकासित्थ	अकंसु
म० पु०	अकासि, अका	अकासित्थ	अकासे	अकासव्हे
			अकासिसे	अकासिव्हे
उ० पु०	अकासिं	अकासिम्ह	अकासिं	अकासम्हे
				अकासिम्हे

सत्तमी—विध्यर्थ

प० पु०	करे, करेय्य, कयिरा	करेय्युं, कयिरुं
म० पु०	करेय्यासि, कयिरासि	करेय्याथ, कयिराथ
उ० पु०	करेय्यासि, कयिरामि	करेय्याम, कयिराम

भविस्सन्ती—भविष्यकाल

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	करिस्सति	करिस्सन्ति
म० पु०	करिस्ससि	करिस्सथ
उ० पु०	करिस्सामि, करिस्सं	करिस्साम

परोक्खभूत—परोक्षभूत (Perfect)

परस्मैपद आत्मानेपद

	एकवचन	अनेक वचन	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	चकर	चकरु	चकरित्थ	चकरिरे
म० पु०	चकरे	चकरित्थ	चकरित्थो	चकरिव्हो
उ० पु०	चकर	चकरिम्ह	चकरि	चकरिम्हे

कालातिपत्ति : संकेतार्थ (Conditional)

परस्मैपद

	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	अकरिस्स	अकरिस्संसु
म० पु०	अकरिस्स	अकरिस्सथ
उ० पु०	अकरिस्सं	अकरिस्सम्ह

आत्मनेपद

प० पु०	अकरिस्सथ	अकरिस्संसु
म० पु०	अकरिस्से	अकरिस्सव्हे
उ० पु०	अकरिस्सं	अकरिस्सम्हसे

भविष्यकाल

आत्मनेपद

काहति, करिस्सते	काहन्ति, करिस्सन्ते
काहिस, करिस्से	काहथ, करिस्सम्हे
काहामि, करिन्सं	काहाम, करिस्सम्हे

तन : धातु

परस्मैपद आत्मेनपद

	एकवचन	अनेक वचन	एकवचन	अनेक वचन
प० पु०	तनोति	तनोन्ति	तनुते	तन्वन्ते
म० पु०	तनोसि	तनोथ	तनुसे	तनुव्हे
उ० पु०	तनोमि	तनोम	तन्वे	तनुम्हे

शेष धातुओं के रूप भी इसी प्रकार चलेंगे।

अष्टमगण (ज्यादिगण)

अष्टमगण में निम्न धातुओं का समाहार होता है।

धातु	अर्थ	एकवचन	अनेकवचन
(१) गह (ग्रह, गृह)	लेना	गहित	गण्हन्ति
(२) ञा (ज्ञा)	जानना	जानाति	जानन्ति
(३) अस (अश्)	खाना	अस्नाति	अस्नान्ति
(४) मि	नापना	मिनाति	मिनान्ति
(५) लु	तोड़ना	लुनाति	लुनान्ति
(६) पू	पवित्र करना	पुनाति	पुनान्ति
(७) धु	हिलाना	धुनाति	धुनान्ति
(८) चि	चयन करना	चिनाति	चिनान्ति
(९) जि	जीतना	जिनाति	जिनान्ति
(१०) की	खरीदना	किणाति	किणान्ति
(११) सि	सीना	सिनाति	सिनान्ति
(१२) थु	प्रशंसा करना	थुनाति	थुनान्ति

इस गण की धातुओं परोक्षभूत छोड़कर ति आदि प्रत्ययों के आने पर 'ना' का आगम होता है। प्रत्ययों के आने पर इस गण की धातुओं के उपरान्त 'इ' या 'उ' 'ए' या 'ओ' नहीं होता है।

गह (ग्रह, गृह)

वत्तमाना	वर्तमान काल	पंचमी	आज्ञार्थ
	एकवचन	अनेकवचन	एकवचन	अनेकवचन
प० पु०	गण्हति	गण्हन्ति	गण्हतु	गण्हन्तु
म० पु०	गण्हसि	गण्हथ	गण्ह, गण्हाहि	गण्हथ
उ० पु०	गण्हामि	गण्हाम	गण्हामि	गण्हाम

हीय्यत्तनी—भूतकाल

	एकवचन			अनेक वचन	
प० पु०	अगण्हि	अग्गाहि	अगण्हिंसु,	अगण्हु	अग्गहुं
म० पु०	अगण्हि	अग्गहि	अग्गहिसु		अग्गहित्थ
उ० पु०	अगण्हिं,	अग्गहिं	अगण्हिम्ह,		अग्गहिम्ह,

परोक्खभूत—परोक्षभूत

प० पु०	जगह,	जगहु
म० पु०	जगहे	जगहित्थ
उ० पु०	जगह	जगहिम्ह

सत्तमी : विध्यर्थ

प० पु०	गण्हे, गण्हेय्यं	गण्हेय्यु
म० पु०	गण्हेय्यासि	गण्हेय्याथ
उ० पु०	गण्हेय्यामि	गण्हेय्याम

भविस्सती : भविष्यकाल

प० पु०	गण्हिस्सति,	गहिस्सति,	गण्हिस्सन्ति,	गहिस्सन्ति
म० पु०	गण्हिस्ससि,	गहिस्ससि	गण्हिस्सथ	गहिस्सथ
उ० पु०	गण्हिस्सामि,	गहिस्सामि,	गण्हिस्साम,	गहिस्साम

कालातिपत्ति-संकेतार्थ

प० पु०	अगण्हिस्स	अगण्हिस्संसु
म० पु०	अगण्हिस्स	अगण्हिस्सथ
उ० पु०	अगण्हिस्सं	अगण्हिस्साम्ह

नवमगण—चुरादिगण

इस गण में निम्न धातुओं का अध्ययन किया जाता है। इस गण की धातु में 'ति' आदि प्रत्ययों के आने पर 'णि' का आगम होता है 'णि' का केवल 'इ' शेष रह जाता है तथा धातु के उपान्त लघु स्वर की प्रायः वृद्धि हो जाती है।

	धातु		अर्थ	रूप	
(१)	कथ	(कथ्)	कहना	कथययि	कथयन्ति
				कथेति	कथेन्ति
(२)	गण	(गण्)	गिनता	गणयति	गणयन्ति
				गणेति	गणेन्ति
(३)	पीळ	(पीड्)	पीड़ा देना	पीडयति	पीडयन्ति
				पीडेति	पीडेन्ति
(४)	चिन्त	(चिन्त्)	चिन्ता करना	चिन्तयति	चिन्तयन्ति
				चिन्तेति	चिन्तेन्ति
(५)	पूज	(पूज्)	पूजा करना	पूजयति	पूजयन्ति
				पूजेति	पूजेन्ति
(६)	वण्ण	(वर्ण्)	वर्णन करना	वण्णयति	वण्णयन्ति
				वण्णेति	वण्णेन्ति
(७)	पाल	(पाल्)	पालन करना	पालयति	पालयन्ति
				पालेति	पालेन्ति
(८)	मन्त	(मन्त्र्)	सलाह करना	मन्त्रयति	मन्त्रयन्ति
				मन्त्रेति	मन्त्रेन्ति
(९)	कप्प		तैयार करना	कप्पयति	कप्पयन्ति
				कप्पेति	कप्पेन्ति
(१०)	अज्ज	(अर्ज्)	कमाना	अज्जयति	अज्जयन्ति
				अज्जेति	अज्जेन्ति
(११)	ईर		हिलना	ईरयति	ईरयन्ति
				ईरेति	ईरेन्ति
(१२)	कण्ण		सुनना	कण्णयति	कण्णयन्ति
				कण्णेति	कण्णेन्ति
(१३)	कित्त		कीर्तन करना	कित्तयति	कित्तयन्ति
				कित्तेति	कित्तेन्ति

धातु	अर्थ	रूप
(१४) गन्थ्	गूथना	गन्थयति, गन्थयन्ति गन्थेति, गन्थेन्ति
(१५) चुण्ण	चूर-चूर करना	चुण्णयति, चुण्णयन्ति, चुण्णेति, चुण्णेन्ति
(१६) चुर (चुर्)	चुराना	चोरयति, चोरयन्ति चोरेति, चोरेन्ति
(१७) छड्ड (छर्द)	फेंकना	छड्डयति, छड्डयन्ति, छड्डेति, छड्डेन्ति
(१८) झप	जलाना	झापयति, झापयन्ति, झापेति, झापेन्ति
(१९) पिण्ड	पिण्ड बनाना	पिण्डयति, पिण्डयन्ति, पिण्डेति, पिण्डेन्ति
(२०) पुस	पोसना	पोसयति, पोसयन्ति, पोसेति, पोसेन्ति
(२१) तक्क (तर्क)	तर्क करना	तक्कयति, तक्कयन्ति, तक्केति, तक्केन्ति
(२२) तीर (तीर्ण)	पूरा करना	तीरयति, तीरयन्ति, तीरेति, तीरेन्ति
(२३) दिस (दिश्)	उपदेश देना	देसयति, दसयन्ति, देसेति, देसेन्ति
(२४) वन्द (वन्द्)	वन्दना करना	वन्दयति, वन्दयन्ति, वन्देति, वन्देन्ति

कथ धातु

वत्तमाना—वर्त्तमानकाल

एकवचन	अनेक वचन		एकवचन	अनेक वचन
कथयति	कथयन्ति	प० पु०	कथेति	कथेन्ति
कथयसि	कथयथ	म० पु०	कथेसि	कथेथ
कथयामि	कथयाम	उ० पु०	कथेमि	कथेम

पंचमी—आज्ञार्थ

एकवचन	अनेक वचन		एकवचन	अनेक वचन
कथयतु	कथयन्तु	प० पु०	कथेतु	कथेन्तु
कथय, कथयाहि	कथयथ	म० पु०	कथे, कथेहि	कथेथ
कथयामि	कथयाम	उ० पु०	कथेमि	कथेम

हीय्यत्तनी—भूतकाल

एकवचन	अनेक वचन		एकवचन	अनेक वचन
अकथयि	अकथयिसु अकथयुं	प० पु०	कथेसि	कथेसुं
अकथयि	अकथयित्थ	म० पु०	कथेसि	कथेसित्थ
अकथयिं	अकथयिम्ह	उ० पु०	कथेसिं	कथेसिम्ह

सत्तमी—विध्यर्थ

एकवचन	अनेक वचन		एकवचन	अनेक वचन
कथेये, कथयेय्य	कथयेय्युं	प० पु०	कथे, कथेय्य	कथेय्युं
कथयेय्यासि	कथयेय्याथ	म० पु०	कथेय्यासि	कथेय्याथ
कथयेय्यामि	कथयेय्याम	उ० पु०	कथेय्यामि	कथेय्याम

भविस्सन्ती—भविष्यकाल

एकवचन	अनेक वचन		एकवचन	अनेक वचन
कथयिस्सति	कथयिस्सन्ति	प० पु०	कथेस्सति	कथेस्सन्ति
कथयिस्ससि	कथयिस्सथ	म० पु०	कथेस्ससि	कथेस्सथ
कथयिस्सामि	कथयिस्साम	उ० पु०	कथेस्सामि	कथेस्साम

कालातिपत्ति—संकेतार्थ

एकवचन	अनेक वचन		एकवचन	अनेक वचन
अकथयिस्स	अकथयिस्संसु	प० पु०	अकथेस्स	अकथेस्संसु
अकथयिस्स	अकथयिस्सथ	म० पु०	अकथेस्स	अकथेस्सथ
अकथयिस्सं	अकथयिस्सम्ह	उ० पु०	अकथेस्सं	अकथेस्सम्ह

णिजन्त प्रक्रिया

धातु रूप की दृष्टि से पालि भाषा संस्कृतोपजीवि है। प्रेरणार्थक धातुओं के लिए संस्कृत में णिच् प्रत्यय होता है किन्तु पालि में 'अय' और 'आपय' प्रत्यय मिलते हैं। संस्कृत में 'णिच्' के स्थान पर 'अय' भी होता है, वही 'अय' पालि में गृहीत है। संस्कृत में कुछ धातुओं के साथ विकल्प से 'पुक्' का आगम होता है कि जिसकी अन्तिम परिणति—'अपय' या 'आपय' के रूप में होती है किन्तु पालि में सर्वदा विकल्प से 'आपय' प्रत्यय का विधान है।

एक विशेष तथ्य ध्यान देने का यह भी है कि 'अय' के स्थान पर कभी-कभी 'ए', 'आपय' के स्थान पर 'आपे' प्रत्यय हो जाते हैं अतः दो प्रकार के रूप होते हैं। जैसे—

धातु	प्रेरणार्थक रूप	अर्थ
कर	—कारेति, कारयति, कारापेति, कारापयति,	कराता है।
पच	—पाचेति, पाचयति, पाचापेति, पाचापयतिः,	पकवाता है।
कन्द	—कन्देति, कन्दयति, कन्दापेति, कन्दापयति,	रुलाता है।
कम्प	—कम्पेति, कम्पयति, कम्पापेति, कम्पापयति,	कँपाता है।
चज	—चाजेति, चाजयति, चाजापेति, चाजापयति,	छोड़वाता है।
क्रुध	—कोधेति, कोधयति, कोधापेति, कोधापयति,	क्रोध करवाता है।
भुज	—भोजेति, भोजयति, भोजापेति, भोजापयति,	खिलवाता है।
लिख	—लेखेति, लेखयति, लेखापेति, लेखापयति,	लिखवाता है।
खिप	—खेपेति, खेपयति, खेपापेति, खेपापयति,	फेंकवाता है।

नोट—जब कोई कर्त्ता किसी अन्य व्यक्ति से कार्य करवाता है तो वह प्रेरणार्थक क्रिया कहलाती है। ऐसे स्थलों पर उपर्युक्त धातु-रूपों का प्रयोग होता है।

सन्नत प्रक्रिया

किसी कार्य की इच्छा होने पर धातु के बाद इच्छार्थक सन् प्रत्यय लगाया जाता है, ऐसी धातुओं की गणना सन्नत प्रक्रिया में होती है। इच्छा कर्त्ता की ही होनी चाहिए। तभी सन् प्रत्यय लगता है अन्यथा नहीं।

पालि की सन्नन्त प्रक्रिया का रूप विधान संस्कृत के समान ही है। जैसे—

(१) भुज धातु — बुभुक्खति
(२) घस ,, — जिघच्छति
(३) पा ,, — पिवासति
(४) जि ,, — जिगिंसति
(५) श्रु ,, — सुस्सूसति
(६) हृ ,, — जिहीर्षति

सन्नन्त धातुओं से परे णिच् प्रत्यय होने पर णिजन्त के समान 'यय्' और 'आपय्' प्रत्यय होते हैं।

यङन्त एवं यङ लुङन्त

किसी क्रिया की आवृत्ति अथवा अतिशय को सूचित करने के लिए संस्कृत में यङ् तथा यङ्लुङन्त प्रत्ययों का विधान है। संस्कृत के समान ही पालि में भी यह रूप मिलते हैं किन्तु यह पालि के स्वयं अपने स्वतन्त्र न होकर संस्कृत के ही परिवर्तित रूप हैं।

ज्वल धातु — जाज्वल्यति, जाज्वल्यते
गम ,, — दादल्लति
कम ,, — जङ्गमति, चङ्कमति आदि।

नामधातु

नाम (संज्ञा) से तद्वत आचरण करने से जो क्रियायें बनती हैं उन्हें 'नामधातु' कहा जाता है। इस प्रक्रिया के लिए भी पालिभाषा संस्कृत की ऋणी है। उदाहरण के लिए—

कर्त्ता के उपमान होने पर—

पब्बत (पर्वत) के समान आचरण करना = पब्बतायति
समुद्द ,, ,, ,, = समुद्दायति
धूम ,, ,, ,, = धूमायति

(अ) उपमान कर्म के होने पर—

पुत्तमिव आचरति सिस्स पुत्तीयति
छत्तमिव " छत्तीयति

(ब) वस्तु प्राप्ति के लिए इच्छा होने पर इच्छार्थ धातु के कर्मभूत शब्द के उत्तर ईय—

(१) अत्तनो पत्तं (पात्रं) इच्छति पत्तीयति
(२) अत्तनो वत्थं (वस्त्रं) इच्छति वत्थीयति
(३) " चीवरं " चीवरीयति
(४) " पुत्तं " पुत्तीयति
(५) " परं " परीयति



संख्या वाचक शब्द

पालि में संख्याओं के नाम—

(१) एक
(२) द्वि
(३) ति
(४) चतु
(५) पञ्च
(६) छ
(७) सत्त
(८) अट्ठ
(९) नव
(१०) दस
(११) एकादस
(१२) द्वादस, बारस
(१३) तेरस, तेरस
(१४) चुद्दस, चतुद्दस

(१५) पण्णारस, पञ्चदस
(१६) सोलस
(१७) सत्तरस, सत्तदस
(१८) अट्ठारस, अट्ठादस
(१९) एकूनवीसति
(२०) वीसति
(२१) एकवीसति
(२२) द्वेवीसति, द्वावीसति
(२३) तेवीसति
(२४) चतुवीसति
(२५) पञ्चवीसति
(२६) छब्बीसति
(२७) सत्तवीसति
(२८) अट्ठवीसति
(२९) एकूनतिंसति
(३०) तिंसति
(३१) एकतिंसति
(३२) द्वत्तिंसति, बत्तिंसति
(३३) तेत्तिंसति
(३४) चतुतिंसति
(३५) पञ्चतिंसति
(३६) छत्तिंसति
(३७) सत्ततिंसति
(३८) अट्ठतिंसति
(३९) एकूनचत्तालीसति
(४०) चत्तालीसति
(४१) एकचत्तालीसति
(४२) द्वेचत्तालीसति, द्विचत्तालीसति
(४३) तेचत्तालीसति
(४४) चतुचत्तालीसति
(४५) पञ्चचत्तालीसति
(४६) छचत्तालीसति
(४७) सत्तचत्तालीसति
(४८) अट्ठचत्तालीसति
(४९) एकूनपञ्चासति
(५०) पञ्चासति, पण्णासति
(५१) एक पञ्ञासति
(५२) द्वेपञ्ञासति, द्वेपण्णासति }
(५३) द्विपञ्ञासति, दिपण्णासति }
(५४) तेपञ्ञासति
चतुपञ्ञासति

शेष इसी प्रकार

५९ एकूनसट्ठि
६० सट्ठि
६१ एकसट्ठि
६२ द्विसट्ठि, द्वासट्ठि, द्वेसट्ठि
६९ एकूनसत्तति
७० सत्तति
७२ द्वेसत्तति, द्विसत्तति, द्वासत्तति
७९ एकूनासीति
८० असीति
८१ एकासीति
८२ द्वेअसीति, द्वियासीति, द्वासीति
८९ चफूननवुति
९० नवुति

९२ द्वे नवुति द्विनवुति, द्वानवुति
९९ एकूनसतं
१०० सतं
१००० सहस्सं
१०००० नहुतं
१००००० सतसहस्सं
१००००००० कोटि
१०००००००००००००० पकोटि
एक पर २१ शून्य कोटिप्पकोटि
एक पर ३५ शून्य निन्नहु
एक पर ४२ शून्य अक्खोहणी
एक पर ४९ शून्य बिन्दु
एक पर ५६ शून्य अब्बुदं
एक पर ६३ शून्य निरब्बुदं
एक पर ७० शून्य अहहं
एक पर ७७ शून्य अब्बं
एक पर ८८ शून्य अटटै
एक पर ९१ शून्य सोगन्धिकं
एक पर ९८ शून्य उप्पलं
एक पर १०५ शून्य कुमुदं
एक पर ११२ शून्य पुण्डरीकं
एक पर ११९ शून्य पदुमं
एक पर १२६ शून्य कथानं
एक पर १३३ शून्य महाकथानं
एक पर १४० शून्य असंखेय्यं

विशेष (१) संख्यावाचक शब्द प्रायः विशेषण की तरह प्रयोग में आते हैं अतः उनमें वही लिंग विभक्ति एवं वचन होते हैं जो उनके विशेष्य में।

(२) संख्या के अर्थ में 'एक' एकवचन है किन्तु 'एक' शब्द की गणना सर्वनाम में होती है।

(३) एक शब्द के तीनों 'लिंगों' में रूप चलते हैं।

पुल्लिग

एकवचन	अनेक वचन
१. एको	एके
२. एकं	एकं
३. एकेन	एकेहि, एकेभि

४. एकस्स	एकेसं, एकेसानं
५. एकम्हा, एकस्मा	एकेहि, एकेभि
६. एकस्स	एकेसं, एकेसानं
७. एकम्हि, एकस्मि,	एकेसु

नपुंसकल्लिग

१. एकं	एके, एकानि
२. एकं	एके, एकानि

शेष पुल्लिगवत

स्त्रीलिंग

१. एक	एका, एकायो
२. एकं	एका, एकायो
३. एकाय	एकाहि, एकाभि
४. एकस्सा, एकाय	एकासं, एकासानं
५. एकाय	एकाहि, एकाभि
६. एकस्सा, एकाय	एकासं, एकासानं
७. एकस्सं, एकायं	एकासु

द्वि

द्वि बहुवचन और इसके रूप तीनों लिंगों में समान—

	बहुवचन
१.	द्वे, दुवे
२.	द्वे, दुवे
३.	द्वीहि, द्वीभि
४.	द्विन्नं, दुविन्नं
५.	द्वीहि, द्वीभि
६.	द्विन्नं, द्विविन्नं
७.	द्वीसु

'ति'

ति (=तीन) शब्द बहुवचनान्त है, किन्तु इसके रूप तीनों लिंगों में भिन्न होते हैं—

	पुंल्लिंग	नपुंसकलिंग	स्त्रीलिंग
१.	तयो	तीनि	तिस्सो
२.	तयो	तीणि	तिस्सो
३.	तीहि, तीभि	शेषरूप पुंलिंग के समान	तीहि, तीभि
४.	तिण्णं, तिण्णन्नं		तिस्सन्नं
५.	तीहि, तीभि		तीहि, तीभि
६.	तिण्णं, तिण्णन्नं		तिस्सन्नं
७.	तीसु		तीसु

चतु

	पुंल्लिंग	नपुंसकलिंग	स्त्रीलिंग
१.	चत्तारो, चतुरो,	चत्तारि	चतस्सो
२.	चत्तारो, चतुरो	चत्तारि	चतुस्सो
३.	चतूहि, चतूभि	शेषरूप पुंलिंग के समान	चतूहि, चतूभि
४.	चतुन्नं		चतस्सन्नं
५.	चतूहि, चतूभि		चतूहि, चतूभि
६.	चतुन्नं		चतस्सन्नं
७.	चतुसु		चतुसु

पञ्च

पञ्च से अट्ठारस (१८) तक के शब्द बहुवचनान्त होते हैं और इनके रूप तीनों लिंगों में समान होते हैं।

१. पञ्च
२. पञ्च
३. पञ्चहि, पञ्चभि
४. पञ्चन्नं
५. पञ्चहि, पञ्चभि
६. पञ्चन्नं
७. पञ्चसु

} अट्ठारस तक सभी रूप इसी प्रकार होंगे।

एकूनवसति

एकूनवीसति से लेकर अट्ठनवुति (९८) तक सभी शब्द स्त्रीलिंग एक वचन होते हैं।

१. एकूनवीसति
२. एकूनवीसति
३. एकूनवीसतिया
४. एकूनवीसतिया
५. एकूनवीसतिया
६. एकूनवीसतिया
७. एकूनवीसतियं

(१) एकूनवीसति (१९) से अट्ठनवुति तक आकारान्त शब्दों के रूप 'लता' शब्द के समान तथा इकारान्त शब्दों के रूप 'रत्ति' शब्द के समान होंगे।

(२) एकूनसतं (९९) से लेकर सतसहस्सं (=लाख) तक, सभी शब्द नपुंसकलिंग एकवचन होते हैं।

(३) कोटि, पकोटि, कोटिप्पकोटि, अक्खोहिणी—शब्द स्त्रीलिंग एकवचन होते हैं।

वाच्य प्रकरण

पालि में तीन वाच्य होते हैं :—

(i) कर्तृवाच्य

(ii) कर्मवाच्य

(iii) भाववाच्य

कर्तृवाच्य—

जिस वाच्य में क्रिया कर्त्ता के अनुरूप हो, तथा उसी का प्राधान्य हो, वह 'कर्तृवाच्य' कहा जाता है। कर्तृवाच्य में कर्त्ता में पठमा, तथा कर्म में दुतिया विभक्ति होती है। क्रिया के पुरुष और वचन कर्त्ता के पुरुष तथा वचन के अनुरूप होते हैं। उदाहरण के लिए :—

सकर्मक :—त्वं भत्तं भुञ्जसि। मनुस्सा फलानि खादन्ति।

यहाँ उदाहरणों की स्थिति स्पष्ट है।

अकर्मक : दारका हसन्ति। त्वं हससि।

'दारका' कर्त्ता है अतः उसमें पठमा विभक्ति है, 'हसन्ति' क्रिया भी पठम पुरुष के अनेक वचन की है क्योंकि कर्त्ता भी अनेक वचन का है।

भाववाच्य :—

जिस वाक्य में क्रिया अकर्मक हो तथा कर्त्ता का प्राधान्य न हो वह वाक्य **'भाववाच्य'** कहा जाता है।

भाववाच्य में कर्त्ता में ततिया विभक्ति होती है। क्रिया सदैव पठम एक वचन की होती है। जैसे—

बालकेन अत्र भूयते=लड़का यहाँ है। त्वया अत्र भूयते=तुम यहाँ हो। त्वया अत्र भूयि=तुम यहाँ उपस्थित हो।

कर्मवाच्य—

जिस वाक्य में क्रिया कर्मानुरूप हो और कर्म का प्राधान्य हो, वह वाक्य कर्म वाच्य होता है। कर्मवाच्य में कर्त्ता से ततिया विभक्ति तथा कर्म में पठमा

विभक्ति का प्रयोग होता है। क्रिया के पुरुष और वचन कर्म के पुरुष तथा वचन के अनुसार होते हैं। इसमें भी भाववाच्य के समान धातु के बाद क्य=य का प्रयोग होता है। जैसे—

(i) राञ्ञा धनं दीयते। राजा के द्वारा धन दिया जाता है।

(ii) पितरा मयं पतिनो दीयाम=पिता के द्वारा हम पति को दी जा रही हैं।

अव्यय प्रकरण

अव्ययः जो परिवर्तित न हो। अव्यय सदैव एक रूप रहते हैं। लिङ्ग, वचन तथा विभक्ति के कारण इनमें कोई अन्तर नहीं आता है। मोग्गलायन के अनुसार अव्यय असंख्य हैं 'असंख्योहिसब्बासं'।

सामान्यतः अव्यय पांच प्रकार के होते हैं—(१) उपसर्ग, (२) निमित्तार्थक, (३) पूर्वकालिक, (४) तद्धितान्त, और (५) रूढ़ि।

उपसर्ग

उपसर्ग बीस हैं—प्र, परा, नि, नी, उ, दु, सं, वि, अव, अनु, परि, अभि, अधि, पति, सु, आ, अति, अपि अप, उप। उपसर्ग के जुड़ने पर क्रिया के अर्थ में कभी-कभी बहुत बड़ा अन्तर आ जाता है।

जैसे—हरति=हरण करता है पहरति=प्रहार करता है।

'गच्छति'=जाता है—आगच्छति=आता है।

निमित्तार्थक अव्यय

'यह करने के लिए' इस अर्थ में निमित्तार्थक अव्ययों का प्रयोग होता है। जैसे भोत्तुं 'भोजन के लिए'। 'सोतुं' सुनने के लिए। वतुं =बोलने के लिए।

पूर्वकालिक

'इस कार्य को करके' इस अर्थ में पूर्वकालिक अव्यय प्रयुक्त होते हैं, जैसे—

कत्वा=करके
सुत्वा=सुनकर
पस्सित्वा=देखकर

तद्धितान्त

नाम तथा सर्वनाम से परे तद्धित प्रत्यय लगकर अव्यय बन जाता है। जैसे—

सब्ब=सब्बत्थ,
य=यहि
किं=कदा
सतं=सतसो आदि।

रूढ़ि

रूढ़ि अव्यय तीन प्रकार के होते हैं—

(१) क्रिया विशेषण,
(२) संयोजकादि,
(३) विस्मयादि बोधक,

क्रियाविशेषण—कभी-कभी क्रिया विशेषण द्वितीया या तृतीया विभक्ति के एकवचन में रहता है। जैसे—

वेगेन गच्छति
वेगं गच्छति
अज्ज, अत्थ, अत्र, अद्धा, अतीव,

अग्गतो, तथा, तदा, न, धुवं, अलं, कुत्थ, इत्थ, सह, सु, सम्भा, हिय्यो, स्वांक, उपरि, हेट्ठा, सदा आदि सैकड़ों अव्यय क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

(२) संयोजकादि अव्यय

उद = किन्नु बुद्धं सरणं गच्छसि, उद अञ्ञं सरणं ?
उदाह, किन्नु बुद्धं सरणं गच्छसि, उदाहु अञ्ञं सरणं ?
किमु जीवितक्खये पत्तेकिमुत खीरभोजनं ?
किमुत जीवितक्खये पत्ते किमुत खीर भोजनं।
च समणो बुद्धं वन्दति च सीलं रक्खति।
चे बुद्धो भवेय्य चे मारे जेस्सति,
यदि यदि बुद्धो भवेय्य मारं जेस्सति,
सचे = सचे बुद्धो भवेय्य, मारे जेस्सति,

विस्मयादि बोधक अव्यय

अङ्ग=हे, अत्थु=ऐसाहो, एव=हाँ, अद्धा=
निश्चय से। अम्भो=हे। अरे। अहो=आश्चर्य।
धि=धिकार,
भो=हे। रे। वे=निश्चय से
साधु=स्वीकार या प्रशंसा के अर्थ में। हं हो=हे, हन्द=प्रेरणा द्योतक, हा=शोक हे=हे आदि विस्मय बोधक अव्यय हैं।



तद्धित प्रत्यय

नाम (संज्ञा) से प्रत्यय जोड़कर जो नये शब्द बनते हैं, उन्हें 'तद्धित' प्रत्यय कहते हैं। उपसर्ग सदैव पहले लगते हैं जबकि प्रत्यय सदा पीछे।

वाला अथ वाले तद्धित प्रत्यय

नाम	प्रत्यय	तद्धित	अर्थ
सील	वन्तु	सीलवन्तु	शीलवाला
गति	मन्तु	गतिमन्तु	गतिवाला
गन्ध	ई	गन्धी	गन्धवाला
पुत्त	इम	पुत्तिमो	पुत्रवाला
सेना	इय	सेनियो	सेनावाला

वाला अर्थ वाले अन्य प्रत्यय—

इक, स्सी, र, भ, अ, ण, आलु, इल, व, वी; आमी, उवामी, ण; न, सो, म इय ।

भाववाची—तद्धित प्रत्यय

निम्न भाववाची तद्धित प्रत्यय हैं :—

त्त, ता, त्तन, स्स, णेय्य, ण, इय, णिय, व्य, त्तण, इम—

प्रयोग—

नील	त्त	नीलत्तं	नीलत्व
बुद्ध	त्त	बुद्धत्तं	बुद्धत्व
मनुस्स	ता	मनुस्सता	मनुष्यता
अणु	इम	अणिमा	अणुत्व
महन्त	इम	महिमा	महत्व

देवता तथा पूर्णता के अर्थ में

ण प्रत्यय होता : जैसे—

नाम	प्रत्यय	तद्धित	अर्थ
सुगत	ण	सोगता	बौद्ध
वरुण	ण	वारुणी	वरुण का उपासक

विभिन्न अर्थों में निम्न प्रत्ययों का प्रयोग होता है—

उदुम्बर	ण	ओदुम्बरो	गूलरवाला स्थान
वीणा	णिक	वेणिको	बीणा बजाने वाला
गन्ध	क	गन्धिको	गन्ध बेचने वाला
एक	आकी	एकाकी	अकेला
पाप	रतर	पापतरो	महापापी
पाप	रतम	पापतमो	अत्यन्त पापी

तद्धितान्त प्रत्यय

संज्ञा और सर्वनाम शब्दों से परे, तद्धित प्रत्ययों के लगने से वे शब्द अव्यय बन जाते हैं। इस प्रकार के चौदह प्रत्यय निम्न हैं—

(१) तो (२) त्र (३) त्थ, (४) धि (५) हि, (६) हं (७) दा (८) था, (९) धा, (१०) ज्झं, (११) एवा, (१२) क्खत्तुं (१३) सो और (१४) ची ।

तो—पंचमी विभक्ति से परे इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे—

चोरतो	भायति	चोर से डरता है।
गामतो	गच्छति	गाँ से जाता है।
इतो	आगच्छति	यहाँ से आता है।
अतो	"	यहाँ से आता है।
ततो	"	वहाँ से आता है।

अभितो, परितो, पच्छतो हेट्ठतों आदि ऐसे ही तद्धितान्त हैं।

त्र—त्थ—

	सब्बत्र,	सब्बत्थ	सर्वत्र
	यत्र	यत्थ	जहाँ
	तत्र	तत्थ	वहाँ
धि	सब्बधि		सब जगह
हिं	यहिं		जहाँ
हं	तहं तहिं		वहाँ
	कुहिं, कुहं		कहाँ
दा	सब्बदा		सर्वदा
	एकदा		एक समय
	अञ्ञदा		दूसरी जगह
	यदा		जब
	तदा		तब
था	सब्बथा		सर्वथा
	यथा		जैसे
	तथा		वैसे
धा	द्विधा		दो भागों में
	एकधा		एक भाग में
	बहुधा		अनेक भाग में

धा	द्वेधा-द्विधा	दो प्रकार से
	तेधा तिधा	तीन प्रकार से
ज्झं	एकज्झं	एक प्रकार से
क्खत्तुं	द्विक्खत्तुं	दो बार
	तिक्खत्तुं	तीन बार
	कतिक्खत्तुं	कितनी बार
सो	खण्डसो	खण्ड-खण्ड करके
	सब्बसो	सब प्रकार से
	पुथुसो	विस्तार से
धी	धवली करोति	उज्ज्वल करता है।

पालि में निम्न शब्द निपात हैं—

कत्थ, कुत्र, क्व, कहाँ, अत्त, एत्थ यहाँ

इध, इह	यहाँ
कदा-कुदा	किस समय
सदा	सदैव
अधुना इदानि	इस समय
अज्ज	आज
कथं	कैसे
इत्थ	इस प्रकार
एतरहि	इस समय

कृदन्त प्रत्यय

धातु से प्रत्यय लगने पर जो नवीन शब्द बनते हैं, उन्हें 'कृदन्त' कहते हैं। ये शब्द कर्ता के विशेषण के समान व्यवहार में आते हैं। अतः वे कर्त्ता के लिङ्ग, वचन और विभक्ति को भी प्राप्त करते हैं।

(१) 'भूतकाल' के अर्थ में, धातु से परे 'क्तवन्तु' और 'क्तावी' प्रत्यय लगते हैं। जैसे—

धातु	प्रत्यय	शब्द	अर्थ
वि+जि	क्तवन्तु	विजितवन्तु	जीता हुआ, विजय पाया हुआ
वि+जि	क्तावी	विजितावी	जिसने विजय पा ली है।

(२) 'भूतकाल के अर्थ में कर्म और भाववाच्य में धातु से परे क्त प्रत्यय होता है।'

धातु	प्रत्यय	शब्द	अर्थ
कर	क्त	कतं	किया गया
वि+जि	क्त	विजितं	जीता गया
हस	क्त	हसितं	हँसा गया
रुद	क्त	रोदितं	रोया गया

(३) 'क्तवत्तु' तथा 'क्त' प्रत्ययों के लगने पर कुछ विशेष धातु के रूप इस प्रकार होते हैं:—

धातु	शब्द
गम	गतवा, गतं
मन	मतवा, मतं
हन	हतवा, हतं
गा	गीतवा, गीतं
तर	तिण्णवा, तिण्णं आदि

तव्य, अनीय, घ्यण

"भाव वाच्य और कर्म वाच्य में धातु से परे प्रायः तब्ब, अनीय और घ्यण प्रत्यय होते हैं', जैसे—

तब्बं		अनीय
मया हसितब्बं	मया हसनीयं	मेरे द्वारा हँसा जाना चाहिए
,, कातब्बो	,, करणीयो	,, किया जावा चाहिए।

सोतब्बानि—सवनीयानि वचनानि, वचन सुनने चाहिए।

चेतब्बं	चुनना चाहिए
चयनीयं	,, ,,
हन्तब्बं	मारना चाहिए
हननीयं	हनन करना चाहिए।

'घ्यण' प्रत्यय का 'य' शेष रहता है—

न वाक्यं मया इदं	यह मुझे नहीं कहना चाहिए।
दानं देय्यं	दान देना चाहिए।
अच्छानि जलानि पेय्यानि	स्वच्छ जल पीने चाहिए।
गुय्हं	छिपाना चाहिये।

'इस कार्य को करने वाला' इस अर्थ में धातु से परे 'त्तु' और 'णक' प्रत्यय होते हैं; 'त्तु' का 'तु' और 'णक' का 'अक' शेष रहता है, जैसे—

दातु	दायको	देने वाला
वत्तु	वाचको	कहने वाला
नेत्तु	नायको	नायक
जेतु		जीतने वाला
छेत्तु	छेदको	छेदने वाला

इस कार्य के निमित्त—इस अर्थ में धातु से परे 'तु' 'तावे' और तवे 'प्रत्यय होते हैं।' जैसे—

कातुं गच्छति = करने के लिए जाता है।
कत्तावे गच्छति = ,, ,,
कातवे गच्छति = ,, ,,

'जिन दो धातुओं का एक ही कर्त्ता होता है उनमें पहली क्रिया के धातु से परे विकल्प से 'तून', 'त्वान' और 'त्वा' प्रत्यय होते हैं।' जैसे :—

सो सोतून याति = वह सुनकर जा रहा है।
सो सुत्वान याति = ,, ,, ,,
सो सुत्वा याति = ,, ,, ,,

'धातु के साथ समास होने पर उसमें परे 'त्वा' प्रत्यय का विकल्प से 'य्य' आदेश हो जाता है। 'य्य' का 'य' रह जाता है। जैसे—

य्य त्वा

अभिभूय अभिभवित्वा = तिरस्कार करके

"धातु के साथ समास होने पर, उससे परे 'त्वा' प्रत्यय का विकल्प से 'तु' तथा 'यान' आदेश होता है।" जैसे—

अभिहट्ठुं, अभिहरित्वा = लाकर

अनुमोदियान, अनुमोदित्वा = अनुमोदन करके

समास होने पर 'हन' धातु से परे 'त्वा' का विकल्प से 'रच्च' आदेश होता है। 'रच्च' का 'अच्च' शेष रह जाता है। जैसे—

हन = मारना
आहच्च = आघात करके
आहनित्वा = ,, ,,

"दिस (देखना) धातु से परे 'त्वा' प्रत्यय आने पर, उसका विकल्प से 'दिस्वान' होता है।" जैसे

दिस्वान = देखकर
दिस्वा = ,,
पस्सित्वा = ,,

निम्न कृदन्त निपात है—

थावर = स्थित रहने वाला
इत्तर = जाने वाला
भंगुर = टूटने वाला
भिदुर = नष्ट हो जाने वाला
भासुर, भस्सर = चमकने वाला
धस्तो = ध्वस्त होने वाला
त्रस्तो = भयभीत

स्त्री प्रत्यय

पालिभाषा का स्त्री-प्रत्यय प्रकरण पूर्णतः संस्कृतानुगामी है किन्तु इसकी स्वयं अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ भी हैं।

पुल्लिग शब्दों को स्त्री-लिंग बनाने के लिए शब्द से परे निम्न प्रत्यय होते हैं—

(१) आ, (२) ङी, (३) इनी, (४) नी, (५) आनी, (६) ऊ और (७) ति

१—आ

'इत्थियमत्वा' (३.२६)—पुल्लिग से स्त्रीप्रत्ययान्त बनाने के लिए अकारान्त शब्द से परे 'आ' प्रत्यय आता है।—जैसे

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
देवदत्तो	देवदत्ता
सुसीलो	सुसीला
धनिको	धनिका
कोकिलो	कोकिला
बालको	बालिका[1]
सबलो	सबला
कारको	कारिका[1]

---

(१) स्त्री प्रत्यय के प्रयोग होने से अधातु शब्द के 'क' से पूर्व बहुधा 'अ' का 'इ' हो जाता है। जैसे—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
बालको	बालिका
कारक	कारिका

धम्मदिन्नो	धम्मदिन्ना
अजो	अजा
रामो	रामा

२—ङी

'नदादितो ङी' (३.२७)—नद आदि शब्दों से परे ङी प्रत्यय का प्रयोग होता है। 'ङी' 'क' 'ई' शेष रहता है। जैसे—

पुल्लिंग	स्त्री लिंग
नद	नदी
मिग	मिगी
कुमार	कुमारी
तरुण	तरुणी
वारुण	वारुणी
गोतम	गोतमी
मह	मही
गच्छन्त	गच्छती, गच्छन्ती[1]
गुणवन्तु	गुणवती, गुणवन्ती[1]
भवन्त	भोती, भवन्ती[2] (३.३७)
गो	गावी[3] (३.३९)
पुथु	पथवी, पुथुवी, पठवी[4] (३.४०)

(१) ङी प्रत्यय के प्रयोग होने पर 'न्त', तथा 'न्तु' का विकल्प से 'त' आदेश हो जाता है।—'न्तन्तू नं ङि म्हि तो वा'

(२) ङी प्रत्यय के प्रयोग होने पर 'भवन्त' शब्द का विकल्प से 'भोत' आदेश हो जाता है—'भव तो भो तो'

(३) गोस्सावङ्—इस सूत्र से 'गो' शब्द को 'गावी' आदेश होता है।

(४) ङी प्रत्यय के लगने से 'पुथु' शब्द का 'पथव,' तथा 'पुथुव' आदेश होता है।

३—इनी

यक्खादितो इनी च (३.२८)—यक्ख आदि शब्दों से परे 'इनी' प्रत्यय होता है और ङी प्रत्यय भी। जैसे—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
यक्ख	यक्खिनी, यक्खी
नाग	नागिनी, नागी
मिग	मिगिनी, मिगी
सीह (= सिंह)	सीहिनी, सीही

आरामिकादीहि (३.२९)—'आरामिक' आदि शब्दों के परे 'इनी' प्रत्यय होता है। जैसे—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
आरामिको	आरामिकिनी (आराम से रहने वाली)
राजा	राजिनी
मानुस	मानुसिनी
हत्थि	हत्थिनी

४—नी

(३) उवण्णोहि नी (३.३०) 'इकारान्त' ईकारान्त, उकारान्त, तथा ऊकारान्त शब्दों से परे बहुधा 'नी' प्रत्यय आता है। जैसे—

पुल्लिगग	स्त्रीलिंग
दण्डि	दण्डिनी
भिक्खु	भिक्खुनी
परचित्त विदू	परचित्त विदूनी
पयत पाणि	पयत पाणिनी

५—आनी

मातुलादित्वानी भरियायं (३.३३) 'भार्यावाचक अर्थ में 'मातुल' आदि शब्दों से परे 'आनी' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे—

पुल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
मातुल	मातुलानी
वरुण	वरुणानी
गहपति	गहपतानी

६—ऊ

'उपमा-संहित-सहित-सञ्ञत-सह-सथ-वाम-लक्खणादि तो उरुतो ऊ'—(३.३४) स्त्री प्रत्ययान्त बनाने के लिए उपमान, तथा सहित आदि शब्द यदि पूर्व में रहें तो 'उरु' शब्द से परे 'ऊ' प्रत्यय होता है। जैसे—

पुल्लिङ्ग—करभोरु, वामोरु, संहितोरु, सहितोरु, सहोरु।

स्त्रीलिङ्ग—करभोरू[1], वामोरू[2], संहितोरू[3], सहतोरू[4], सहोरू[5], लक्खणोरू[6], लक्षणोरू।

७—ति

युवाति (३.३५) स्त्री लिङ्ग बनाने के लिए 'युव' शब्द से परे 'ति' प्रत्यय लगता है। जैसे—

युव=युवती

---

१. करभ के समान जांघ वाली।

२. सुन्दर जंघावाली।

३. मिली हुई जाँघ वाली।

४. वही,

५. साथ मिली हुई जाँघ वाली।

६. लक्षित जाँघ वाली।

रिरिय

'करा रिरियो' (५.५१) स्त्रीलिङ्ग में 'कर' धातु से परे 'रिरिय' प्रत्यय होता है। जैसे—

कर + रिरिय—र लोप होकर

करिय—'इत्थियभत्वा' सूत्र से

'आ' प्रत्यय—किरिया— क्रिया।

निपात—

पालि में निम्न शब्द निपात है :—

घरणी,

पोक्खरणी,

किरिया,



सन्धि प्रकरण

पालि भाषा में सन्धि के तीन प्रकार हैं :—

(१) स्वर सन्धि,

(२) व्यंजन सन्धि,

(३) निग्गहीत सन्धि।

पालि में विसर्गों का प्रयोग नहीं होता है अतः विसर्ग सन्धि का यहाँ अभाव है।

पालि भाषा की सन्धियों का अध्ययन साहित्य में प्रयुक्त प्रयोगों के आधार पर ही किया जा रहा है, वैसे पालि में सन्धि के कोई नियत नियम नहीं हैं, वहाँ अनेक रूपता है।

स्वर सन्धि—

दो स्वरों के परस्पर मेल को संधि कहते हैं। स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ हैं इनमें से जब दो स्वर मिल जाते हैं वहाँ स्वर संधि कही जाती है।

(१) स रो लो पो स रे—'स्वर से परे यदि कोई स्वर हो तो कभी-कभी पूर्व स्वर का लोप हो जाता है।' जैसे——

तत्र + इमे =	तत्र् + अ + इमे =	तत्रिमे ('त्र' के अ का लोप)
पुरिस + उत्तमो =	पुरिस् + अ + उत्तमो =	पुरिसुत्तमो
भिक्खुनी + ओवादो =	भिक्खुन + ई + ओवादो =	भिक्खुनोवादो
असन्तोन + एत्थ =	असन्त् + ओ + एत्थ =	असन्तेत्थ
भोगी + इन्दो =	भोग् + ई + इन्दो =	भोगिन्दो
कुतो + एत्थ =	कुत् + ओ + एत्थ =	कुतेत्थ
मे + अत्थि =	म् + ए + अत्थि =	मत्थि
महा + इच्छो =	मह् + अ + इच्छो =	महिच्छो

परोक्वचि—स्वर से परे यदि स्वर हो तो कभी-कभी पर स्वर का लोप हो जाता है। जैसे—

सो + अपि	पर स्वर	'अपि'	के	'अ' का	लोप = सोपि
सा + एव	पर स्वर	'एव'	'ए'	का	लोप = साव
यतो + उदकं	पर स्वर	'उ'		का	लोप = यतोदकं
ततो + एव	पर स्वर	'ए'		का	लोप = ततोव
चत्वारो + इमे	पर स्वर	'इ'		का	लोप = चत्वारोम
सो + अहं	”	'अ'		का	लोप = सोहं
वसलो + इति	”	'इ'		का	लो = वसलोति
ते + अहं	”	अं		”	” = तेहं
आकासे + इव	”	'इ'		”	आकासेव
छायाइ + व	”	इ		”	छायाव

(३) "न द्वेवा"—स्वर से परे यदि स्वर हो तो कभी दोनों का ही लोप नहीं होता है। जैसे—

लता + इव = लताइव

कञ्ञा = इव कञ्ञाइव

किन्तु विकल्प से कञ्ञेव, कञ्ञाव,

लतेव, लताव के रूप में सन्धि हो जाती है।

(४) "युवण्णान मे ओ लुत्ता"—लुप्त हुए स्वर से परे 'इ' का कभी-कभी 'ए' तथा 'उ' का 'ओ' हो जाता है। जैसे—

स्वर लुप्त होने पर

वात + ईरितं	तस्स् + ईरितं	=	वातेरितं,	इ = ए
तस्स + इदं	तस्स + इदं	=	तस्सेदं,	इ = ए
वाम + उरु	वाम् + उरु	=	वामोरु,	उ = ओ
अति + इव	अत् + इव	=	अतेव,	इ = ए
वि + उदकं	व् + उदकं	=	वोदकं,	उ = ओ
सीत + उदकं	सीत् + उदकं	=	सीतोदकं	उ = ओ

(५) "यवासरे"—'इ' तथ' 'उ' से परे यदि स्वर, हो तों, कभी-कभी उनका (इ व का) क्रमशः 'य' तथा 'व' हो जाता है। जैसे—

वि + आकतो = व्याकतो

सु + आगतं = स्वागतं

इति + अस्स = इत्यस्स   त को च····इच्चस्स

वि + आकासि = व्याकासि

वहु + आवाधो = बह्वाबाधो

(६) "एओनं"—'ए और ओ' से परे यदि स्वर हो तो कभी-कभी उनका क्रमशः 'य' तथा 'व' हो जाता है। जैसे—

ते + अज्ज = त्यज्ज

सो + अहं = स्व + हं = व्यञ्जनेदीघरस्सा से दीर्घ : स्वाहं

मे + अयं = म्यायं

पब्बते + अहं = पब्बत्यहं

(७) "गो स्सा वङ्"—'गो' शब्द से परे स्वर आवे तो गो शब्द का 'गव' आदेश हो जाता है। जैसे—

गो + अस्सं = गव + अस्सं = गव् = अस्सं = गवास्सं

गो + एळकं = गव = एळकं = गव् + एळकं = गवेळकं

निम्नलिखित सन्धि निपात है—

यथा + एव = यथरिव
तथा + एव = तथरिव

(८) 'वितिस्सेवेवा'—यदि 'इति' शब्द के अन्तर 'एव' शब्द हो तो विकल्प से 'इति' का 'इत्व' आदेश होता है। जैसे—

इति + एव इत्वेव, विकल्प से इच्चेव,

व्यञ्जन सन्धि—जब कोई व्यंजन वर्ण किसी व्यंजन अथवा स्वर के साथ मिलता है, उस सन्धि का नाम व्यंजन सन्धि है।

(९) "व्यञ्जने दीघरस्सा" (१.३३) जब किसी स्वर के बाद व्यंजन हो, तो पूर्व स्थिति ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर का क्रमशः दीर्घ तथा ह्रस्व हो जाता है। जैसे—

तत्र + अयं = 'परोक्वचि' सूत्र से 'अयं' के 'अ' का लोप होकर तत्र + यं = तत्रायं

मुनि + चरे = मुनीचरे

माला + भारी = मालभारी

सम्मा + एव = सम्मदेव[1]

सम्म + धम्मो = सम्मा धम्मो

खन्ती + परमं = खन्ती परमं

जायति + सोको = जायती सोको,

(१०) सरम्हाद्वे (१.३४) स्वर से परे यदि व्यञ्जन हो तो उसका व्यंजन का कभी-कभी द्वित्व हो जाता है। जैसे—

---

(१) वनतरगा चागमा (१.४५) स्वर से पूर्व कहीं-कहीं 'व' 'न', 'त', 'र', 'ग', 'म', 'य', तथा 'द' का आगम होता है। जैसे—

प + गहो = गग्गहो

दु + कतं = दुक्कतं, दुक्कटं

तयनरानं ट ठ ण ला (१'५२) त, थ, न तथा 'र' का विकल्प से क्रमशः ट, ठ, ण तथा ल हो जाता है। जैसे—

दुक्कतं = तुक्कट, अत्थकथा = अट्ठकथा, गहनं=गहण, परिघो = पलिघो।
इतो + आयति इतोनायति

(११) चतुत्थ दुतिये स्वेसं ततिय पठमा (१,३५) यदि किसी वर्ग के दो चतुर्थ या द्वितीय वर्ण संयुक्त हों, तो उनके पहले का क्रमशः (उसी वर्ग का) तृतीय या प्रथम वर्ण हो जाता है। जैसे :—

नि + घोसो = निग्घोसो। यहाँ 'सरम्हा द्वे' सूत्र से नि = घोसो = निग्घोसो हुआ तथा 'चतुत्थ' सूत्र से 'निग्घोसो' हो गया। इसी प्रकार निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

अ + फुटं = अप्फुटं
नि + ठानं = निट्ठानं
अ + खन्ति = अक्खन्ति
सेत + छत्तं = सेतच्छत्तं
ततिय + झानं = ततियज्झानं

सम्मा + एव = सम्मदेव
अन्त + अत्थं = अत्तदत्थं
यथा + इदं = यथदिदं
इव + आहु = इघमाहु
पुथ + एव = पुथगेव
नि + ओजं = निरोजं
तस्मा + इह = तस्मादिह

(१२) 'ए ओ न म वण्ण: 'ए' तथा ओ के बाद यदि कोई भी वर्ण हो तो उनका कहीं-कहीं 'अ' हो जाता है। जैसे—

सो + सीलवा = स सीलवा

एसो + धम्मो = एस धम्मो

याचके + आगते = याचकमागते (म का आगम)

एसो + अत्थो = एस अत्थो

अकरम्हसे + ते = अकरम्हस ते

निग्गहीत संधि

निग्गहीत (अनुस्वार) के साथ जब कोई स्वर या व्यंजन मिलता है तो वह निग्गहीत संधि कहलाती है।

(१) निग्गहीतं (१.३८) कहीं-कहीं निग्गहीत (अनुस्वार) का आगम होता है। जैसे :—

त + खणे = तंखणे

त + सभावो = तंसभावो

अव + सिरो = अवंसिरो

चक्खु + उदपादि = चक्खुं उपपादि

(२) लोपो (१.३९) 'कहीं-कहीं निग्गहीत का लोप हो जाता है।' जैसे—

सं + रत्तो = स + रत्तो = 'व्यंजने दीघरस्सा' से दीर्घ=

सारत्तो

सं + रागो = सारागो

सं + रम्भो = सारम्भो

बुद्धानं + सासनं = बुद्धान सासनं

एवं + अहं = एवाहं

कथं + अहं = कथाहं

गन्तुं + कामो = गन्तुकामो

(३) 'परसरस्स' (१.४०) 'निग्गहीत से परे आने वाले स्वर का कहीं-कहीं लोप हो जाता है।' जैसे :—

त्वं + असि = त्वंसि विकल्प से त्वमसि

इदं + अपि = इदम्पि

किं + इति = किन्ति

किं + इदानि = किन्दानि

अलं + इदानि = अलन्दानि

(४) 'वग्गे वग्गन्तो' (१.४१) 'निग्गहीत से परे कोई वर्गीय वर्ण हो, तो विकल्प से निग्गहीत का उसी वर्ण का अन्तिम वर्ण हो जाता है।' जैसे :—

तं + करोति = तङ्करोति

तं + चरति = तञ्चरति

तं + ठानं = तण्ठानं

तं + धनं = तन्धनं

तं + पाति = तम्पाति

(५) मयदासरे (१.४४) स्वर परे हो तो कभी-कभी-पूर्व स्थित निग्गहीत का 'म', 'य' तथा 'द' आदेश हो जाता है। जैसे—

तं + अहं = तमहं

तं + इदं = तयिदं

तं + अलं = तदलं

(६) छ ळो (१.४६) 'छ' वर्ण से परे आने वाले स्वर का कभी-कभी 'ळ' हो जाता है, जैसे :—

छ + अङ्गं = छळङ्गं

छ + आयतनं = छळायतनं

(७) तदमिनादीनि (१.४७) निम्नलिखित सन्धि निपात हैं :—

तं + इमिना = तदमिना

सकिं + आगामी = सकदागामी

एकं + इध + अहं = एकमिदाहं

संविधाय + अवहारो = संविदावहारो

वारिनो + वाहको = वलाहको

जीवन + मूतो = जीमूतो

छव + सयनं = सुसानं

(८) **संयोगादि लोपो** (१.५३) संयोग के आदि भूत अवयव का कभी-कभी लोप हो जाता है। जैसे—

फुप्फं + अस्स = पुप्फंसा,

अस जो आदि भूत अवयव है उसका लोप हो गया है।

जायते + अग्गिनि = जायते गिनि

'अंग' आदि भूत अवयव है उसका लोप हो गया है।

●

समास प्रकरण

दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर संक्षिप्त करना ही समास कहा जाता है—इस प्रक्रिया में भिन्न अर्थों वाले शब्द एकार्थ हो जाते हैं।

समास छः होते है—

(१) अव्ययी भाव, (२) तत्पुरुष, (३) बहुव्रीहि, (४) कर्मधारय, (५) क्रियार्थ और (६) द्वन्द्व। इन्हें क्रमशः असंख्य, अमादि, अन्न्त्य एकाधिकरण क्रियदय; और चत्थ कहते हैं।

अव्ययी भाव—'जब अव्यय के साथ शब्द का समास होता है, उसे अव्ययी-भाव समास कहते हैं।'

अव्ययीभाव समास— विभक्ति, सम्पत्ति, समीप, साकल्प अभाव, यथा, पश्चात् और युगपद—इन आठ अर्थों में होता है। जैसे—

	अर्थ	अव्यय	विग्रह	समास	भाव
(१)	विभक्ति	अधि	इत्थीस कथा पवत्ता	अधित्थि	स्त्रियों के विषय में।
(२)	सम्पत्ति	सं	सम्पन्न ब्रह्म	सब्रह्म	ब्रह्मा के साथ
(३)	,,	सु	समिद्धि भिक्खानं	सुभिक्खं	अन्न-पान से परिपूर्ण
(४)	समीप	उप	कुम्भस्स समीपं	उपकुम्भं	घड़े के समीप
(५)	,,	,,	नगरस्स समीपं	उपनगरं	नगर के पास
(६)	साकल्य	सह	सह तिणेन	सतिणं	घास के साथ
(७)	,,	,,	सह मक्खिकाय	समक्खिकं	मक्खी के साथ
(८)	अभाव	नि	अतिगतानि तिणानि	नित्तिणं	तृण रहित
(९)	,,	नि	अभावो मक्खिकानं	निमक्खिकं	मक्खियों से रहित
(१०)	यथा	अनु	रूपस्स योग्गं	अनुरूपं	रूप के योग्य
(११)	यथा	यथा	सत्तिंअनतिक्कम्भ	यथासत्ति	यथाशक्ति
(१२)	पश्चात्	अनु	रथस्सपच्छा	अनुरथं	रथ के पीछे
(१३)	युगपद	सह	सह चक्केन	सचक्कं	चक्र के साथ
(१५)	,,	सह	सह धुरेन	सधुरं	भार के साथ

अव्ययीभाव समास के अन्य उदाहरण—

अव्य	विग्रह	समास	अर्थ
याव	याव जीवं	यावजीवं	जीवन भर
,,	यावमत्तं ब्राह्मणे	आमन्तय	जितने ब्राह्मणों को बुलाओ
परि	परिपब्बतं वस्सिदेवो	परिपब्बता	पर्वत के चारों ओर वर्षा हुई
अप	अपपब्बतं	वस्सि देवो,	पर्वत को छोड़कर वर्षा हुई
आ	आपाटलिपुत्तं	वस्सि देवो	आपाटलिपुत्तं पाटली पुत्र तक वर्षा हुई

वहि	गामं वहि	वहिगामं	गाँव के बाहर
पच्छा	भत्तं पच्छा	पच्छाभत्तं	भोजन के बाद

अनु—गंगाय अनु वाराणसी अनुगंग वाराणसी

ओरे	गङ्गाय ओरे	ओरेगङ्ग	गंगा के तट पर वाराणसी गंगा के इस ओर
उपरि	सिखरस्स उपरि	उपरिसिखरं	पर्वत के ऊपर
पटि	सोतस्स पटि	पटिसोतं	धारा के विरुद्ध
पारे	यमुनाय पारे	पारेयमुनं	यमुना के उस पार
पारे	गंगाय पारे	पारेगंग	गंगा के उस पार
मज्झे	गंगाय मज्झे	मज्झेगंग	गंगा के बीच
हेट्ठा	पासादाय हेट्ठा	हेट्ठापासादं	गंगा के नीचे
उद्ध	गंगाय उद्ध	उद्धगंग	गंगा के ऊपर
अधो	गंगायअधो	अधोगंगा	गंगा के नीचे
अन्तो	पासादाय अन्तो	अन्तोपासादं	प्रसाद के भीतर
पर	सहस्सं परो	परोसहस्सं	सहस्र से अधिक

निम्नलिखित अव्ययीभाव समास निपात हैं—

तिट्ठन्ति गावो यस्मि काले = तिट्ठगुकालो

—जिस समय बैल खड़े होते हैं।

वहन्ति गावो यस्मि काले = वहग्गुकालो

—जिस समय बैल भार वहन करते हैं।

आयन्ति गावो यस्मिं काले = आयतिगवं

—जिस समय बैल आते हैं।

खले यवा यस्मिं काले = खलेयवं

—जिस समय जो खलिहान में होते हैं।

लूयमाना यवा यस्मिं काले = लूनयवं

—जिस समय जौ काटे जाते हैं।

पातो होति यस्मिं काले = पातकालं

—जिस समय प्रातः होता है।

सायं होति यस्मिं काले = सायकालं

—जिस समय सन्ध्या होती है।

विशेष:—(१) संख्यावाचक शब्द उत्तरपद में हो तो 'पर' शब्द के अन्त्य स्वर का 'ओ', हो जाता है। जैसे—

परोसतं, परो सहस्सं

(२) अव्ययी भाव समास होने से शब्द नपुसंकलिंग हो जाता है। कभी-कभी नहीं भी होता है जैसे—

यथापरिसं

यथा परिसाय।

तत्पुरुष (अमादि)

जहां प्रथमाविभक्ति (= कर्त्ता कारक) को छोड़कर अन्य विभक्ति चिह्नों का लोप हो जाता है, वहां तत्पुरुष समास होता है। दुतिया आदि विभक्तियों के पूर्वपद की विभक्ति का लोप होता है। पूर्वपद जिस विभक्ति का हो, वह समास उसी विभक्ति के नाम से पुकारा जाता है। तत्पुरुष समास छः प्रकार का होता है—

दुतिया	तत्पुरुष,	ततिया तत्पुरुष
चतुत्थी	तत्पुरुष,	पञ्चमी तत्पुरुष
छट्ठी	तत्पुरुष,	सत्तमी तत्पुरुष।

नाम	विग्रह	समस्त शब्द	अर्थ
दुतिया	गामं गतो	गामगतो	गाँव गया हुआ
,,	मुहुत्तं सुखं	मुहुत्त सुखं	मुहूर्त्त भर सुख
,,	कुम्भं करोति	कुम्भकारो	कुम्हार
,,	सुखं प्राप्तः	सुखप्राप्त	सुखी
,,	अरञं गतो	अरञगतो	वन को गया हुआ

नाम	विग्रह	समस्तपद	अर्थ
ततिया	रञ्ञा हतो	राजहतो	राजा द्वारा मारा हुआ
,,	बुद्धेन भासितो	बुद्धभासितो	बुद्ध कथित्
,,	जच्चेन अन्धो	जच्चन्धो	रतोंधी वाला
,,	सुखेन सहगतं	सुखसहगतं	सुख के साथ
,,	असिना छिन्नो	असिच्छिन्नो	तलवार से कटा
,,	पादेन पिवति	पादपो	वृक्ष
,,	उरसा गच्छति	उरगो	सर्प
,,	गुळन मिस्सो आदनो	गुळोदना	गुड़ और चावल
चतुत्थी	यूपायदारु	यूपदारु	यज्ञ स्तम्भ की लकड़ी
,,	बुद्धस्स देय्यं	बुद्धदेय्यं	बुद्ध को देने योग्य
,,	संघस्स भत्तं	संघभत्तं	संघ का भोजन
पंचमी	गामस्मा निग्गतो	गामनिग्गतो	ग्राम से निकला हुआ
,,	चोरेहिभयं	चोरभयं	चोर से भय
,,	रुक्खस्मा पतितो	रुक्खपतितो	वृक्ष से गिरा हुआ
,,	कम्मा जातं	कम्मजं	कर्म से उत्पन्न
,,	चित्तेन जातं	चित्तजं	चित्त से उत्पन्न
,,	चोरा भीतो	चोरभीतो	चोर से भयभीत
छट्ठी	रुक्खस्स साखा	रुक्खसाखा	वृक्ष की शाखा
,,	रञ्ञोपुरिसो	राजपुरिसो	राजा का पुरुष
,,	नदिया तीरं	नदितीरं	नदी का तट
,,	कञ्ञायं रूपं	कञ्ञा-रूपं	कन्या का रूप
,,	फलस्सरसो	फलरसो	फल का रस
,,	चन्दनस्सगन्धो	चन्दनगन्धो	चन्दन की गन्ध
,,	भिक्खुनीनंसंघो	भिक्खुनिसंघो	भिक्षुणियों का संघ
,,	नरानं उत्तमो	नरुत्तमो	नरों में श्रेष्ठ

टिप्पणी (१)—षष्ठी तत्पुरुष समास कभी-कभी नपुंसक लिंग एकवचनान्त होता है। जैसे—

सकुन्तानंछाया सकुन्तछायं, सलभानं छाया—सलभच्छायं

(१) समास होने पर अमनुष्यों की सभा में नपुंसकलिंग एकवचन होता है। जैसे—

ब्रह्मसभं, देवसभं, इन्दसभं, यक्खसभं,
सरभसभं = सरभानं सभा = सरभसभं।

मनुष्यों की सभा—खत्तियसभा, राजानं सभा = राजसभा

सत्तमी—

धम्मेरतो	धम्मरतो	धर्म में संलग्न
अरञ्ञे वासो	अरञ्ञवासो	जंगल में वास
पब्बते तिट्ठति	पब्बतट्ठो	पर्वत पर स्थित
वनेचरति	वनचरो	वन में भ्रमण करने वाला।

मध्यम पद लोपी समास—

अस्सेन युतो रथो अस्स रथो

चतुत्थी—इसमें मध्यमपद 'युतो' का लोप हो गया है। अश्व में जुता घोड़ा।

अलुक तत्पुरुष—इस समास में प्रथम शब्द की विभक्ति का लोप नहीं होता है। जैसे—

पभंकरो, उरसिलोमो, अन्तेवासिको

तत्पुरुष समास के कुछ विशेष उदाहरण—

तत्पुरुष	वैशिष्ट्य	विग्रह	अर्थ
इदप्पच्चया	(इम का इदं आदेश गया)	इमेसं पच्चया	इनके प्रत्यय से
पुल्लिंग	('पुम' शब्द का विकल्प से 'पु' आदेश)	पुमस्स लिङ्गं	पुरुष का चिह्न
सत्थारदस्सनं	('तु' प्रत्यय के विकल्प से आर हो जाता है)	सत्थुनो दस्सनं	शास्ता का दर्शन
तम्मुख	(स्त्री वाचक शब्द पुल्लिंग रूप में)	तस्सामुखं	उसका मुख

उदकुम्भो	('उदक' का 'उद' आदेश विकल्प से)	उदकस्स कुम्भो पानी का घड़ा
दकसोतं	(सोत आदि का शब्द परे होने पर 'उदक' का 'उ' लोप हो जाता है)	उदकस्स सोतो पानी का स्रोत

कर्मधारय (एकाधिकरण)

'विशेषण और विशेष्य शब्दों के समास का नाम कर्मधारय है।' जैसे—

(१)

विग्रह	समास	अर्थ
नीलञ्च तं उप्पलं	नीलुप्पलं	नीलकमल
मुनि च सो सीहो चाति	मुनिसीहो	श्रेष्ठमुनि
सीलमेव धनं	सीलधनं	शीलधन
कण्हो सप्पो	कण्हसप्पो	कृष्णसर्प

(२) न के साथ आद्यन्त समास होता है :—

न ब्राह्मणो	अब्राह्मणो	अब्राह्मण

(३) उत्तर पद यदि स्वर से आरम्भ होता हो तो पूर्व पद न अ् का 'अन' आदेश हो जाता है। जैसे—

न ओकासं	अनोकासं	अनवकाश
न अक्खातं	अनक्खात	अकथित

(४) नख आदि शब्द निपात है। इनमें पूर्व पद 'नञ' का 'अ' आदेश नहीं होता है। जैसे—

नास्स खमत्थि इति	नखो	नाखून
नास्स कुलमत्थि इति	नकुलो	नेवला

(५) कु, पु आदि शब्दों के साथ स्यादन्त शब्दों का समास होता है। कु को 'क' तथा 'कद' होता है। जैसे—

कुच्छितो ब्राह्मणो	कुब्राह्मणो	निन्दित ब्राह्मण
कु अन्नं	कदन्नं	खराब अन्न
कु असनं	कदसनं	खराब भोजन

कुलवणं	कालवणं	खराब नमक
अप्पकं लवणं	कालवणं	थोड़ा नमक
कु पुरिसो	कापुरिसो	बुरा आदमी
ईसकं उण्हं	कदुण्हं	थोड़ा गर्म
पगतो आचरियो	पाचरियो	आचार्य के आचार्य (प्राचार्य)
अप्पकं पमादो	अप्पमादो	प्रमाद
न अत्थो	अनत्थो	अनर्थ
निग्गतो कोसम्बिया	निक्कोसम्बि	कौशाम्बी से निकला हुआ
न असुय्यं	अनसुय्यं ईर्ष्यारहित	

कर्म धारय समास के कुछ विशिष्ट उदाहरण

[1] अरियेहि पुथगेवायं जनोति = पुथुज्जनो = आर्यों से भिन्न

[2] छन्नं अहानं समाहारो = साहं, छाहं = छः दिन

[2] छन्नं आयतनानं समाहारो.... साळायतं, छळायतनं } आयतन

[3] समानो पक्खो — सपक्खो, समानपक्खा } पांख के समान

[3] समान जोति — सजोति, समान जोति } प्रकाश के समान

[4] पुब्बो अहो — पुब्बन्हो — पूर्वाह्न

[4] अपरो अहो — अपरन्हो — अपराह्न

[4] मज्झो अहो — मज्झन्हो — मध्यान्ह

सायो अहो — सायह्नो — संध्या

(१) 'जन' शब्द यदि उत्तर पद में हो, तो पूर्व पद 'पुथ' शब्द के अन्त्य स्वर का 'उ' हो जाता है।

(२) 'अह' यह आयतन शब्द उत्तर पद में हो तो पूर्व पद 'छ' शब्द का विकल्प से स आदेश होता है।

(३) 'पक्ख आदि शब्द उत्तर पद में हों तो पूर्वपद 'समान' शब्द का विकल्प से 'स' आदेश होता है।

(४) 'पुब्ब' आदि शब्द यदि पूर्वपद हो तो उत्तर पद 'अह' शब्द का 'अन्ह' आदेश होता है।

[1] पञ्चन्नं गुन्नं समाहारो = पञ्चगवं	पाँच बैल
चतुन्नं पथानं समाहारो = चतुष्पथं	चार मार्ग
तिन्नं लोकानं समाहारो = तिलोकं	तीन लोक
चतुन्नं सच्चानं समाहारो = चतुसच्चं	

अट्ठन्न सीलानंसमाहारो	अट्ठसीलं	अष्टशील
चतस्सो दिसा	चतुद्दिसा	चारदिशाएँ
सतानि सकटानि	सकट्यसतानि	सौ बैलगाड़ियाँ
तयो भवा	तिभवा	तीन भव
चतस्सो सतानो	चतुसतानि	चार सौ
महान्तो पुरिसो	महापुरिसो[2]	महापुरुष
महन्ती नदी	महानदी	बड़ी नदी
महन्तं भयं	महब्भयं	महान भय

बहुब्रीहि समास अञ्ञत्थ

'जिस समास के शब्द विशेषण बनकर अन्य अर्थ का बोध कराते हैं, उसे बहुब्रीहि समास कहते हैं। जैसे—

विग्रह	समास	अर्थ
बहूनि धनानि यस्यसो	बहुधनो	धनिक्
लम्बा कण्णा यस्स सो	लम्बकण्णो	बुद्ध
वजिरं पाणिहि यस्य सो	वजिर पाणि	इन्द्र
मत्ता बहवो मातङ्गा एत्थ	मत्तबहुमात्तङ्ग वनं	वन
आरुळहो वानरो यं रुक्खसो	आरुळहवानरो	वृक्ष

(१) आदि में संख्या वाचक शब्द हो तो समाहार नपुंसकलिङ्ग न्त होता है। यह संस्कृत का 'द्विगु' समास है किन्तु पालि में इसे कर्मधारय ही माना गया है।

(२) विशेषण 'महन्त' को 'महा' आदेश होता है तथा द्वित्वादि कार्य के अन्तन्तर 'महा' का 'मह' शेष रहता है।

जितानि इन्द्रियानि येनसो	जितेन्द्रियो	मुनि
दिन्नं भोजनं यस्ससो	दिन्न भोजनो	भिक्खु
सहपुत्तेन आगत्वो वत्तमाना वा	सुपुत्तो	पुत्र सहित
पपतितं पण्णमस्स	पपतितपण्णो, पपण्णो	वृक्ष
न सन्ति पुत्ता अस्स	अपुत्रो	वह व्यक्ति जिसके पुत्र न हो
महन्तानि धनानियेसंते	महद्धना	सेठ
बहवो तापसा यस्मिसो	बहुतापसो	आश्रम
कुमारी भरिया यस्ससो	कुमार भरिया	युवक

अन्य उदाहरण—

मनो सेट्ठा एतेसं इति	मनो सेट्ठा
मनसा निब्बता	मनोमया
रजसो विकारो	रजोमयं
आपेसु गतं	आपोगतं
आपस्स विकारो	आपोमयं
दीघा जङ्घा यस्स सो	दीघजङ्घो
युवति जाया यस्स सो	युवजायो
सह अस्सत्थेन वत्तति	सास्सत्थं
सह पलासेन वत्तति	सपलासं
गुणवन्ता पतिट्ठा मम सोह	गुवन्त पतिट्टो
द्वे गुणा अस्स	दिगुणं
द्वे पट्टा अस्स चीवरस्स	दुपट्टं
द्वे विधा पकारा अस्स	दुविधो
त्रं येसं सरणं एसं	तंसरणा
समानं उदरं यस्स	सोदरियो
सह अग्गिना विज्जमानो	साग्गि
अधिको दोणो अस्स	सदोणा
बहुमालायो एतस्स	बहुमालो

चिन्ता गावो अस्सेति	चित्तगु
द्विन्नं रत्तीनं समाहारो	दिरत्तं
द्विन्नं गुन्नं समाहरो	दिगु
द्वे वा तयो वा	द्वत्तयो
द्वे वा तया वा पत्तपूरा	द्वित्तियत्तपूरा (दो तीन पात्र भरकर)

क्रियत्थ

पालि में क्रियत्थ समास भी है—जब दो क्रियाओं के कुछ विशिष्ट प्रत्यय वाले शब्दों के समास होता है उसे क्रियत्थ समास कहते हैं।'

यह समास प्राय: 'री' 'रिक्ख', 'च' और 'क' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ होता है। जैसे—

अलङ्करिय	अलंकृत करके
सक्कच्च	सत्कार करके
असक्कच्च	असत्कार करके
पुरोभूय	आगे होकर
समानो विय दिस्सति	सरी, सदी, सरिक्खो, सरिसो,—सदृश
यो विय दिस्सति	यादी, यादिक्खो, यादिसो—जैसी
भवं विय दिस्सति	भवादी, भवादिक्खो भवादिसो—आपके समान
अम्हाकं विय दिस्सति	मादी, मादिसो—मुझ जैसा
उदकं धाति इति अस्मिं	उदधि—समुद्र
उदकं पीयते अस्मिं इति	उदपानं—जलाशय

द्वन्द्व समास

दो या कई शब्दों के बीच 'च' और का लोप कर जो समास होता है, उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। अर्थात् 'और के अर्थ में होने वाला समास द्वन्द्व कहलाता है।' यह समास दो प्रकार का होता है—

(१) इतरेतर
(२) समाहार

इतरेतर या असमाहार द्वन्द्व—जब समास में आई हुई दोनों संज्ञाएँ अपना समान महत्व रखती हैं, ऐसे समास का नाम इतरेतर द्वन्द्व समास है। जैसे—

चन्दिमो च सुरियो च	=	चन्दिमसुरिया
माता च पिता च	=	माता पितरो
पिता च पुत्तो च	=	पिता पुत्ता
जाया च पति च	=	जयम्पती
माता च पुत्तो च	=	माता पुत्ता
देवा च मनुस्सा च	=	देवमनुस्सा
समणो च ब्राह्मणो च	=	समण ब्राह्मणा
होता च पोता च	=	होता पोतारो
अग्गि च धूमो च	=	अग्गि धूमा
धमत्ते च अत्थो च	=	धमत्था

समाहार द्वन्द्व—जब समास में ऐसी संज्ञाएँ आवें, जो और से जुड़ी हुई अपना अर्थ व्यक्त करें और साथ-साथ एक समूह (= समाहार) का बोध करावें ऐसा समास समाहार द्वन्द्व कहलाता है।

समाहार समास नपुंसकलिंग होता है। जैसे—

प्राणी के अङ्गों में	चक्खु च सोतं च =	चक्खुसोतं
	मुखं च नासिकं च =	मुखनासिकं
	हनु च गीवं च =	हनुगीवं
	जरा च मरणं च =	जरामरणं
बाजों के नाम में	मुरजं च गोमुखं च =	मुरज गोमुखं
	गीतं च वादितं च =	गीतवादितं
हल के अंगों में	युगं च नंगलं च =	युगनंगलं
सेना के अंगों में	असि च चम्मं च =	असिचम्मं
	धनु च कलापं च =	धनुकलापं
नित्य वैरियों में	अहि च नकुलं च =	अहिनकुलं
	काको च उलूको च =	काकोलूकं

संख्या तथा परिमाण में	एकको च दुको च =	एककदुकं
क्षुद्र जन्तुओं में	डंसो च मसकोच =	डंसमसकं
	मक्खिकं च किपिल्लिकं च =	मक्खिक किपिल्लंक
छोटी जातियों में	साकुन्तिको च मागविको च =	साकुन्त मागविकं
चरण-साधारण में	समथं च विपस्सनं च =	समथ विपस्सनं
ग्रन्थों के नाम में	दीघो च मज्झिमो च =	दीघमज्झिमं
	खन्धक च विभङ्गो च =	खन्धकविभङ्गं
लिङ्ग विशेष में	इत्थी च पुमो च =	इत्थिपुमं
	दासी च दासं च =	दासिदासं
विविध विरुद्धों में	कण्हो च सुक्को च =	कण्हसुक्कं
दिशाओं में	पुब्बं च उत्तरं च =	पुब्बुत्तरं
नदी के नामों में	गङ्गा च यमुना च =	गङ्गयमुनं
	मही च सरभू च =	महीसरभु

विशेष—(१) इस प्रकार स्पष्ट है कि समाहार द्वन्द्व प्राणी के अङ्ग, बाजों के नाम, हल के अङ्ग, सेना के अङ्ग, नित्य शत्रु, संख्या परिमाण, क्षुद्र जन्तु, छोटी जात, चरण, ग्रन्थों के नाम, लिङ्ग विशेष विरुद्ध स्वभाव, दिशा तथा नदी के नामों में होता है।

(२) तृण, वृक्ष, पशु, पक्षी धन वाचक शब्द धान्य-नाम, व्यंजन और जनपद के नामों में समाहार तथा इतरेतर द्वन्द्व समास होता है।

टिप्पणियाँ

प्रश्न—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

आर्य-सत्य, अष्टांगिक मार्ग, शिक्षा-त्रय, षट् पारमिता, बोधिसत्व, ब्रह्मविहार, प्रतीत्यसमुत्पाद, पुद्गल, मज्झिमापरिपदा, आसव, आर्य-श्रावक, चर्या, सम्पन्न अध्याशय, चारिका।

उत्तर—आर्य-सत्य—बुद्ध ने जीवन से सम्बन्धित जो उपदेश दिए हैं, वे मानव जीवन की वास्तविकता का उद्घाटन करते हैं। कर्तव्य-शास्त्र की दृष्टि से बुद्ध ने चार-सत्यों की खोज की थी। इन्हीं सत्यों का परिपूर्ण ज्ञान के कारण बुद्ध सम्बोधि के अधिकारी हुए थे। इन सत्यों को आर्य लोग ही भली-भाँति ग्रहण कर सकते हैं इसलिए इन्हें 'आर्यसत्य' कहा गया। अत्यधिक महत्व-पूर्ण आर्य-सत्य ४ हैं—दुःखम्, दुःख समुदय, दुःखनिरोध तथा दुःखनिरोधगामी मार्ग।

"व्यास तथा विज्ञानभिक्षु का स्पष्ट रूप से कथन है कि अध्यात्मशास्त्र, चिकित्साशास्त्र के समान चतुर्व्यूह है। जिस प्रकार चिकित्साशास्त्र में रोग, रोगहेतु, आरोग्य, तथा भैषज्य है, उसी भाँति दर्शनशास्त्र में संसार, संसारहेतु, मोक्ष तथा मोक्षोपाय—ये चार सत्य माने जाते हैं।—यथा चिकित्साशास्त्रं चतूर्व्यूहं रोगो रोगहेतुः आरोग्यं भैषज्यमिति। एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहम्, तद् यथा संसारः, संसारहेतुः, मोक्षो मोक्षोपाय इति, सर्वप्रथम आर्य-सत्य है—

(१) दुःख—भगवान बुद्ध ने दुःख की व्याख्या इस प्रकार की है—"इदं खो पन भिक्खवे दुक्ख अरिय सच्चं। जातिपि दुक्खा, जरापि दुक्खा, मरणापि दुक्खं........" अर्थात् जन्म, वृद्धावस्था, मरण, शोक इत्यादि सभी कुछ दुःख है। संक्षेप में कह सकते हैं कि राग से उत्पन्न पाँचों स्कन्द (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान भी) दुःख है।

(२) दुःख समुदय—दुःख का समुदय अर्थात् कारण तृष्णा है। बुद्ध ने कहा कि—'योयं: तण्हा पोनब्भविका नन्दिरागसहगता तत्र तत्राभिनन्दिनी सेयमीदं कामतण्हा, भवतिण्हा, विभवतण्हा।' अर्थात् यह तृष्णा विषयों के राग से युक्त है। उससे उत्पन्न है तथा उन विषयों का अभिनन्दन करने वाली है। यह तृष्णा सर्वत्र तृप्ति खोजती रहती है। यह तीन प्रकार की है—काम-तृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा, तृष्णा के कारण परस्पर भाई बहिन से, माता पुत्र से, मित्र-मित्र से पुत्र पिता से लड़ते हैं। सभी कलह व विवाद तृष्णा के कारण होते हैं।

(३) दुःख निरोध—दुःख का मूल तृष्णा है उसे नष्ट कर देना ही दुःख-निरोध कहलाता है। बुद्ध के अनुसार—'सो तस्सायेव तण्हाय असेसविराग निरोधो चागोपरिनिस्सागो मुक्ति अनालयो।' अर्थात् दुःख-निरोध तृष्णा से अशेष सम्पूर्ण वैराग्य का ही नाम है। तृष्णा का त्याग, प्रतिसर्ग मुक्ति तथा अनालय यही है। तृष्णा के अन्त हो जाने से मनुष्य दुःख के कारण—बुढ़ापा, मरण, शोक आदि से मुक्त हो जाता है।

(४) दुःख निरोधगामी मार्ग—इस मार्ग के द्वारा प्राणी दुःख निरोध तक पहुँच जाता है। बुद्ध ने इस मार्ग को अष्टांगिक मार्ग के नाम से अभिहित किया है। इसके पालन द्वारा प्राणी को मुक्ति व कल्याण प्राप्त होता है। इन आठ शिक्षाओं में जीवन का सार सन्निहित है। बुद्ध ने अति का त्यागकर मध्यम मार्ग पर चलने का उपदेश दिया था।

अष्टांगिक मार्ग

भगवान बुद्ध ने दुःख का स्वरूप व कारण बता कर दुःख को दूर करने के लिए मार्ग बताया, जिसे अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है। इससे कर्म क्षीण होकर प्राणी को भवक्लेशों से मुक्ति प्राप्ति होती है। यह इस प्रकार है—

(१) सम्यक् दृष्टि }
(२) सम्यक् संकल्प } प्रज्ञा

(३) सम्यक् वाक्
(४) सम्यक् कर्म } शील
(५) सम्यक् अजीविका

(६) सम्यक् व्यायाम
(७) सम्यक् स्मृति } समाधि
(८) सम्यक् समाधि

बौद्ध धर्म के अनुसार प्रज्ञा, शील और समाधि—ये तीन मुख्य साधन माने जाते हैं, यह अष्टांगिक मार्ग इसी साधनत्रय का पल्लवित रूप है।

सम्यक्-दृष्टि—कायिक, वाचिक और मानसिक अच्छे बुरे कर्मों का उचित ज्ञान।

सम्यक्-संकल्प—का अर्थ है रागप्रतिराग रहित संकल्प।

बुद्ध ने कायिम, वाचिक और मानसिक कर्मों के भले बुरे का विवेचन भी किया है। हिंसा, चोरी, व्यभिचार आदि कायिक बुरे कर्म हैं, और अन्येतर शुभ कर्म। इसी भाँति मिथ्या-भाषण, चुगली, कटुभाषण आदि वाचिक बुरे कर्म हैं और लोभ, हिंसा तथा असत्य धारण आदि मानसिक बुरे कर्म हैं। इससे इतर अन्य कर्म शुभ हैं।

कायिक तथा वाचिक शुभ कर्म सम्यक् कर्म और सम्यक् वचन के अन्तर्गत आते हैं। बुद्ध ने सम्यक् उपायों से अर्जित जीविका को सम्यक् जीविका कहा है। अंगुत्तर-निकाय में कहा है कि—"प्राणीहिंसा-सम्बन्धी जीविका, प्राणी का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार, विष का व्यापार गलत ढंग से अर्जित जीविका है।"

सम्यक् प्रयत्न—इन्द्रियों पर संयम करना, बुरी भावनाओं का दमन करना, सुभावों को बनाना, सुभावों को स्थिरता देना ही सम्यक् प्रयत्न है।

सम्यक् स्मृति—कायिक, वाचिक और मानसिक स्थितियों को ठीक रखना। उनके मलिन, क्षण विध्वंसी आदि होने का सदा स्मरण रखना ही सम्यक् स्मृति है।

सम्यक् समाधि—'चित्र की एकाग्रता का नाम समाधि' है।

शिक्षा-त्रय—बुद्ध ने मानव को संसार से मुक्ति पाने के लिए साधना मार्ग बताया, इसे 'शिक्षा-त्रय' के नाम से अभिहित किया जाता है। ये हैं—शील-शिक्षा, समाधि-शिक्षा, प्रज्ञा-शिक्षा। यह विशुद्धि मार्ग भी कहलाता है।

तथागत का कहना है कि शील, समाधि और प्रज्ञा शिक्षा का पालन करता है, वह संसार की तृष्णाओं से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त करता है।

"शील शासन की मूल भित्ति है। इसलिए शील शासन का आदि है। यही शासन की आदि कल्याण का दाता है। सर्वपाप से विरति ही शील है। कुशल में चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। यह शासन का मध्य है। प्रज्ञा विपश्यता शासन का पर्यवसान है। जब योगी प्रज्ञा से देखता है कि संस्कार अनित्य है, सब संस्कार दुःख है, सब धर्म अनात्त है। तब दुःख का निरोध होता है। यह प्रज्ञा इष्ट अनिष्ट में वादिभाव का आह्वान करती है।"

षट्पारमिता—बुद्ध का कहना है कि छः पारमिताएँ होती हैं। बौद्ध भिक्षुओं के लिए ये सर्वस्व हैं। ये ६ पारमिताएँ हैं—

(१) दान—अर्थात् आत्मभाव का परित्याग तथा निःस्वार्थ बुद्धि का होना।

(२) शील पारमिता—प्राणी हिंसा जैसे गर्हित कर्मों से चित्त को विरत कर लेना।

(३) शान्ति-पारमिता—अर्थात् दूसरों द्वारा कृत अपकार से चित्त का अक्षुब्ध होना।

(४) वीर्य-पारमिता—पुष्ट शरीर से समाधि में सफलता प्राप्त होती है। वीर्य-रक्षा से ही शरीर पुष्ट होता है। अतः वीर्य रक्षा ही वीर्य पारमिता है।

(५) ध्यान-पारमिता—अर्थात् चित्त की एकाग्रता।

(६) प्रज्ञा-पारमिता—अर्थात् यथार्थ ज्ञान। यह प्रधान पारमिता है। इस पारमिता के अभाव में पुनर्भव का नाश नहीं होता। पंचपारमिता प्रज्ञारहित होने पर लौकिक कहलाती है। प्रज्ञा की प्राप्ति शून्य में प्रतिष्ठित होने वाले व्यक्ति को होती है। प्रज्ञावान् व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाता है कि परमार्थ दशा में सब भाव धर्म शून्य हैं। जगत् की सत्ता पारमार्थिक नहीं। प्रज्ञावान प्राणी

को बोधिसत्व के लिए इस जगत् के समस्त व्यवहार मायिक, स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीत होते हैं।

सम्बोधि की प्राप्ति में ये पारमिताएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण हैं। इन पारमिताओं के अर्जन से प्राणी बुद्धत्व प्राप्त कर सकता है ऐसा बुद्ध ने उपदेश दिया था।

बोधिसत्व—'बोधोसत्वं अभिप्रायोऽस्येति बोधिसत्वः।" अर्थात् 'बोधि प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति।' यही बोधिसत्व का शाब्दिक अर्थ है। बोधिसत्व प्राप्त करके मानव का जीवन आदर्श व महान् होता है। वह अन्यों के लिए अनुकरणीय होता है। बुद्धत्व प्राप्त करने का इच्छुक साधक 'स्व' से ऊपर उठकर संसार के कल्याण की ओर उन्मुख होता है। ये साधक महामैत्री पूर्ण और महा करुणा पूर्ण होते हैं। बोधिसत्व के आदर्शों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

"एवं सिर्वमिदं कृत्वा यन्मयाऽऽसादितं शुभम्
तेनस्या सर्वसत्तनां सर्वदुःख प्रशान्ति कृत।
मुच्यमानेषु सत्वेषु ये ते प्रमोद्यसागराः
तैरेवनतु पर्याप्तं मोक्षेनारसिकेन किम्।"

(बोधिचर्यावतार)

अर्थात्—"अपने अनुष्ठान और पुण्य संभार से बोधिसत्व समग्र प्राणियों के दुःखों को दूर करना चाहते हैं। मुक्त जीवों के हृदय में जो आनंद का सागर लहरें मारने लगता है। वही मेरे जीवन को परमानंदमय बनाने के लिए पर्याप्त है। रसहीन शुष्क मोक्ष को लेकर क्या ?"

बोधिसत्व को बोधचित्त में संलग्न होना आवश्यक है। प्राणी के कल्याण के लिए सम्यक् संबोध में चित्त को प्रतिष्ठित करना ही 'बोधिचित्त' है। साधक को वन्दना, पूजा, पापदेशना, पुण्यानुमोदन, अध्येषणा, बोधिचित्तोत्पाद तथा परिणामना आदि सप्तविधान पूजा करनी होती है। छः पारिमताओं का अनुष्ठान भी साधक को अपेक्षित होता है।

महायान सम्प्रदाय में बोधिसत्व की कल्पना, इस धर्म की प्रधान विशेषता है।

ब्रह्मविहार

'ब्रह्म विहार', चित्त की ४ सर्वोत्कृष्ट और दिव्य अवस्थाएँ हैं—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। इन विहारों के पालन से चित्त की मलिनता नष्ट हो जाती है और चित्त विशुद्ध हो जाता है। ब्रह्म विहारों के द्वारा ही प्राणी को सम्यक् व्यवहार की शिक्षा भी प्राप्त होती है। ब्रह्म विहार का पालन करने वाले साधक ईर्ष्या, कलुष, मलिनता, द्वेष, अपने-पराए की भावना से रहित विशुद्ध हृदय हो जाते हैं। वह जगत् के कल्याण में अग्रसर होता है।

(१) मैत्री—मैत्री का अर्थ है जीव के प्रति जीव का स्नेह और सुहृदभाव। इसमें विशुद्ध रूप से परहित साधन की भावना होती है। अन्य प्राणियों का उपकार, सुख की कामना और द्वेष द्रोह का परित्याग ही मैत्री के शुभ लक्षण हैं। मैत्री में तृष्णा का लेशमात्र भी नहीं होता। यह राग, लोभ और मोह के वशीभूत नहीं होता है। ज्ञान उत्पन्न होने से ही मैत्री-विहार उत्पन्न होता है। मैत्री में द्वेष और लोभ को स्थान नहीं होता।

(२) करुणा—दूसरों के दु:ख से हृदय में जो कम्पन हो वही करुणा है, साधु हृदय पर-दु:ख से कातर हो उठता है, करुणा से द्रवित हो जाता है और दु:ख को दूर करने को चितातुर हो उठता है। करुणाशील प्राणी हिंसा की बात तो सोच भी नहीं पाता। इससे हिंसक-भावना का शमन हो जाता है। शोक व दौर्मनस्य से करुणा छिटक जाती है।

(३) मुदित—अर्थात् हर्ष। मुदिता-भावक पर-सम्पन्नता से हर्षित होता है। उसे ईर्ष्या या द्वेष का भान भी नहीं होता। अनेक प्राणी दूसरों की सम्पन्नता, व गुणादि को देखकर ईर्ष्या से जलभुन से जाते हैं, उनके हृदय में मुदिता होती ही नहीं। मुदिता भावक की प्रीति संसारी की भांति नहीं होती। मुदिता भावक को हर्ष होता है वह उच्चस्तरीय होता है, उद्वेग व क्षोभपूर्ण नहीं।

(४) उपेक्षा—किसी के प्रति उदासीन रहना या होना ही उपेक्षा है। उपेक्षा-भावक सबके प्रति समभाव व समदृष्टि रखता है। उसके लिए प्रिय-अप्रिय समान होते हैं। उसके लिए न कुछ प्रतिकूल होता है न अप्रतिकूल। उपेक्षाक

होने से हिंसा नष्ट हो जाती है। उपेक्षा द्वारा मानव को कर्माधीनता का ज्ञान होता है और दुःख से मुक्त होता है।

ये चतुर्विहार मानव-मन को दुःख व कष्टों से मुक्त करके ज्ञान और मोक्ष की ओर ले जाकर उसे सुगति प्रदान करते हैं।

(७) प्रतीत्य समुत्पाद—इसका अर्थ है 'प्राप्त होकर प्रादुर्भाव' अर्थात् इसके होने पर वह होता है। इसकी उत्पत्ति से उसकी उत्पत्ति होती है। दुःख कैसे उत्पन्न होता है—यह ज्ञान दुःख को दूर करने के लिए आवश्यक होता है, यही प्रतीत्य समुत्पाद होता है। इसके निम्नलिखित १२ अंग हैं—

अविद्या—पूर्वजन्म से क्लेश प्राप्त होता है, वही अविद्या है।

संस्कार—पूर्व जन्म की कर्मावस्था ही संस्कार है।

विज्ञान—प्रति सन्धि-क्षण में कुक्षि के जो पञ्च संघ होते हैं वही विज्ञान है।

नामरूप—प्रतिसन्धिक्षण से लेकर षड़ायतन की उत्पत्ति तक नामरूप है।

षड़ायतन—'इन्द्रियों के प्रादुर्भाव काल से इन्द्रिय, विषय और विज्ञान के सन्निपात काल तक षड़ायतन है।'

स्पर्श—सुख दुःखादि के कारण ज्ञान की शक्ति उत्पन्न हो उससे पूर्व की अवस्था स्पर्श है।

वेदना—मैथुन से पूर्व यावत् मैथुन राग का समुदाचार नहीं होता तब तक की अवस्था 'वेदना' है।

तृष्णा—भोग व मैथुन की कामना करना ही तृष्णा है। रूप, काम, गुण और मैथुन के प्रति राग उत्पन्न होता है। भोगों की पर्येष्टि प्रारम्भ करने से ही तृष्णा नष्ट होती है।

उपादान—भोगों की पूर्ति में होने वाली दौड़ धूप ही उपादान है।

भव—उपादान वश सत्त्वकर्म होते हैं, जिसका परिणाम अनागत भव होता है। जीव का किसी अवस्था में कर्म करना ही भव है।

जाति—मरणांतर प्रतिसंधि काल के पंचस्कन्ध ही जाति हैं।

जरामरण—नामरूप षड़ायतन, स्पर्श, वेदना—अनागत भव के सम्बन्ध में जरामरण कहलाते हैं।

(८) पुद्गल—बौद्धागमों के अनुसार संस्कार समूह ही पुद्गल है, पुद्गल अर्थात् जीव। आत्मा पञ्चस्कन्ध-मात्र है। रूप-वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान यह स्कंध-पञ्चक क्षण-क्षण में उत्पन्न होता है और नष्ट होता है।

(९) मज्झिमपरिपदा—बुद्ध ने जीवन के समस्त अति-मार्गों को त्यागकर मध्यम मार्ग को अपनाने का उपदेश दिया था। क्योंकि इसके द्वारा दोनों अन्तों का परिहार हो जाता है।

कुछ विद्वान् कहते हैं कि आत्मा शाश्वत दृष्टि के पूर्वान्त में अनुपतित होता है, कुछ का मत है कि आत्मा नहीं है वह उच्छेद दृष्टि के दूसरे अन्त में अनुपतित होता है। बुद्ध ने दोनों अन्तों का त्यागकर मध्यमा-प्रतिपत्ति (मार्ग) का उपदेश दिया। दोनों अन्त हैं—काम-सुखानयोग, आत्मबलमानुयोग इन दोनों को त्याग कर तथागत ने मध्यम मार्ग को ग्रहण करने का उपदेश दिया था। मध्यम-मार्ग पर चलने से प्राणी मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

(१०) आसव—आसव 'मदिरा' को कहते हैं। अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान व्यर्थ हो जाए, नष्ट हो जाए उसे आसव कहते हैं। आसव को क्लेश भी कह सकते हैं। इस प्रकार 'आसव' में सभी कर्म, नाना प्रकार के उपद्रव और क्लेश भी आते हैं। षड़ायतन में—काम, भव और अविद्या भी आसव है। किन्तु ये सामान्य रूप से ४ प्रकार के बताए गए हैं—काम, भव, अविद्या और दृष्टि। आसवों को विजय कर लेने वाला प्राणी ही बुद्धत्व को प्राप्त होता है, ऐसा बुद्ध का उपदेश है।

(११) आर्य-श्रावक—आर्य-श्रावक, बौद्ध-भिक्षुओं का ही दूसरा नाम है। ये आर्य-श्रावक ३ प्रकार के होते हैं—स्रोतापन्नःस्रोत, सकृदागामी, अनागामी।

स्रोतापन्नः स्रोत—जो भव में पड़ा अष्टाङ्गिक मार्ग में प्रवेश करे वह स्रोतापन्नः होता है। वह उन्नति करता हुआ सम्बोधि प्राप्त करता है।

सकृदागामी—यह पृथ्वी पर एक बार ही जन्म लेता है।

अनागामी—यह श्रावक पृथ्वी पर एक बार जन्म लेकर दुबारा नहीं आता। अर्हत् पद को प्राप्त हो जाता है।

(१२) चर्या—चर्या अर्थात् प्रकृति। इसमें किसी विशेष धर्म की अधिकता होती है, अन्य धर्मों की स्थिति गौण होती है। ये ६ हैं—राग चर्या, द्वेष चर्या, मोह्चर्या, श्रद्धाचर्या, बुद्धिचर्या और वितर्क चर्या।

रागचर्या—संतान में अतिराग की प्रवृत्ति होना ही रागचर्या है। कुछ विद्वानों ने रागादि की चार चर्याएँ मानी हैं—रोगमोहचर्या, रागद्वेष चर्या, द्वेपमोहचर्या और रागद्वेष मोहचर्या। इसी प्रकार श्रद्धादि चर्याओं के भी भेद होते हैं। कुल १४ चर्याएँ होती हैं। मूलतः ६ ही हैं। इसके अनुसार ६ पुद्गल भी होते हैं।

(१३) सम्पन्न अध्याशय—अध्याशय अर्थात् अभिनिवेश। ये ६ हैं—अलोभ, अद्वेष, नैष्क्रम्य, प्रविवेक और निस्सरण। इनसे बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। भिक्षु को ६ अध्याशयों से सम्पन्न होना चाहिए। अध्याशय मूलतः दो प्रकार का होता है—सम्पन्न, विपन्न।

सम्पन्न—यह संसार निश्रित और विवर्त्त निश्रित होता है।

विपन्न—मिथ्याभिनिवेप मिश्रित आचरण विपन्न अध्याशय होता है।

(१४) चारिका—चारिका अर्थात् धर्मोपदेश। इन धर्मोपदेशों में भिक्षुओं के संदेह का निराकरण होता है, धर्म क्लिव की शिक्षा होती है और गृहस्थ को धर्मोपदेश होता है।

प्रश्न—निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए—

वर्षावास, प्रवारणा, उपोसथव्रत, पंचवार्षिक परिषद्, कसिण, अनुस्मृतिस्थान, अशुभ स्थान, कर्मस्थान भूमियाँ, ध्यान, उपेक्षा सप्त-विशुद्धियाँ, पंचशील और दसशील, निर्वाण।

उत्तर—(१) वर्षावास—चारिकाएँ भिक्षुओं द्वारा प्रचारित व प्रसारित होती थीं किन्तु वर्षा काल में ये चारिका बन्द हो जाती थीं, भिक्षु एक स्थान पर एकत्रित हो जाते थे। सभी उपासक उनको निमंत्रण देते और उनके भोजन व निवास आदि की व्यवस्था करते थे।

(२) प्रवारणा—प्रवारणा, वर्षा ऋतु के अन्त में होने वाला एक उत्सव था। इसमें भिक्षु, उपासक आदि सभी सम्मिलित होकर उपदेश ग्रहण करते थे।

(३) उपोसशव्रत—दिन में एक व्रत किया जाता था, जिसे उपोसथव्रत कहा जाता था, इस व्रत में चन्द्रोदय होने पर भोजन ग्रहण किया जाता था।

(४) पंचवार्षिक-परिषद्—प्रवारणा ५वें वर्ष विशेष उत्सव के रूप में मनाई जाती थी, जिसे पंचवार्षिक परिषद् कहते थे।

(५) कसिण—योगमार्ग में सहायक १० अङ्ग हैं, इन्हें ही कसिण कहा जाता है। श्रावक इनकी भावना करते थे। विशुद्धिमग्ग में इनके नाम इस प्रकार हैं—पृथ्वी, अपक्, तेजक, वायुक, नीलक, पीतक, लोहितक, अवदातक, आलोकक, परिच्छिन्नाकाशक।

(६) अनुस्मृति-स्थान—अनुस्मृति अर्थात् बार-बार स्मरण अथवा अनुरूप स्मृति। उचित स्थान में प्रवर्तित होने वाली स्मृति ही अनुस्मृति कहलाती है। योगी के लिए यह अत्यन्त अनुकूल होती है। अनुस्मृति के दस विषय इन्हें अनुस्मृति स्थान कहते हैं—बुद्धानु, धर्मानु, संघानु, शीलानु, त्यागानु, देवतानु-काय गतास्मृति, मरणानुस्मृति, उपशभानुस्मृति।

(६) अशुभ स्थान—बुद्ध धर्म में १० अशुभस्थान माने गए हैं—

उद्धुमातक—भाथी की तरह फूला हुआ मृत शरीर।

विनीलक—मृत शरीर सामान्यतः नीला होता है।

विपुल्वक—जिसके भिन्न व्यवों से पीप बहता रहता है।

विच्छिदक—द्विधा छिन्न शरीर।

विक्खायितक—वह शव जिसे कुत्ते और शृगालों ने स्थान-स्थान में विविध रूप से खाया हो।

विक्खित्तक—वह शव जिसके अंग-प्रत्यंग इधर-उधर छितरे पड़े हों।

हतविक्खित्तक—वह शव जिसके अंग प्रत्यंग शस्त्र से काटकर इधर-उधर छितरा दिए गए हों।

लोहितक—रक्त से सनी लाश

पुलुवक—कृमियों से परिपूर्ण शव ।

अट्ठिक—अस्थिपञ्जर मात्र शरीर ।

(८) **कर्मस्थान**—बौद्ध धर्म में ४० कर्मस्थानों का उल्लेख मिलता है—१० कसिण, दस अशुभ, दन अनुस्मृति, चार ब्रह्मविहार, चार आरूप्प, एक संज्ञा और एक व्यवस्थान ।

(९) भूमियां—भूमियां ४ हैं—अपायभूमि, कामसुगति भूमि, रूपावचर भूमि, अरूपाक्चंबर भूमि ।

(१०) ध्यान—ये ५ हैं—आवर्जन, सम, अधिष्ठान, व्युत्थान और प्रत्यवेक्षण ।

(११) उपेक्षा—ये १० प्रकार की हैं—

(१) षडंगोपेक्षा (२) ब्रह्मविहारोपेक्षा
(३) बोध्यंगोपेक्षा (४) वीर्योपेक्षा
(५) संस्कारोपेक्षा (६) वेदनापेक्षा
(७) विपश्यनोपेक्षा (८) तत्र मध्यत्वोपेक्षा
(९) ध्यानोपेक्षा (१०) पारिशुद्धयुपेक्षा

(१२) सप्तविशुद्धियां—

(१) शील विशुद्धि,

(२) चित्त विशुद्धि,

(३) दृष्टिविशुद्धि (नामरूप का यथावद्दर्शन)

(४) कीक्षा वितरण विशुत्ति—संशयों को उत्तीर्ण कर नाम रूप के हेतु का परिग्रह ।

(५) मार्गा-मार्ग ज्ञान-दर्शन विशुद्धि,

(६) प्रतिपत्तिज्ञान दर्शन विशुद्धि,

(७) ज्ञान-दर्शव विशुद्धि,

(१३) पंचशील और दसशील—

पंचशील—(१) प्राणातिपात से विरति अर्थात् अहिंसा,

(२) अदत्त दान विरति, (अस्तेय),

(३) काम मिथ्याचार विरति अर्थात् ब्रह्मचर्य,

(४) मृषावाद विरति (सत्य),

(५) सुरा-मैरेय प्रमाद स्थान विरति (मद्य का असेवन) दसशील उपर्युक्त ५ शील तथा निम्न—

(६) अकाल भोजन, अर्थात् असमय भोजन न करना,

(७) नृत्यगीत वादित्र का परित्याग,

(८) माल्यगंध विलेपन का परित्याग,

(९) उच्चासन शयन न करना,

(१०) जातरूप रजत परिग्रह अर्थात् सोने चाँदी से दूर रहना।

(१४) निर्वाण—गौतम बुद्ध ने निर्वाण के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं है। इनके मतानुसार निर्वाण के लिए कुछ भी कहना 'अव्याकृत' है। वैसे निर्वाण का शाब्दिक अर्थ है बुझना। तृष्णा के क्षीण हो जाने की अवस्था ही निर्वाण है। आश्रवों से जब साधक छुटकारा पा लेता है तभी वह निर्वाण का अधिकारी होता है। बुद्ध ने जितने भी उपदेश दिए हैं या जितनी भी शिक्षाएँ दी हैं अंततोगत्वा उनका लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना ही है। निर्वाण प्राप्त होने पर प्राणी को संसार के दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है, संसार से निःसृत होने का उपाय है इसलिए उपयोगी भी। विद्वानों का कहना है कि आत्मा का प्रतिषेध व ईश्वर का प्रतिषेध करने वाले को निर्वाण अभावमात्र ही हो सकता है।

पौर्वात्य ही नहीं पाश्चात्य विद्वानों ने भी निर्वाण के सम्बन्ध में अध्ययन द्वारा विभिन्न निष्कर्ष निकाले हैं। इन पाश्चात्य विद्वानों में प्रमुख हैं—बर्थे लेमी, सेन्टहिलेरी, चाइल्डर्स, रीजडेविड्स और पिसल। इनका कहना है कि—बुद्ध ने तथा उसके अनुयायियों को अपने सिद्धांतों के इस अनिवार्य निष्कर्ष को विचार कोटि में लिया है और वह इसका स्वरूप अभावमात्र ठहराते हैं।"

बुद्ध ने अपने श्रावकों से कहा—यह प्रश्न कि निर्वाण के अनन्तर तथागत कहां जाते हैं अर्थोपसंहित नहीं है और इसका विसर्जन विराग,' दुःख निरोध, और निर्वाण के अधिगम में पड़ना निरर्थक और निष्प्रयोजनीय है।'

बौद्ध-धर्म में निर्वाण को प्रमुख व प्रधान स्थान दिया जाता है। बुद्ध ने इसे मानव जीवन का चरम व शाश्वत सत्य माना है। जिसे कोई भी प्राणी बुद्ध के उपदेशों व शिक्षाओं का पालन करके प्राप्त कर सकता है। निर्वाण से मानव को दुःख, क्लेश और भवचक्र से मुक्ति प्राप्त होती है।



मुद्रक—उदय प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद